हिन्दी उपन्यास साहित्य में हरिजनों का चित्रण

(१९०० - १९७४ ई०)

[इलाहाबाद विश्वविद्यालय की डी० फ़िल्० उपाधि के लिए प्रस्तुत]

शोध-प्रबन्ध

●

शोध-कर्ता

बृजमोहन श्रीवास्तव

एम० ए०

●

निर्देशक

डॉ० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय

एम० ए०, डी० फ़िल्०, डी० लिट्०

डीन, कला संकाय

और

सीनियर प्रोफ़ेसर तथा अध्यक्ष

हिन्दी विभाग

इलाहाबाद विश्वविद्यालय

इलाहाबाद

●

अगस्त १९७६ ई०

आमुख

आमुख

यह बात ध्रुव सत्य है कि जब तक किसी देश में कोई मानव वर्ग हरिजन कहकर पददलित किया जाता है, तब तक उस देश को स्वातन्त्र्य-सुख परम दुर्लभ है । जापान का उदाहरण हमारे सामने है । जब तक वहां प्रजा वर्ग के एक टुकड़े को निम्न कहकर दुत्कारा और दुदुराया जाता रहा, तब तक उस देश की अत्यन्त दयनीय दशा रही और जब से इस राक्षसी भाव को दूर भगाकर उस देश के निवासियों ने उन पददलित निम्न कहे जाने वाले जनों को गले लगाकर सब तरह से उन्हें साम्य दिया, तभी से जापान दुनिया में चमका । भारत बिल्कुल उस जापान की तरह है, जहां किन्हीं मनुष्यों को कुत्ते और बिल्ली से भी बुरा समझा जाता था और उनके साथ कठोरतम व्यवहार किया जाता था । सच बात तो यह है कि हमारा दुर्दैव वर्जित भारत उस समय के जापान से कई गुना अधिक भयावह है, जो हम कुत्ते और बिल्ली से भी बुरा अपमान कर रहे हैं, उसके लिए ईश्वर के पुनीत दरबार से कभी हमें क्षमा नहीं मिल सकती । यह घोरतम पाप है । हमें शीघ्र इससे बचने की चेष्टा करनी चाहिए ।

समाज में छुआछूत की भावना का भार लोग वर्ण-व्यवस्था के सिर पर फेंक रहे हैं । उनका कहना है कि जब तक इस वर्ण-व्यवस्था का विध्वंस न हो जायेगा, तब तक भारत से छूतपन नहीं मिट सकता, क्योंकि वर्ण-व्यवस्था ने ही इस पाप को फैलाया है । जब तक निदान आदि कारण दूर न किया जायगा, तब तक रोग दूर नहीं हो सकता, चाहे कितनी ही चिकित्सा क्यों न की जाये । यदि किसी रसायन औषधि के द्वारा रोग कुछ काल के लिए परिमाण में दब भी गया तो फिर भी वह समय पर भभक निकलेगा और फिर इससे ज्यादा घातक होगा । इसलिए यह आवश्यक है कि अछूतपन की जननी इस वर्ण-व्यवस्था को पहले नष्ट कर दिया जाए । यही अछूतपन का निदानमूल है ।

वर्ण-व्यवस्था से इस पाप का सम्बन्ध बतलाना तो सूर्य में अन्धकार बताना है । हमारे देश में अज्ञानता के कारण छूतछात की भावना की सृष्टि हुई । अगर वर्ण-व्यवस्था ही इस पाप को पैदा करने वाली है तो फिर अपने देश में स्त्रियों की यह हीनतम दशा किसने की ? वर्ण-व्यवस्था ने ? वर्ण-व्यवस्था के पक्षपाती मनु जहां कहते हैं कि 'यत्रनार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता:' वहां आपके इन घरों में देवियों की क्या दशा हो रही है ? आज थोड़े-से घर को छोड़कर हिन्दुस्तान का प्रत्येक घर औरतों के लिए कसाईखाना है । इसमें किसका दोष है ? सब ओर से हमारा जो पतन हो रहा है, इन सब का मूल कारण अज्ञान है । अज्ञानता के कारण ही खराब प्रवृत्तियां जन्म धारण करती हैं । अज्ञानता के

कारण ही हमारी वर्ण-व्यवस्था में भी धब्बा लग गया है ।

वर्णाश्रम धर्म के सम्बन्ध में महात्मा गांधी जी का विचार था कि वर्णाश्रम धर्म की कल्पना किसी संकुचित भावना से नहीं की गई थी । इसके विपरीत इसमें श्रमिकों को, शूद्रों को भी वही दर्जा दिया गया जो विचारकों का ब्राह्मणों को दिया गया था । यह व्यक्ति के गुणों का निखार और दुर्गुणों के नाश की सुविधा देता था और यह मानवीय वृत्तियों के सामान्य सांसारिक क्षेत्र से मोड़कर जो चीज स्थायी तथा आध्यात्मिक है, उसकी ओर उन्मुख करता था । ब्राह्मणों और शूद्रों के जीवन का एक ही उद्देश्य था-- अर्थात् मोक्ष न कि यश या धन और ऐश्वर्य की प्राप्ति । बाद में चलकर वर्णाश्रम धर्म के इस उच्च आदर्श में बुराइयां आ गईं ।

साहित्य के सम्बन्ध में साहित्यशास्त्रियों के विभिन्न मत रहे हैं । आधुनिक काल में प्राय: अधिकांश साहित्य-शास्त्रियों का मत यह है कि साहित्य का अध्ययन आर्थिक,सामाजिक राजनीतिक और धार्मिक परिस्थितियों के परिवेश में किया जाना चाहिए । उनका विचार है कि ऐतिहासिक क्रम विकास से ही साहित्य का उपयुक्त अध्ययन हो सकता है । साहित्य पर बाह्य परिस्थितियों का संश्लिष्ट प्रभाव भी पड़ता है । साहित्य भी बाह्य परिस्थितियों के निर्माण में सहयोग देता है, अत: दोनों का अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है । प्रत्येक साहित्य में इस दृष्टि से साहित्य का अनुशीलन करने का आग्रह बढ़ रहा है । लेकिन कुछ आलोचक एकांगी दृष्टि से साहित्य की आलोचना करते हैं । हमारा तात्पर्य है कि केवल एक पक्ष को लेकर ही साहित्य की

आलोचना होती रही है । साहित्य की चार स्वतन्त्र शक्तियां सामाजिक, राजनीतिक,आर्थिक परिस्थितियां हैं और सभी पक्षों का साहित्य पर प्रभाव पड़ता है । वही अध्ययन वैज्ञानिक कहा जायगा, जिसमें पूर्णता हो और पूर्णता का तात्पर्य ऐसा साहित्य, जिसमें सामाजिक, राजनीतिक,आर्थिक और धार्मिक स्थितियों का निरूपण किया गया हो । हरिजनों के सम्बन्ध में हिन्दी उपन्यास साहित्य में सर्वांगीण पक्षों को दृष्टि में रखकर अभी तक कोई व्यवस्थित कार्य नहीं हुआ है । इससे विषय की उपयोगिता स्वतः स्पष्ट हो जाती है । हमारा यह प्रयास विद्वानों के सम्मुख है और महत्ता की दृष्टि से एक विनम्र प्रयास है ।

हमने उपर्युक्त दृष्टि से अनुशीलन के लिए उपन्यास साहित्य का चुनाव किया,क्योंकि अन्य साहित्य रूपों की अपेक्षा उपन्यास साहित्य में युग को आत्मसात् करने की अधिक शक्ति है ।

प्रस्तुत प्रबन्ध में १६००-१६७४ई० के उपन्यास साहित्य के माध्यम से हरिजनों के सामाजिक, राजनीतिक,आर्थिक और धार्मिक चेतना के विकास का विश्लेषण किया गया है । उपन्यास साहित्य में हरिजनों का चित्रण करते समय हमने मूल दृष्टि यह रखी कि अधिक से अधिक वैज्ञानिक पद्धति से प्रस्तुत विषय का विश्लेषणात्मक अध्ययन किया जा सके । इसीलिए हमने विषय-क्रम को वैज्ञानिक रीति से प्रस्तुत किया है ।

उन्नीसवीं शताब्दी के समाज सुधारवादी आंदोलनों का भी वर्णन किया गया है । इन आन्दोलनों का प्रभाव बीसवीं शताब्दी के उपन्यासकारों पर प्रमुख रूप से पड़ा है । उन्नीसवीं शताब्दी के उपन्यास साहित्य के सम्बन्ध में आलोचकों ने इस बात पर ध्यान

नहीं रखा है कि इस युग के उपन्यासकार किस युग का चित्रण अपने उपन्यासों में कर रहे हैं । हमारा मत यह है कि उस युग के उपन्यासकारों की महत्ता इसी बात में है कि उन्होंने अपनी युग-भावना के अनुरूप हरिजनों की स्थिति को चित्रित किया है ।

जिस प्रकार स्वतन्त्रता मिलने के पश्चात् हमारे समाज में मूल्यों का संक्रमण अधिक तीव्रता से हुआ है । देश के विभाजन के फलस्वरूप हत्याएं,मार-पीट, बलात्कार, आगजनी और घरों,कस्बों एवं शहरों के उजड़ने के कारण मानव-मूल्यों एवं नैतिक मान्यताओं में इतना गहरा परिवर्तन हुआ कि उसका उपन्यासों पर प्रभाव पड़ना नितान्त स्वाभाविक था, उसी प्रकारहिन्दी उपन्यासों के क्षेत्र में एक नया आयाम १९३२ई० के लगभग प्रारम्भ हुआ था । यह वह काल था, जब कि महात्मा गांधी जी के सद्प्रयत्नों के कारण भारतीय समाज में पुनर्जागरण हुआ और सवर्णों तथा हरिजनों के बीच अर्थात् दो वर्ग के टकराहटों में मनुष्य मन करण रखने के लिए आकुल था ।

यद्यपि १९३२ई० का गांधी जी का अनशन 'पूना-पैक्ट' समझौते के द्वारा समाप्त हो गया लेकिन हरिजन-समस्या की प्रगतिशीलता की दिशा में महत्वपूर्ण अवश्य सिद्ध हुआ । लेखकों ने पुरानी परिपाटी को त्यागकर नई आंखों से दुनिया को देखना शुरू किया । बीसवीं शताब्दी के लेखकों ने पुरानी मान्यतायें अवश्य रख रखी हैं, परन्तु इस दिशा में नये लेखकों के द्वारा सुधार हुआ है । १९३२ई० के बाद के लेखकों ने अपनी रचनाओं में धर्म और समाज की शोचनीय अवस्था पर चिन्ता प्रकट करने के बाद हरिजनों को ऊपर उठाने का प्रयास किया है । उनको सफलता

यदि सम्पूर्ण बीसवीं शताब्दी के उपन्यासकारों के उपन्यासों का अध्ययन करते हैं तो हमें स्पष्टत: दो धारायें दिखाई पड़ती हैं। यदि प्रेमचन्द, पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र', बैजनाथ केडिया, अज्ञेय वृन्दावनलाल वर्मा, फणीश्वरनाथ रेणु, रांगेय राघव और यज्ञदत्त शर्मा आदि ने सुधारवादी दृष्टिकोण का परिचय दिया है तो दूसरी ओर लज्जाराम शर्मा, विश्वम्भरनाथ शर्मा, 'कौशिक' शिवपूजनसहाय, रामगोविन्द मिश्र, इन्द्र विद्यावाचस्पति, कमल शुक्ल और डा० सुरेश. सिनहा आदि ने पुरातन परम्परा का समर्थन किया है। इनकी दृष्टि संकीर्णवादी कही जा सकती है।

द्वितीय महायुद्ध के प्रारम्भ होने के कुछ वर्षों पहले से भारतीय समाज में हरिजन सम्बन्धी मान्यतायें बदली हैं और सामाजिक रिश्तों और मानव-सम्बन्धों के रूप निरन्तर परिवर्तित हो रहे हैं। हरिजन और सवर्णों का सम्बन्ध इन तीन चार दशकों में पर्याप्त सीमा तक परिवर्तित हुआ है। समय की गति के साथ समाज का समन्वयवादी दृष्टिकोण विकसित हुआ है। सामाजिक चेतना ने हिन्दी उपन्यासों में हरिजन चित्रण के प्रतिमानों को यथेष्ट सीमा तक प्रभावित किया है।

हिन्दी उपन्यास -साहित्य में हरिजनों का चित्रण का सीधा अर्थ यह होता है कि कोई उपन्यासकार समाज की परिधि में ही हरिजन और उसकी विभिन्न समस्याओं का कहां तक चित्रण कर पाता है? संघर्ष, समर्थता, संकल्प एवं आस्था जीवन के महत्वपूर्ण आयाम हैं; जो हमें गतिशील बनाते हैं। उपन्यासकार समाज में व्याप्त हरिजन सम्बन्धी मान्यताओं को उपन्यास के द्वारा सब लोगों के सामने रखता है, इसीलिए उपन्यासकार को द्रष्टा कहा गया है।

उपन्यासकार की सफलता इसी में है कि वह द्रष्टा तत्व की रक्षा करने में कितना सफल रहा है और वह समाज में प्रचलित विभिन्न मत-मतान्तरों, अन्तर्विरोधों को किस सीमा तक चित्रित कर सका है।

हिन्दी उपन्यासों में, जब नए मानव-सम्बन्धों का उदय एवं सामाजिक परिवर्तनशीलता के नए आधारों को पहचानने का प्रयत्न, नवीन भौतिक सत्यों के बीच बनती हुई हरिजन चरित्र की नई दिशाएं आदि चित्रित होती हैं, तो वे हरिजन चित्रण के नए प्रतिमान ही स्थापित करती हैं ।

उपन्यास वर्तमान समाज - व्यवस्था का एक सांस्कृतिक अंग होता है । वह उस व्यवस्था से प्रभावित और उसे प्रभावित करता है । कुछ लोग हरिजन चित्रण को तथाकथित फैशन-परस्ती के कारण हेय समझते हैं । वे उपरोक्त बात को भूल जाते हैं । हरिजन चित्रण का अर्थ कोई राजनीतिक प्रचार करना नहीं है, जैसा कि अनेक बौद्धिक वर्ग के लोग सिद्ध करने का प्रयत्न करते हैं । उपन्यासों में हरिजन चित्रण का होना इसलिए आवश्यक ही नहीं, बल्कि अनिवार्य है, ताकि उससे पाठकों को हरिजनों की सामाजिक स्थिति के बारे में वास्तविक तथ्य मालूम हो सके और इससे पाठकों में सौन्दर्य -बोध जागृत होता है, साथ ही साथ हरिजनों से संबंधित उनकी मनोधारणा में परिवर्तन भी होता है । इस प्रकार प्रकारान्तर से मानव-मूल्यों की ही प्रतिष्ठा होती है । हरिजन चित्रण के द्वारा ही हम सामाजिक धारणा में परिवर्तन लाया जा सकता है ।

प्रथम अध्याय में हिन्दुओं में चार वर्णों को बताकर शूद्रों के अन्तर्गत परिगणित जातियों का विवेचन किया गया है ।

इसके साथ ही साथ महात्मा गांधी जी के द्वारा 'हरिजन' शब्द के प्रयोग में अन्तर स्पष्ट किया गया है ।

द्वितीय अध्याय में हिन्दू समाज में प्राचीन, मध्य और आधुनिक काल में, हरिजनों की स्थिति पर प्रकाश डाला गया है ।

तृतीय अध्याय में विभिन्न सुधारवादी आन्दोलनों का वर्णन करते हुए हिन्दी उपन्यासों पर उनके प्रभावों की चर्चा की गई है ।

चतुर्थ अध्याय हरिजनों की सामाजिक स्थिति से सम्बद्ध है । समाज में खान-पान और विवाह-सम्बन्ध को लेकर विवेचन किया गया है । समाज का अमानुषिक व्यवहार, वेश्या-समस्या, शिक्षा की समस्या, छुआछूत की भावना और मनुष्यत्व की भावना को लेते हुए शासक वर्ग, राज वर्ग, जमींदार वर्ग, पूंजीपति वर्ग और कुएं से पानी न भरने देना आदि के अत्याचारों सहित हरिजनों की निम्न सामाजिक स्थिति का निरूपण मिलता है ।

पंचम अध्याय में हरिजनों की राजनीतिक स्थिति पर प्रकाश डाला गया है । हरिजनों का शासक वर्ग, जमींदार वर्ग, म्युनिसिपैलिटी वर्ग, पुलिस वर्ग, राष्ट्रीय आन्दोलन, शासन संबंधी भ्रष्टाचार, भाषा की समस्या, पूंजीपति वर्ग का उदय, देशी रियासतें और महाजनी शोषण आदि के द्वारा किस प्रकार शोषण किया जाता है, इसका चित्रण किया गया है । इसके साथ ही साथ पुनरुत्थानवादी दृष्टिकोण का भी वर्णन किया गया है । देश-भक्ति, ब्रिटिश सरकार की न्याय व्यवस्था और ब्रिटिश शासन-नीति पर भी प्रकाश डाला गया है ।

षष्ठ अध्याय में हरिजनों की आर्थिक स्थिति पर विवेचन किया गया है । शासक वर्ग, समाज वर्ग, जमींदार वर्ग, पुंजीपति और राज वर्ग के द्वारा किस प्रकार हरिजनों का शोषण किया जाता है? इसका समग्र चित्रण मिलता है ।

सप्तम अध्याय में हरिजनों के धार्मिक अधिकार की व्याख्या के साथ-साथ मंदिर-प्रवेश, धर्म के नाम पर आर्थिक शोषण और मध्यकाल के निम्नवर्ग द्वारा तथाकथित ब्राह्मण वर्ग की आलोचना की भी व्याख्या की गई है ।

अष्टम अध्याय में उपसंहार के अन्तर्गत पिछले अध्यायों में किए गए अध्ययन का निष्कर्ष व्यक्त करते हुए स्वतंत्र भारत के संविधान पर प्रकाश डाला गया है । हमारी वर्तमान सरकार हरिजनों की उन्नति के लिए क्या कर रही है? इसका भी विवरण प्रस्तुत किया गया है ।

प्रस्तुत प्रबन्ध का विषय अति विस्तृत और विविधतापूर्ण है । राजनीतिक पक्ष पर अनेक पुस्तकें मिलती हैं । साहित्यिक दृष्टि से भी लिखी गई पुस्तकें मिलती हैं, परन्तु हरिजनों की दृष्टि से साहित्य का अनुशीलन करने वाली पुस्तकों का अभाव है । उपन्यास साहित्य सम्बन्धी विद्वतापूर्ण आलोचनात्मक पुस्तकों का सर्वथा अभाव है । अत: इस दशा में हरिजनों से सम्बन्धित पुस्तकों के अभाव में हमें स्वयं अपना मार्ग चिन्तन-मनन से प्रशस्त करना पड़ा है ।

यद्यपि प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध मेरी मौलिक रचना है, किन्तु इस मौलिकता को जन्म देने का श्रेय मेरे निर्देशक को ही है, जो उनके समय-समय पर दिए गए दिशा-निर्देशन के द्वारा ही सम्भव हो

सका है । कार्य की दुरूहता, जटिलता एवं विषय की व्यापकता से मैं इतना अधिक हतोत्साह हो चुका था कि प्रस्तुत कार्य की इतिश्री सम्भवतः इस जीवन में तो कभी न होती यदि परम श्रद्धेय डा० लक्ष्मीसागर जी वार्ष्णेय जी की असीम अनुकम्पा, अपार स्नेह, सौम्य स्वभाव, मधुर व्यवहार एवं रामबाण की भांति प्रभावी वचनादेशों का सम्बल न मिला होता । परम श्रद्धेय गुरुवर्य उपन्यास-साहित्य के सर्वश्रेष्ठ आलोचक की महती प्रेरणा ने नया आत्मविश्वास भर दिया और शोध-कार्य इस ढंग से सम्पन्न हो सका ।

मैं जो कुछ कर सका हूं, उन्हीं के कृपा-निर्देशन के फलस्वरूप ही सम्भव हुआ है । कार्य की पूर्णता का समस्त श्रेय मेरे पूज्यपाद गुरुवर्य(निर्देशक) को ही है । उनके कृपा-निर्देशन, स्नेह और सहयोग का ऋण-भार मात्र धन्यवाद की औपचारिकता द्वारा चुकाया नहीं जा सकता । भविष्य में उनका निर्देशन यदि मेरे इस औपचारिकता को प्रबल बना सका तो मैं अपने को कृत-कृत्य मानूंगा ।

यह मेरा परम सौभाग्य है कि परम श्रद्धेय डा० लक्ष्मीसागर जी वार्ष्णेय के सुयोग्य निर्देशन में प्रत्येक शोधार्थी को जो विशेष आत्मबल प्राप्त होता है और जिस प्रकार वे एक वैज्ञानिक दृष्टिकोण को विकसित करने का प्रयास अपने छात्रों में करते हैं, इस दृष्टि से मैं सर्वाधिक सौभाग्यशाली रहा हूं । श्रीमती राज वार्ष्णेय जी के प्रति भी विनम्र कृतज्ञता ज्ञापित करना मेरा परम धर्म है, जिन्होंने प्रत्येक प्रकार से हरसम्भव सहयोग देकर इस कार्य को

सम्पन्न कराया । मुझे यहां निःसंकोचपूर्वक व्यक्त करना पड़ रहा है कि उनकी 'मां' जैसी ममता और वात्सल्य-स्नेह के अभाव में प्रेषित शोध-कार्य सम्पन्न होना सम्भव नहीं था । साथ ही साथ यहां पर सूर्य के समान प्रखर, बहुमुखी प्रतिभा सम्पन्न, सामयिक साहित्य के सर्वश्रेष्ठ उपन्यासकार, कहानीकार और कुशल आलोचक स्वर्गीय डा० सुरेश सिन्हा जी की छवि मेरे मानस-पटल पर अनायास स्वतः ही उभर आती है । जिनकी स्मृतियां ही केवल शेष हैं । उनके आदर्श आज भी मुझको कांटों से परिपूर्ण पथ पर आगे बढ़ने के लिए प्रेरित कर रहे हैं ।

निर्देशक और शोध-छात्र के इस अनुष्ठान में अनेक विद्वानों का प्रत्यक्ष तथा परोक्ष सहयोग मिला है । इन महानुभावों में प्रमुखतः डा० सत्यपाल गुप्त, डा० त्रिभुवन सिंह, श्री रामदीन गुप्त, डा० देवराज उपाध्याय, श्री भंवरलाल मधुप, श्री सुरेशराम भाई, श्रीराम भारतीय, श्री नाथ व शर्मा, स्वर्गीय श्री रामनाथ सुमन तथा हिन्दी विभाग के अन्य विद्वान् प्रवक्ताओं के प्रति मैं आभार प्रकट करता हूं जिनके ग्रन्थों तथा प्रत्यक्ष सम्पर्क से मुझे प्रेरणा तथा निर्देशन मिला है । हिन्दी विभागाध्यक्ष डा० लक्ष्मीसागर जी वार्ष्णेय ने इस विषय पर कार्य करने की स्वीकृति प्रदान करके मुझे इस कार्य को पूरा करने में जो योगदान दिया है, उसके लिए मैं आजीवन आभारी हूंगा ।

मैं अजय श्रीवास्तव, धर्मेन्द्र श्रीवास्तव, रीता-श्रीवास्तव, मेडिकल कालेज की छात्रा आशा श्रीवास्तव और बीना श्रीवास्तव का भी अत्यन्त आभारी हूं ।

मैं शोध-छात्रा श्रीमती मंजुला श्रीवास्तव का विशेष आभारी हूं जिन्होंने अपनी वास्तविक मैत्री का परिचय देते हुए अपने बहुमूल्य स्नेह को प्रदान कर मुझे निराशा के क्षणों में प्रोत्साहित कर शोध कार्य को पूर्ण करने की दिशा में मेरी पूरी सहायता की है। शोधकार्य की सामग्री एकत्रित करने का श्रेय उन्हीं को है। डायरेक्टर साहब श्री डा० एस०के० श्रीवास्तव ने मुझे शोधकार्य के सम्बन्ध में अपने अत्यन्त व्यस्त दिनों में जो क्षण मुझे प्रदान किए हैं, उसके प्रति मैं अपना आभार व्यक्त करता हूं।

शोध-प्रबन्ध को नवीनीकरण करने का श्रेय शोध छात्र श्री कृष्णमोहन श्रीवास्तव को है, उनके सहयोग के बिना शोध-प्रबन्ध का नवीनीकरण सम्भव नहीं था।

हस्तलिखित ग्रन्थों की खोज एवं अध्ययन के लिए मुझे जिन-जिन व्यक्तियों और संस्थाओं ने सहायता प्रदान की है, उनके प्रति मैं अपना आभार प्रकट करता हूं। सर्वप्रथम इलाहाबाद विश्वविद्यालय पुस्तकालय के पुस्तकालयाध्यक्ष के प्रति मैं विशेषरूप से कृतज्ञ हूं, जिन्होंने आधार ग्रन्थों की खोज में अनेक बार अपना सहयोग प्रदान किया। साथ हीसाथ मैं इलाहाबाद विश्वविद्यालय पुस्तकालय लोकसेवा आयोग पुस्तकालय, भारती भवन पुस्तकालय और सेवा समिति पुस्तकालय से मुझे सहायता प्राप्त हुई, उसके लिए मैं कृतज्ञ हूं।

उपन्यासों से सम्बन्धित शोध-प्रबन्ध का टंकण एक क्लिष्ट कार्य है। इस कार्य को श्री रामचित त्रिपाठी "विशारद" हिन्दी टंकक ने बड़ी जागरूकता एवं परिश्रम के साथ पूरा करने का प्रयास किया है, उनका मैं बहुत ही आभारी हूं। टंकण संबंधी भूलों को यथासंभव सुधारने का प्रयत्न मैंने किया है किन्तु कुछ सूक्ष्म त्रुटियां

दृष्टिगत न हो सकने के कारण भी छूट सकती हैं, जिनके लिए मैं क्षमा का आकांक्षी हूं । हिन्दी टंकण यन्त्र में अनुपलब्ध शब्दों -- (ज़), (ग़), ([illegible]) को यथा सम्भव बनाने का यत्न किया गया है, फिर भी बनाने में कहीं छूट भी सकता है । मेरा प्रयास यही रहा है कि प्रस्तुत कार्य सभी दृष्टियों से वैज्ञानिक बन सके ।

अन्त में मैं हिन्दी विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद के प्रति विशेष आभारी हूं, जिसके तत्वावधान में मेरा यह कार्य सम्पन्न हो सका है ।

(बृजमोहन श्रीवास्तव)

हिन्दी विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय
इलाहाबाद-2

विषयानुक्रम

प्रथम अध्याय

-0-

हिन्दू समाज और वर्ण-व्यवस्था

(क) हिन्दुओं में चार वर्ण ।

(ख) 'शूद्र' शब्द के अन्तर्गत परिगणित जातियां ।

(ग) महात्मा गांधी जी के द्वारा 'हरिजन' शब्द का प्रयोग ।

(घ) 'हरिजन' शब्द का प्राचीन प्रयोग और गांधी जी के द्वारा 'हरिजन' शब्द के प्रयोग में अन्तर ।

-0-

प्रथम अध्याय

-0-

हिन्दू समाज और वर्ण-व्यवस्था

(अ) हिन्दुओं में चार वर्ण

वर्णाश्रम व्यवस्था प्राचीनकाल से ही हिन्दू समाज की विशेषता और आधार रहा है । इसके अनुसार समाज को चार वर्णों में विभाजित किया गया है, -- ब्राह्मण, क्षत्रिय ,वैश्य और शूद्र । `ऋग्वेद` ग्रन्थ के प्राचीनतम अंशों में केवल तीन वर्णों का उल्लेख मिलता है-- ब्राह्मण, क्षत्रिय, और वैश्य, परन्तु बाद में शूद्रों का भी उल्लेख मिलता है और `पुरुष सूक्त` में तो चातुर्वर्ण्य व्यवस्था को सिद्धान्त रूपमें समझाने का प्रयास किया गया है ।

चातुर्वर्ण्य व्यवस्था में समाज को चार वर्णों में विभाजित किया गया है । इसमें कर्तव्यों और वृत्तियों के विभाजन एवं वितरण के द्वारा एक व्यवस्थित समाज का आदर्श उपस्थित किया गया है । ऋग्वेद के `पुरुष सूक्त` में वर्ण-व्यवस्था को समझाने के लिए समाज को `पुरुष` का रूपक दिया गया है, जिसके मुख से ब्राह्मण,भुजाओं से क्षत्रिय, जंघाओं से वैश्य और पैरों से शूद्र उत्पन्न हुए :--

यत पुरुषं व्युदधु: कतिधाव्यकल्पयन् ।
मुखं किमस्य कौ बाहू का उरू पादा उच्यते ।।११।।
ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद्बाहू राजन्य: कृत: ।
उरू तदस्य यद्वैश्य: पद्भ्यां शूद्रोऽजायत ।।१२।।[१]

हमारे धर्मशास्त्रों में कुल चार वर्ण माने हैं और कहा है कि :--

`ब्राह्मण: क्षत्रियो वैश्यस्त्रयो वर्णा द्विजायत: ।
चतुर्थ एक जातिस्तु शूद्रो नास्ति तु पंचम: ।।`[२]

अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य ये द्विज हैं और एक जाति और है, जिसे शूद्र कहा जाता है । इन चार के अतिरिक्त पांचवां कोई वर्ण नहीं है ।

सृष्टि के सभी प्राणियों की एकता और अभेद के ज्ञान में ऊंच-नीच के भाव को कहीं अवकाश नहीं होता है । जीवन तो कर्तव्य है, अधिकारों तथा सुविधाओं का पुंज नहीं । जो धर्म ऊंच-नीच के भेदों की प्रथा पर आधार रखता है, उसका नाश निश्चित है । जिस प्रकार क्षत्रिय वही है जो समाज की रक्षा तथा प्रतिष्ठा के लिए स्वार्पण कर देता है, इसी तरह अस्पृश्य भी समाज के अधिकार प्राप्त सेवक हैं ।` युद्ध की परिस्थितियों ने आर्यों को श्रम-विभाजन की ओर प्रोत्साहित किया और उन्होंने गुण-कर्म के अनुसार चार वर्णों की व्यवस्था की । पूजा-पाठ, तपस्या, ज्ञान की खोज आदि को करने वाले ब्राह्मण, रण में लड़ने वाले को क्षत्रिय, खेती-बारी करने वाले को वैश्य तथा सेवा कार्य करने वाले को शूद्र कहा गया । यह श्रम-विभाजन तत्कालीन समाज के संगठन तथा उन्नति के हेतु किया गया था । सभी वर्ण आपस में मिल जुल कर कार्य करते थे । वर्णों में किसी भी

---

१. श्री सम्पूर्णानन्द (संपा०) : `ऋग्वेदीय पुरुष-सूक्त`, शारदा प्रकाशन, बनारस (१९४७ई०), पृ०८४ ।

२. मनु० अ० १०।४ ।

प्रकार का वैषम्य तथा भेद-भाव नहीं था । सभी वर्णों में परस्पर मिलना-जुलना, खाना-पीना, प्रतिलोम, अनुलोम, अन्तर्वर्णीय विवाह आदि होते थे । एक वर्ण का व्यक्ति दूसरे वर्ण के कार्य कर सकता था ।[1]

ऋग्वेद के पुरुष सूक्त में वर्ण व्यवस्था को समझाने के लिए समाज को 'पुरुष' का जो रूपक दिया गया है, उस रूपक में ब्राह्मणों की मुख से उत्पत्ति की कल्पना बहुत ही समुचित है । 'मुख' से केवल भोजन करने वाले अंग से ही तात्पर्य नहीं है,इसमें मस्तिष्क का भी समावेश हो जाता है । जिस प्रकार मनुष्य की सब क्रियाओं का संचालन मस्तिष्क करता है और उसे उदात्त विचार देकर सन्मार्ग पर चलाता है, उसी प्रकार समाज के मस्तिष्क ब्राह्मण होते हैं । समाज इन्हीं के द्वारा सोचता है, इन्हीं के द्वारा बोलता है और इन्हीं के नेतृत्व में सन्मार्ग पर चलता है । ब्राह्मणों का प्रमुख कर्तव्य आर्य संस्कृति को सुरक्षित रखना माना जाता था । इसलिए उनके लिए वेदों का पढ़ना-पढ़ाना, यज्ञ करना-कराना तथा दान लेना-देना आवश्यक समझा जाता था । उनसे आशा की जाती थी कि वह आजीवन ज्ञान के उपार्जन,ज्ञान-वितरण और समाज-सेवा में लगे रहेंगे ।

चूंकि क्षत्रिय की उत्पत्ति 'पुरुष' की भुजा से हुई है, अत: इनका कर्तव्य बाह्य और आन्तरिक शत्रुओं से समाज की रक्षा करना था । इसी वर्ग के सदस्य अधिकांशत: राजा होते थे । उनके अन्य कर्तव्यों में वेदों का अध्ययन करना, यज्ञ करना और दान देना था । ये कार्य आर्य संस्कृति की रक्षा के लिए आवश्यक थे, इसीलिए ब्राह्मणों के साथ-साथ क्षत्रियों को भी इनको सम्पन्न करना होता था ।

जिस प्रकार शरीर का भार जंघा वहन करती है,उसी प्रकार समाज-पुरुष का भार तीसरा वर्ग धारण करता था । समाज को

१.डा० राजकीलाल सहायक : 'हरिजन वर्ग और उनका उत्थान'(१९५९ई०), पृष्ठ संख्या २ ।

आर्थिक दशा और व्यवस्था का दायित्व इसी वैश्य वर्ग पर था ।

ये तीनों वर्ण 'द्विज' कहे जाते थे । इनको उपनयन कराकर वेदादि के अध्ययन और यज्ञों के करने का अधिकार था । इस प्रकार ये तीनों वर्ण आर्य संस्कृति के प्रहरी थे । इनके विपरीत चौथा वर्ण शूद्र इन तीनों वर्णों की सेवा करने के लिए था । इसका तात्पर्य है कि जिस प्रकार शरीर में पैर है, उसी प्रकार समाज में शूद्र है । 'इन तीन वर्णों की असूया-रहित सेवा करना-- यही एक कर्म परमात्मा ने शूद्रों के लिए बनाई ।'--ऐसा मनु ने लिखा है । इस प्रकार हिन्दुओं को चार वर्णों में बांटा गया । इस वर्ण व्यवस्था के द्वारा समाज के भौतिक तथा आध्यात्मिक उद्देश्यों में समन्वय स्थापित किया गया । 'हिन्दुओं को चार वर्णों में विभाजित करके ऐसी परिस्थितियां उत्पन्न करने की चेष्टा की गई, जिनकी सहायता से प्रत्येक व्यक्ति अपने कर्म का पालन करते हुए चरम लक्ष्य की ओर बढ़ सके ।'[१]

ब) 'शूद्र' शब्द के अन्तर्गत परिगणित जातियां

वर्तमान समय में समूचे देश में सहस्रों जातियां तथा उपजातियां हैं, जिनकी गणना हरिजन वर्ग के अन्तर्गत की जाती है । इस वर्ग की कुछ जातियों के नाम देखने से प्रतीत होता है कि कई जातियों ने एक ही वर्ग से निकल कर अलग-अलग नाम रख लिए तथा उस नाम से एक जाति ही अलग कहलाई । यह कहा जा सकता है कि जटिया, जाटव, अहिरवार, जैसवार, कुरील, रैदासी, रविदासी आदि नाम चमार वर्ग के नाम के भाव से बचने के लिए ही रखे गए हैं । किस आधार पर, किन जातियों को परिगणित माना जाए ? १६५१ई० के जनगणना संचालकों के सामने यह एक टेढ़ा प्रश्न था । काफी विचार के बाद एक कसौटी तैयार की गई तथा यह तय किया गया कि उस कसौटी की बातों से जिन वर्गों की दशा मिलती-जुलती हो, उन्हें परिगणित जाति माना जाए ।

---

१. वात्स्यायन : 'भारतीय संस्कृति' (१६७२ई०), पृ०सं० ४० ।

निम्नलिखित प्रश्नों के रूप में कसौटी तैयार की गई:--

(१) क्या वह वर्ग ब्राह्मणों के द्वारा शुद्ध माना जाता है ? यदि ब्राह्मण उसे ठीक न समझते हों तो वह वर्ग निम्न है तथा परिगणित जाति कहा जा सकता है ।

(२) क्या नाई, दर्जी, धोबी, बावर्ची, कहार आदि उस वर्ग के लोगों की सेवा कर देते हैं ? यदि वह उस वर्ग की सेवा करने से इन्कार करें तो वह वर्ग निम्न समझा जाए तथा उसे परिगणित जाति माना जाए ।

(३) क्या निम्न कहे जाने वाले लोग उच्च कहे जाने वाले लोगों से मिल पाते हैं ? जिन वर्गों के साथ उच्च कहलाने वाले लोग नहीं मिल-जुल सकते, उनके साथ साथ उठ बैठ नहीं सकते, वह वर्ग निम्न है । उसकी गणना परिगणित जाति के अन्तर्गत किया जाए ।

(४) क्या उन वर्गों के हाथ का पानी दूसरे उच्च वर्गों के द्वारा पी लिया जाता है? जिन वर्गों के हाथ का पानी उच्च कहे जाने वाले लोग नहीं पाते । उन वर्गों को निम्न समझा जाए तथा उन्हें परिगणित जाति के अन्तर्गत माना जाए ।

(५) क्या उस वर्ग के लोग सार्वजनिक स्थानों, कुओं, सड़कों, किश्तियों तथा स्कूलों में जा पाते हैं ? यदि किसी वर्ग के लोगों के द्वारा सार्वजनिक स्थानों, कुओं, सड़कों पर न जा पाते हो, किश्तियों में न बैठ सकते हो, स्कूलों में न पढ़ सकते हो । वे वर्ग निम्न हैं तथा उन्हें परिगणित जाति के अन्तर्गत माना जा सकता है ।

(६) क्या इस वर्ग के लोग मंदिरों तथा पूजाघरों में जा पाते हैं ? जिन वर्गों के लोग मंदिरों में पूजा करने के लिए देव-दर्शनों के लिए न जा सके ? वे अस्पृश्य कहे जाए तथा उन्हें परिगणित जाति माना जाए ।

(७) क्या एक सी योग्यता का व्यक्ति एक सा सम्मान पाता है ? यदि किसी निम्न वर्ग का व्यक्ति पढ़ा-लिखा तथा योग्य हो, फिर भी वह दूसरे वर्ग के पढ़े-लिखे लोगों के बराबर का सम्मान न पाता है । उसे निम्न ही समझा जाता हो तो ऐसे वर्ग को परिगणित जाति माना जाए ।

(८) क्या निम्न कहा जाने वाला वर्ग स्वयं निम्न बन गया है या बनाया गया है ? यदि कोई वर्ग अपनी भूल से निम्न बन गया तथा दूसरों ने भी उसे निम्न बनाया तथा वह निम्न कहलाया तो ऐसा वर्ग भी परिगणित जाति में माना जाय ।

(९) क्या उनका पेशा घृणित है या समाज के द्वारा घृणित बना दिया गया है ? बहुत से वर्ग पेशों के कारण ही निम्न कहे जाते हैं, उन पेशों को दूसरे वर्गों के लोग नहीं करते । अत: वे पेशे गन्दे हैं तथा उन्हें करने वाले निम्न हैं तथा उन्हें परिगणित जाति माना जा सकता है ।

इस कसौटी के अनुसार परिगणित जातियों की एक सूची तैयार की गई तथा उसका प्रकाशन किया गया । ऐसी सहस्रों जातियों को निम्न, अछूत, पतित, अन्त्यज, दलित, हरिजन और परिगणित जाति आदि नामों से पुकारा गया ।

सूची को देखने से पता चलता है कि एक-सा पेशा करने वाले लोगों को अलग-अलग प्रदेशों में अलग-अलग नामों से पुकारा गया है । कुछ नाम सभी प्रदेशों में एक से हैं । बोलचाल के हेर-फेर से फर्क होने से नाम में फर्क पड़ गया है । चमार, जाटिये, डोम, जाटव, रैदासी, रविदासी, रमदासी, धुसिया, मोची, मुची, दुमना, बुनकर, मंगी, बेला, हरी आदि नामों से इस बात की पुष्टि हो जाती है कि अलग-अलग प्रदेशों में एक जाति के अलग-अलग नाम पड़ गए तथा इसी कारण जातियों की संख्या भी बढ़कर एक अम्बार हो गई ।

समूचे हरिजन वर्गों की समस्यायें एक-सी हैं । अन्य वर्गों का हरिजन वर्ग के साथ एक-सा व्यवहार पाया जाता है । सभी हरिजन वर्गों की राजनैतिक अवस्था और सामाजिक अवस्था एक सी ही है । सभी हरिजन वर्गों की आर्थिक स्थिति अन्य वर्गों के मुकाबले में कमजोर है ।

(ग) गांधी जी के द्वारा 'हरिजन' शब्द का प्रयोग

महात्मा गांधी ने अन्त्यजों के कहने पर अछूतों को 'हरिजन' नाम का साधारण अर्थ है -- 'हरि + जन' अर्थात् जो हरि का भक्त हो । महात्मा गांधी ने हरिजन की परिभाषा निम्न प्रकार की है--' जो दिन-रात कड़ी मेहनत करके अपना जीवन पालता है, दूसरों की सेवा ही में जिसने अपना सब कुछ खो दिया, उसे अस्पृश्य कहना पाप है, वह तो हरि का भक्त है, 'हरिजन' है ।'

जगन्नाथ देसाई लिखते हैं -- ' यदि अन्त्यज नाम अप्रिय लगता हो बहुत से गांवों में उसके बजाय एक 'हरिजन' शब्द का भी प्रयोग होता है । क्या यह शब्द उपयुक्त न होगा ? यह भक्तिमय भावना का सूचक है, इसलिए अन्त्यज इसे खुशी के साथ स्वीकार करेंगे, अलावा इसके जब ढेढों के घर पर भजन करने के लिए नागर जाति ने नरसी मेहता की निन्दा की थी, तब अपने भजन में उन्होंने कहा था --

'हरिजन' थी जे अन्तर गणशे तेना फोगट फेरा डालारे'

यहां 'हरिजन' अर्थात् भक्त तथा अन्त्यज दोनों हो सकते हैं ।

इस प्रकार 'हरिजन' शब्द के पीछे नरसी मेहता के समान अनन्य भक्त की प्रेरणा है और साथ ही यह शब्द उक्त सारे सुन्दर प्रसंग का सूचक भी है । महात्मा गांधी ने 'हिन्दी नवजीवन' के ६-८-१९३१९३० के अंक में लिखा है--"इस प्रकार यह शब्द नया नहीं है, वरन् गुजरात के आदि कवि द्वारा प्रयुक्त सुन्दर शब्द है और फिर 'हरिजन' शब्द की यह व्याख्या की जा सकती है कि जिन लोगों को समाज ने त्याग दिया है, वे लोग 'हरिजन' हैं और इस शब्द में तीसरा लाभ यह है कि अन्त्यज भाई इस नाम को हृदय से ग्रहण करेंगे और उसके अनुरूप गुणों का विकास करेंगे । ऐसी संभावना भी इसमें है । कालीपरज शब्द मिटकर जैसे रानीपरज हो गया, उसी तरह

अन्त्यज भी नाम व गुण से 'हरिजन' बने।[1]

(ख) 'हरिजन' शब्द का प्राचीन प्रयोग और गांधी जी के द्वारा 'हरिजन' शब्द के प्रयोग में अन्तर

हिन्दी साहित्य के इतिहास में हमें प्राचीन हिन्दी कवियों की एक लम्बी परम्परा देखने को मिलती है, अब देखना यह है कि हिन्दी कवियों ने 'हरिजन' शब्द का किस तरह किस अर्थ में प्रयोग किया है। इसके साथ ही साथ हम महात्मा गांधी के विचारों को भी जानने की कोशिश करेंगे कि उन्होंने अपने समय में प्राचीन हिन्दी कवियों से भिन्न 'हरिजन' शब्द किस अर्थ में प्रयोग किया ।

हिन्दी साहित्य के पहले संस्कृत साहित्य की भी परम्परा मिलती है । संस्कृत ग्रन्थों में जहां-तहां 'शूद्र' शब्द का प्रयोग मिलता है-- यजुर्वेद में एक बहुत महत्वपूर्ण मंत्र है--

'यथेमां वाचं कल्याणीमावदानि जनेभ्यः । ब्रह्मराजन्याभ्या'ᳪ 'शूद्राय' चार्याय च स्वाय चारणाय । प्रियो देवानां दक्षिणायै दातुरिह भूयासमयं मे कामः समृध्यतामुप मादोनमतु ।'[2] (यजु० २६/२)

अर्थात् हे शिष्यों जिस प्रकार इस वेद वाणी को मैं ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र सब के लिए कहता हूं, उसी प्रकार तुम भी इसका सब मनुष्यों में उपदेश किया करो । जिस प्रकार मैं विद्वानों तथा दक्षिणा के देने वाले धनियों का प्रिय बनूंगा, उसी प्रकार तुम लोग भी पक्षपात रहित होकर सर्वप्रिय बनोगे । जिस प्रकार मुझमें अनंत विद्या के सर्वगुण विद्यमान है, वैसे ही जो कोई विद्या का ग्रहण और प्रचार करेगा, उसे भी मोक्ष तथा संसार की समस्त समृद्धियां प्राप्त होंगी ।

---

१. महात्मा गांधी : 'सम्पूर्ण गांधी वाड़्मय' (१६७२ई०), पृ०सं० २६६।
२. श्रीराम शर्मा आचार्य (सम्पा०) : 'यजुर्वेद' (१६६०ई०), पृ०सं० ४२८ ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि वेद में 'शुद्र' शब्द का उल्लेख आया है, पर भिन्न अर्थ में आया है । वैदिक काल में समाज में शुद्र का निम्न स्थान नहीं था ।

गीता में भी हमें 'शुद्र' शब्द मिलता है, पर यहां 'शुद्र' शब्द भक्ति के संदर्भ में प्रयोग हुआ है--

मां हि पार्थ व्यपाश्रित्ययेऽपि स्यु: पापयोनय: ।
स्त्रियों वैश्यास्तथा 'शुद्रास्तेपि' यान्ति परांगतिम् ।।[1]

(गीता अ० ६।३२)

अर्थात्-हे अर्जुन, मेरे शरणागत होने वाला कोई पतित हो, स्त्री वैश्य, शुद्र हो, पाप योनि हो, वह उत्तम गति प्राप्त करता है ।

नृसिंह पुराण में भी 'शुद्र' शब्द भक्ति के संदर्भ में आया है --

ब्राह्मणा: क्षत्रिया: वैश्या: स्त्रिय: 'शुद्रान्त्यजादय:'
सम्पूज्य ते सुरश्रेष्ठं नरसिंहवपुर्धरम्
मुच्यन्ते बाशुभर्मर्विजन्म कोटिसमुद्भवे ।

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, स्त्री, शुद्र, अन्त्यज आदि नृसिंह भगवान् की पूजा करके अपने जन्म जन्म के पापों से मुक्त होते हैं ।

पुराण साहित्य में मत्स्यपुराण का भी स्थान महत्वपूर्ण है । मत्स्यपुराण में जगह-जगह पर 'शुद्र' शब्द का प्रयोग किया गया है । मत्स्यपुराणकार ने लिखा है --

भार्याविरहितो प्येतत् प्रवासस्थोऽपि भक्तिमान् ।
'शुद्रोऽप्यमन्त्रवत्' कुर्यादनेन विधिना बुध: ।।[2] (९५।५६)

---

१. 'श्रीमद्भगवद्गीता', इंडियन प्रेस, गोरखपुर, पृ०१६८ ।

२. पं० श्री राम शर्मा आचार्य : 'मत्स्यपुराण' (१६७०ई०), पृ०१११ ।
(सम्पा०)

अर्थात् जो कोई भार्या से भी विरहित हो तथा प्रवास में स्थिति रखने वाला हो और भक्ति भाव से सम्पन्न शूद्र भी हो, जो मंत्ररहित होता है, उस बुध पुरुष को यह श्राद्ध विधिपूर्वक करना चाहिए।

आगे स्पष्ट करते हुए मत्स्य पुराणकार ने लिखा है--

एवं शूद्रोऽपि सामान्यवृद्धिश्राद्धेऽपि सर्वदा।
नमस्कारेण मन्त्रेण कुर्यादामान्नतः सदा ॥
दान प्रधानः शूद्रः स्यादित्याह भगवान प्रभु।
दानेन सर्वकामाप्तिरस्य संजायते यतः ॥[1] (१५।६५।६६)

इसका आशय सर्वथा स्पष्ट है कि इसी प्रकार से सामान्य वृद्धि श्राद्ध में भी सर्वदा शूद्र को भी नमस्कार मंत्र के द्वारा कच्चे अन्न से ही सदा करना चाहिए। शूद्र वर्ण वाले पुरुष को केवल दान से ही समस्त कामनाओं के फलों की प्राप्ति हो जाया करती है, इसीलिये शूद्र के लिए दान देने का विशेष महत्त्व होता है।

स्मृतियों में भक्ति के प्राधान्य से याज्ञवल्क्य स्मृति का स्थान बहुत महत्वपूर्ण है। इस स्मृति के गृहस्थ धर्म प्रकरण वर्णनम् में कहा गया है--

शूद्रस्य द्विजशुश्रूषा तथा जीवन् वणिग्भवेत्
शिल्पैर्वा विविधैर्जीवेद् द्विजातिहितमाचरन् ॥[2]
(याज्ञ०स्मृतिः ३।१२०)

अर्थात्--शूद्र के धर्म और वृत्ति के लिए द्विजाति की सेवा करना मुख्य कर्म है, जिसमें ब्राह्मण की शुश्रूषा करना परम धर्म होता है। यदि सेवा वृत्ति से जीवन निर्वाह न हो तो वाणिवृत्ति या अन्य अनेक प्रकार के शिल्प कर्मों को द्विजाति के लिए करते हुए जीवन निर्वाह करे।

विभिन्न स्मृतियों में सम्वर्त स्मृति का स्थान बहुत महत्त्वपूर्ण है। सम्वर्त स्मृतिः में जगह-जगह पर 'शूद्र' शब्द मिलता है।

१.पं० श्रीराम शर्मा आचार्य : 'मत्स्य पुराण' (१९७०ई०), पृ०सं०११२।
२.पं०श्रीराम शर्मा आचार्य (सम्पा०) : 'बीस स्मृतियां' (१९६६ई०), दूसरा भाग पृ०सं०२५।

सम्वर्त स्मृति में लिखा है --

ब्राह्मणो 'शूद्रसम्पर्के' कथांचित् समुपागते
कृच्छ्र चान्द्रायणं कुर्य्यात् पावनं परमं स्मृतम् ।[1]

(सम्वर्त स्मृति: १।१६७)

अर्थात्-यदि कोई ब्राह्मण किसी तरह के सम्पर्क में आ जावे तो कृच्छ्र चान्द्रायण व्रत ही परम पावन करता है ।

(वेद)व्यास स्मृति में भी 'शूद्र' शब्द का प्रयोग हुआ है --

'शूद्रो' वर्णश्चतुर्थोऽपि वर्णत्वाद्धर्ममर्हति
वेदमन्त्र स्वधास्वाहावषट् कारादिभिर्विना ।[2]

(व्यास स्मृति: १।६)

इसका आशय तो स्पष्ट है कि चौथा वर्ण शूद्र होता है, वह भी एक वर्ण विशेष होने से धर्म के योग्य होता है, किन्तु उसके धर्म में वेद के मंत्र, स्वधा, स्वाहा तथा वषट्कारादि वर्जित होते हैं ।

~~आपस्तम्ब स्मृति में भी 'शूद्र' शब्द का प्रयोग हुआ है --~~

आपस्तम्ब स्मृति में भी 'शूद्र' शब्द का प्रयोग हुआ है--

'शूद्रान्नं' शूद्रसम्पर्कः शूद्रेणैव सहासनम्
शूद्राज्ज्ञानागमः कंश्चिज्ज्वलन्तमपि पातयेत् ।[3]

(आपस्तम्ब स्मृति ८।८)

शूद्रान्न, शूद्र के साथ सम्पर्क, शूद्र के साथ ही उठना-बैठना और शूद्र से ही ज्ञान प्राप्त करना, तेजयुक्त ब्राह्मण को भी पतित कर देता है ।

१.पं०श्रीराम शर्मा आचार्य(सम्पा०) :'बीस स्मृतियाँ', दूसरा भाग,(१९६६ई०) पृ०सं०२७६ ।

२.वही, पृ०सं० २२३ ।

३.वही, पृ०सं० २७५ ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि वेद, भागवत,पुराण और स्मृति तथा जगह 'शूद्र' शब्द का प्रयोग हुआ है, सर्वप्रथम 'हरिजन' शब्द संस्कृत साहित्य के नरसिंह पुराण में प्राप्त होता है। नरसिंह पुराण के इकतीसवें अध्याय में कहा गया है--

कलियमें महं शुभ चरित, कुल कह्यो रविधान ।
जासु सुने 'हरिजन्न' के, होत सकल कल्याण ॥[1]

इसके बाद 'हरिजन' शब्द का प्रयोग हमें हिन्दी कवियों में देखने को मिलता है।

यद्यपि हिन्दी के प्राचीनतम कवि अमीर खुसरो हैं, इनका काल तेरहवीं शताब्दी के लगभग अन्त में माना जाता है, पर उनके काव्य में 'हरिजन' शब्द का प्रयोग नहीं मिलता है। 'हरिजन' शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम हमें संतकाव्य के प्रवर्तक संत कबीर(१३९९ई०-१५१८ई०) की रचनाओं में मिलता है। कबीर के पद तथा साखियों में 'हरिजन' शब्द ढूंढने से मिल जाते हैं, पर कबीर ने 'हरिजन' शब्द का प्रयोग 'हरि के भक्त' के रूप में किया है--

'हरिजन' हंस दशा लिये डोले। निरमल नाम चुनै जस बोले।
मानसरोवर तट के वासी । रामचरन चित आन उदासी ।[2]

अर्थात् -- हरि के भक्त हंस की स्थिति में विचरण करते हैं एवं हंस का-सा आचरण करते हैं। वे प्रभु के निर्मल नाम का उच्चारण करते हैं और उनका यशोगान करते हैं। वे मानसरोवर के तट पर निवास करते हैं, उनका चित्त राम के चरणों में लगा रहता है, अन्य वस्तुओं की ओर से वे उदासीन रहते हैं।

यहां पर हम देखते हैं कि कबीर ने 'हरिजन' शब्द का प्रयोग हरि के भक्त के रूप में किया है। आगे के पदों में भी कबीर ने 'हरिजन' शब्द का प्रयोग किया है--

'है 'हरिजन' सौं जगत करत है। फुनिगा कहुं गरुड़ भखत है।
अचिरज एक देखहु संसारा । सुनहा खेदे कुंजर असवारा ।

---

१. महेशदत्त जी : 'नरसिंह पुराण भाषा, (३१।१)पृ०सं०१२२ ।
२. डा० पारसनाथ तिवारी (सम्पा०): 'कबीर वाणी सुधा' (१९७०ई०)पृ०३।

ऐसा एक अचंभो देखा । जंबुक करै केहरि सौं लेखा ।
कहै कबीर रामभजि भाई। दास अधम गति कबहुं न जाई ।।[1]

अर्थात्-'हरिजन' से जगत् लड़ता है लेकिन भला पतिंगा गरूड़ को खा सकता है। सांसारिक व्यक्ति और हरिभक्त में इतना अन्तर है जितना कि पतिंगे तथा गरूड़ में एवं श्वान और हाथी के सवार में और गीदड़ तथा शेर में होता है ।

अत: यहां पर भी हम देखते हैं कि 'हरिजन' शब्द का प्रयोग हरि के भक्त के रूप में किया है । इसी प्रकार कबीर ने दोहों में भी 'हरिजन' शब्द का प्रयोग हरि के भक्त के रूप में किया है--

'सतगुर सवां नकोई सगा, सोधा सईं न जाति ।
हरि जी सवां न कोई हितू, 'हरिजन' सईं न जाति ।[2]

(सतगुर महिमा कौ अंग) १।२

अर्थात्-सद्‌गुर के समान दूसरा कोई सगा नहीं, ज्ञान अथवा चित्तशुद्धि के समान दूसरा कोई दान नहीं, प्रभु के समान दूसरी कोई जाति नहीं । यहां पर भी 'हरिजन' शब्द का प्रयोग हरिभक्त के रूप में हुआ है ।

इसी प्रकार अपने एक अन्यदोहे में भी 'हरिजन' शब्द का प्रयोग हरि के भक्त के रूप में किया है --

'हैवै बाहन सघन घन, छत्रपती की नारि ।
तासु पटंतर ना तुलै, 'हरिजन' की पनिहारि ।'[3]

(साध महिमा कौ अंग ४।१०)

अर्थात्-जिसके यहां अश्वगज के वाहन हों, सघन धनवाद्य बजते हों और वह छत्रपति की नारी हो तो भी उसकी समता हरिभक्त के पनिहारिन से नहीं हो सकती ।

१.डा० पारसनाथ तिवारी(सम्पा०) :'कबीर वाणी सुधा',(१९७२ई०),पृ०१५ ।
२. वही(१९७२ई०),पृ०२२ ।
३. वही, पृ०३१ ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि कबीर ने अपने सम्पूर्ण काव्य में `हरिजन` शब्द का प्रयोग हरि के भक्त के रूप में किया है ।

अन्य सन्तकवियों में रैदास तथा गुरु नानक (१४६६-१५३८ई०) ने (१५ वीं शती के अन्त से १६ वीं शती के मध्य तक) भी अपने काव्य ग्रन्थों में `हरिजन` शब्द का प्रयोग किया है --

`आज दिवस लेऊं बलिहारा, मेरे गृह आया राम का प्यारा ।
आंगन बंगला भवन भयो पावन, `हरिजन` बैठे हरिजस गावन ।
करूं डंडवत चरन पखारूं, तन मन धन उन उपरि वारूं ।
कथा कहै अरु अर्थ विचारैं, आप तरैं औरन को तारैं ।
कह रैदास मिलैं निजदास, जनम जनम के काटैं पास ।`[1]

अर्थात् यहां भी `हरिजन` शब्द का प्रयोग हरि के भक्त(जन) के रूप में हुआ है ।

रामानन्द के बारह शिष्यों में रैदास भी माने जाते हैं, जो जाति के चमार थे । कबीर के समान वे भी काशी के निवासी बताये जाते हैं । उनका अस्तित्व काल पन्द्रहवें शतक के पिछले भाग से सोलहवें शतक के मध्य तक है । वे भी निर्गुणी थे तथा वे परब्रह्म के व्यापकत्व में विश्वास करते थे । रैदास जी की केवल स्फुट वाणी मिलती है । उनकी वाणी में सरलता तथा स्पष्टता है । उनका प्रभाव फर्रुखाबाद,मिर्जापुर आदि में अधिक पाया जाता है । रैदास ने भी `हरिजन` शब्द हरि के भक्त के रूप में कबीर की भांति किया है । गुरु नानक (१४६६-१५३८ई०) ने भी सन्त काव्य परम्परा में अपने ग्रन्थ में `हरिजन` शब्द का प्रयोग किया है --

`राम रसाइणि बहु मनुराता । सरन रसाइणु गुरमुखि जाता ।
भगत हेतु गुर चरन निवासा । नानक `हरिजन` के दासनि के दासा ।`[2]
(६।८)

१.रैदास बाणी

२.डा० जयराम मिश्र(सम्पा०) :`नानक वाणी`(१९६१ई०),पृ०सं०२८८ ।

अर्थात्-रामरसायन का आस्वादन करके यह मन मतवाला हो जाता है । सब के रसायन हरी को गुरु द्वारा समझ लिया जाता है । भक्ति की प्राप्ति के हेतु गुरु के चरणों को अपने मन में स्थान दिया है । नानक कहते हैं कि मैं हरि के दासों का दास हो गया हूं। (६।८)

अर्थात्-गुरु नानक ने भी 'हरिजन' शब्द का प्रयोग हरि के भक्त के रूप में किया है ।

गुरु नानक (१४६६-१५३८ई०) सिक्ख संप्रदाय के संस्थापक थे और लाहौर से तीस मील दूर तलवंडी गांव के निवासी थे । वे आत्मज्ञानी थे और कबीर की भांति एक ईश्वर हिन्दु-मुस्लिम-ऐक्य के विश्वासी और मूर्तिपूजा तथा कर्मकाण्ड विरोधी थे, किन्तु उनकी वाणी में कबीर का सा तीखापन नहीं है और न उनमें खण्डन-मण्डन की प्रवृत्ति ही पाई जाती है, वैसे भी समाज के उच्चवर्ग से सम्बन्धित होने के कारण उनके और कबीर के दृष्टिकोण में अन्तर होना स्वाभाविक था । उन्होंने त्याग,उदारता, धैर्य,क्षमा आदि मानवी गुणों के लिए प्रेरणा दी । उनके सच्चे उद्गार सिक्ख जाति में आत्म-शक्ति उत्पन्न करते हैं । भाषा भी सरल है । वे निरन्तर भगवान् के ध्यान में मस्त रहते थे । साहित्य तथा साधना के क्षेत्र में गुरु नानक का अपना एक अलग विशिष्ठ स्थान है । गुरु नानक ने भी अपने ग्रन्थ में'हरिजन' शब्द का प्रयोग हरि के भक्त के रूप में कबीर,रैदास आदि कवियों की भांति किया है ।

राम काव्य-परम्परा में वैसे तो तुलसीदास ~~कृत~~ (१५३२-१६२३ई०) तथा केशवदास (१५५५-१६१७ई०) के अतिरिक्त अनेक अन्य कवि हुए । जैसे कृष्णदास, पयहारी, अग्रदास,प्राणचन्द्र(रामायण महानाटक १६१०ई०),हृदयराम (भाषा हनुमन्नाटक,१६२३ई०) आदि पर उनमें तुलसीदास का स्थान बहुत ही महत्वपूर्ण है । तुलसीदास के 'रामचरितमानस' के बालकांड में हमें 'हरिजन' शब्द का प्रयोग मिल जाता है--

सो सुधारि `हरिजन` जिमि लेहीं । दलि दुख दोष बिमल जसु देहीं ।
खलउ करहिं भल पाइ सुसंगू । मिटइ न मलिन सुभाउ अभंगू ।[1]

(बालकाण्ड ६।२)

अर्थात्-भगवान् के भक्त जैसे उस गुण को सुधार लेते हैं और दु:ख दोषों को मिटाकर निर्मल यश देते हैं, वैसे ही दुष्ट भी कभी- कभी उत्तम संग पाकर भलाई करते हैं, परन्तु उनका कभी भंग न होने वाला मलिन स्वभाव नहीं मिटेगा ।

इसी प्रकार दूसरी जगह भी `हरिजन` शब्द का प्रयोग मिलता है --

भृगुसुत समुझि जनेउ बिलोकी । जो कछु कहहु सहउँ रिस रोकी ।[2]
सुर महिसुर `हरिजन` अरु गाई । हमरें कुल इन्ह पर न सुराई ।

(बालकाण्ड ३०५।३)

अर्थात्-भृगुवंशी समझकर तथा यज्ञोपवीत देखकर तो जो कुछ आप कहते हैं, उसे मैं क्रोध को रोक कर सह लेता हूं । देवता, ब्राह्मण, भगवान् के भक्त तथा गौ, इनपर हमारे कुल में वीरता नहीं दिखाई जाती ।

अत: हम देखते हैं कि तुलसीदास ने `हरिजन` शब्द का प्रयोग भगवान के भक्त के रूप में किया है । रामकाव्य-परम्परा में ही नाभादास(१६००ई०) ने अपने काव्य -ग्रन्थ में `हरिजन` शब्द का प्रयोग किया है । नाभादास ने `हरिजन` शब्द का प्रयोग हरि के भक्त के रूप में किया है--

मंगल आदि बिचारि रह वस्तुन और अनूप[3] ।
जन को यश गावते `हरिजन` मंगल रूप ।

(भक्तमाल २१२।२)

---

१. डा० श्यामसुन्दरदास : `रामचरित मानस`(१६३८ई०),पृ०सं०११ |
(सम्पा०)

२. वही, पृ०सं० २६३ ।

३. श्री सीताराम शरण भगवान प्रसाद रूपकला(सम्पा०) :`भक्तमाल`, (१६६२ई०),पृ०सं०४० |

अर्थात्-मंगलाचरणों तथा मंगल वस्तुओं में विचारों से भगवत्-भक्तों का गुण वर्णन ही अनूप जंचता है। इनके से सरोस मंगल मूल और कुछ भी नहीं ठहरता। भगवत् तथा महात्माओं के सुयश को गाते-गाते ही भगवत् के जन मंगलमय हो जाया करते हैं।

नाभादास का यद्यपि ब्रजभाषा में उनकी राममक्ति संबंधी कवितायें अवश्य प्राप्त हैं, किन्तु उनका प्रधान ग्रन्थ `भक्तमाल`(१५८५ई०) है, जिसमें दो सौ भक्तों की भक्त-महिमा सूचक बातें ३१६ छप्पयों में दी गई है। नाभादास १६०० ई० के लगभग वर्तमान थे, तथा गोस्वामी तुलसीदास की मृत्यु के पीछे तक वर्तमान रहे। १७०२ई० में प्रियादास ने `भक्तमाल` पर टीका लिखी, जिसमें भक्तों के अलौकिक कृत्यों और चमत्कारों का ही अधिक उल्लेख है। जिससे नाथ सिद्धों तथा वैष्णवों की विशेषतायें अलग-अलग स्पष्ट हो जाती है। नाभादास ने अपने ग्रन्थ `भक्तमाल` के मंगलाचरण के दोहे में `हरिजन` शब्द का प्रयोग भगवत् के जन के रूप में किया है।

कृष्ण काव्य-परम्परा में मीरां तथा सेनापति(१५८९ई०)ने अपने काव्य ग्रन्थों में `हरिजन` शब्द का प्रयोग किया है--

`आयो सावन भादवारे, बोलण लगा मोर।
मीरां कूं `हरिजन` मिल्यारे, ले गया पवन झकोर।`[१]

यहां मीरां ने `हरिजन` शब्द का प्रयोग हरि के जन के रूप में किया है।

कृष्ण काव्य-परम्परा में तो अनेक कवि हुए, जैसे सूरदास (१४७८-१५८०ई०), नन्ददास (१५३३- १५८६ई०) (`रास-पंचाध्यायी`, `भंवरगीत`), `हित हरिवंश` (`हित चौरासी`), रसखान (१५१८-१६१८ई०) (`प्रेम वाटिका`, `सुजान रसखान`), नरोत्तमदास (१५४५ई०), मीरां (`नरसी जी का माहरा`, `गीत गोविन्द की टीका`, ~~सेनापति(१५८६)~~, `राग गोविन्द` और

---

१. परशुराम चतुर्वेदी (सम्पा०) : `मीराबाई की पदावली` (१९४१ई०), पृ०सं०१९६

'राग सोरठ' आदि, पर इनमें मीरां का एक विशिष्ट स्थान है । सूर ने कृष्ण का वर्णन बाल रूप में किया है, पर मीरां ने तो माधुर्य भाव (दाम्पत्य-भाव) से भक्ति-भावना ग्रहण कर और उनसे विरहिणी बनकर अपने आराध्य देव श्रीकृष्ण से विरह की भिक्षा मांगी । अत: इसी कारण हिन्दी काव्य - कोकिला राजस्थान की मीरां का कृष्ण भक्ति परम्परा में विशेष स्थान है । इनका समय १६ वीं सदी माना जाता है ।

सेनापति (१५८९ई०) ने भी अपने ग्रन्थ 'कवित्त रत्नाकर' में 'हरिजन' शब्द का प्रयोग किया है --

महा मोह- कंदनि में जगत -जकंदनि में,
दिन दुख-दंदनि में जात है बिहाय के ।
सुख को न लेस है, कलेस सब भांतिन को,
सेनापति याहि ते कहत अकुलाय के ॥
आवै मन ऐसो घरबार परिवार तजौं,
डारौं लोक-लाज के समाज बिसराय के ।
'हरिजन' पुंजन में, वृन्दावन कुंजनि में,
रहौं बैठि कहूं तरवर-तर जाय के ।[१]

कृष्ण काव्य-परम्परा में सेनापति का स्थान भी महत्त्वपूर्ण है । सेनापति अनूप शहर के रहने वाले कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे । इनका जन्म १५८९ई० के लगभग माना जाता है । उनकी विशेष ख्याति ऋतु वर्णन के कारण है । ब्रजभाषा काव्य परम्परा में प्रकृति वर्णन प्राय: उद्दीपन के रूप में ही पाया जाता है, किन्तु सेनापति ने ललित पदविन्यास और अपनी भावुकता का आश्रय ग्रहण कर स्वतंत्र रूप से प्रकृति का वर्णन किया । उन्होंने भी 'हरिजन' शब्द का प्रयोग पिछले कवियों की भांति किया है ।

---

१. पं० उमाशंकर शुक्ल (सम्पा०) : 'कवित्त रत्नाकर' (परिशिष्ट), (१९३६ई०), पृ०सं० ११६ ।

अनेक मुसलमान कवियों ने हिन्दी में अनेक प्रकार के ग्रंथ लिखे । उनकी काव्य-साधना तथा प्रेम भावना को देखकर ही भारतेन्दु हरिश्चन्द्र(१८५०-१८८५ई०) ने कहा था --

'इन मुसलमान 'हरिजनने पै कोटिक हिन्दू वारिए ।'

यहाँ भी 'हरिजन' शब्द का प्रयोग हरि के भक्त के रूप में किया गया है । इस प्रकार हम देखते हैं कि प्राचीन कवियों से लेकर भारतेन्दु हरिश्चन्द्र तक ने 'हरिजन' शब्द का प्रयोग हरि के भक्त के रूप में किया है ।

महात्मा गांधी के अनुसार," हर धर्म का यही कहना है कि जिसका कोई भी अभिभावक नहीं होता, उसका अभिभावक भगवान् होता है । इस प्रकार सब धर्मों का कहना है कि भगवान् दीनों की मदद करता है और दुर्बलों की रक्षा करता है । हिन्दुस्तान के चार करोड़ अछूतों के समान निःसंग, असहाय एवं दुर्बल और कौन है ? अतः यदि किसी को भगवान् की सन्तान कहा जा सकता है तो वह केवल अछूतों को ही और इसीलिए अछूतों के लिए 'हरिजन' शब्द का प्रयोग करने का मैंने निश्चय किया है । हिन्दुओं द्वारा अस्पृश्यता की दानवी प्रथा नष्ट होते ही हम सभी को 'हरिजन' कहने लगेंगे, क्योंकि मुझे इस बात[1] का विश्वास है कि उस दशा में हिन्दू भी भगवान् की कृपा के पात्र बन जायेंगे ।"

महादेव देसाई की डायरी में लिखा है,--" मेरे लिए तो इस नाम ('हरिजन' शब्द) का अर्थ 'भगवान् के आदमी' ही होता है । विष्णु, शिव या ब्रह्मा में मैं कोई भेद नहीं मानता सभी ईश्वर के नाम है[2] ।"

डा० राजेन्द्र प्रसाद ने 'हरिजन' शब्द के बारे में अपनी आत्मकथा में लिखा है,-'हरिजन' शब्द एक ढोंग का द्योतक है, यह एक अफीम

---

१. मा०रा० अभ्यंकर(सम्पा०) :'राष्ट्रपिता महात्मा गांधी'(१९६९ई०),पृ०सं०१४३

२. नरहरि डा० परीख(सम्पा०): 'महादेव भाई की डायरी'(१९५०ई०), दूसरा भाग,पृ०सं०१२७ ।

का गोला है, जिसे आप हमें भुला देना चाहते हैं। यदि धार्मिक दृष्टि से भी देखा जाये तो यह शब्द अछूत का कफन भरा है। हम हरिजन हैं, हरि के जन तो आप हैं क्या है ? क्या सवर्ण हिन्दू शैतान के जन हैं ? या तो 'हरिजन' मनुष्यमात्र है या कोई नहीं, विशेष रूप से हमें 'हरिजन' का कोई अर्थ नहीं मालूम होता।'[1]

गांधी जी ने एक स्थान पर लिखा है कि "मैं जाति बहिष्कृत के लिए 'हरिजन' शब्द का इस्तेमाल करता हूं।"[2] मुल्कराज आनंद के अनुसार, -- 'हरिजन' का अर्थ तो परमात्मा की संतान होता है। मुझे अफसोस है कि हमारा समाज उन्हें परमात्मा की सन्तानों का दर्जा नहीं देता।'

डा० रामजीलाल सहायक ने अपनी पुस्तक 'हरिजन वर्ग और उनका उत्थान' में लिखा है,-- गांधी जी द्वारा अछूत वर्ग को 'हरिजन' नाम[3] दिया गया। समाज में अछूत के बजाए हरिजन शब्द प्रयोग किया जाने लगा।'

वियोगी हरि ने 'अस्पृश्यता' नामक पुस्तक में लिखा है,-- दलित वर्गों का नया नामकरण 'हरिजन' शब्द स्वयं एक दलित भाई के सुझाव से गांधी जी ने लिया था, क्योंकि कि संसार के सभी धर्मों में ईश्वर को बन्धु विहीनों का बन्धु, निराश्रयों का आश्रय और दुर्बलों का रखवाला कहा गया है। भारत के तथाकथित अछूतों से अधिक बन्धु विहीन, निराश्रित और दुर्बल दूसरे कौन हो सकते हैं ? अतः संघ का तीसरा नाम गांधी जी को अधिक उपयुक्त लगा। शायद राजा जी ने यह आपत्ति की थी कि अस्पृश्यता निवारक ग्राम[4] में अस्पृश्यता के विरुद्ध संघर्ष करने में जो जोर था वह इस नये नाम में नहीं है।'

---

१. राजेन्द्र प्रसाद : 'आत्मकथा', पृ०सं०४३५।
२. वियोगी हरि : 'गांधी और उनके सपने', पृ०सं०१७।
३. डा० रामजीलाल सहायक : 'हरिजन वर्ग और उनका उत्थान' (१६५५ई०), पृ०सं०६२।
४. वियोगी हरि : 'अस्पृश्यता' (१६६६ई०), पृ०सं०६२।

इस प्रकार हमें 'हरिजन' शब्द का एक क्रमिक परम्परा देखने को मिलता है। प्रारम्भ में 'हरिजन' शब्द का प्रयोग हरि के भक्त के रूप में किया गया था पर अछूतों के इस झुकाव पर महात्मा गांधी जी ने 'हरिजन' शब्द का इस्तेमाल अछूतों के लिए किया। आज भी सरकारी प्रयोगों में 'हरिजन' शब्द का प्रयोग होता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि प्राचीनतम रूप में 'हरिजन' शब्द का जो अर्थ था, वर्तमान युग में उसका प्राचीनतम अर्थ लुप्त हो गया दिखता है। अब 'हरिजन' शब्द का प्रयोग एक अनुसूचित जाति के लिए होता है तथा आगे होता रहेगा, ऐसा सम्भावना प्रतीत होती है।

--o--

द्वितीय अध्याय

-0-

हिन्दू समाज और हरिजन

(क) हिन्दू समाज में हरिजनों की स्थिति -- प्राचीन काल में हरिजनों की स्थिति, मध्यकाल में हरिजनों की स्थिति ।

(ख) अंग्रेजी काल में हरिजनों की स्थिति ।

(ग) वर्तमान स्थिति ।

द्वितीय अध्याय

-०-

हिन्दू समाज और हरिजन

(क) हिन्दू समाज में हरिजनों की स्थिति

हमारे समाज को चार वर्णों में बांटा गया है। उसमें, चूंकि शूद्रों की उत्पत्ति पैर से मानी गई है, अतः उनका कार्य अन्य तीनों द्विज वर्णों की सेवा करना है। आज के समाज का समूचा वर्ग किसी न किसी नाम से पुकारा जाता रहा है। शूद्र, श्वपाक, म्लेच्छ, पतित, दलित, अछूत, परिगणित, अनुसूचित हरिजन आदि शब्द किसी एक जाति के लिए नहीं, वरन् समूचे हरिजन वर्ग के लिए प्रयोग किये जाते रहे हैं। `हरिजन` शब्द एक जाति के लिए नहीं है, वरन् उस वर्ग की सभी जातियों के लिए इस शब्द का प्रयोग होता है। अब प्रश्न उठता है कि हरिजन जातियों की दशा प्राचीन, मध्य और अंग्रेजी काल में कैसी रही ?

प्राचीनकाल में हरिजनों की स्थिति

युद्ध की परिस्थितियों के कारण ही आर्य जाति ने श्रम-विभाजन को प्रोत्साहित किया था। आर्यों ने गुण तथा कर्म के अनुसार चार वर्णों की व्यवस्था की। पूजा-पाठ, तपस्या, ज्ञान की खोज आदि की करने वाले ब्राह्मण, रण में जूझने वाले को क्षत्रिय, खेती करने वाले को वैश्य तथा सेवा करने वाले को शूद्र कहा गया।

वर्ण और आश्रम-व्यवस्था का शुद्ध स्वरूप महाभारत काल तक चला। इस सामाजिक संगठन के अनुसार देश ने बढ़कर महती उन्नति की।

विश्व भर में भारतीय सभ्यता का बोलबाला था । महाभारत में एक स्थान पर लिखा है--"हे युधिष्ठिर! शूद्र यदि शील गुण सम्पन्न हो तो उसे भी गुणवान् ब्राह्मण समझो और यदि क्रियाविहीन ब्राह्मण है तो वह शूद्र नहीं, नीच है ।"
इससे स्पष्ट पता चलता है कि समाज में हरिजनों का स्थान निम्न नहीं था ।
महाभारत के युद्ध से बचे निर्बल लोगों ने अपने को जिन्दा रखने के लिए अनेक काम करना शुरू किया, जिससे वे म्लेच्छ, अनार्य, श्वपाक आदि नामों से पुकारे जाने लगे । बुद्ध के समय गरीब लोगों को दास, शूद्र, अन्त्यज, अनार्य नाम से पुकारा जाता था ।
यहां तक लिखा गया --"शूद्र दूसरे का सेवक है, जिसका इच्छानुसार वध तथा निष्कासन किया जा सकता है ।" अशोक के समय के बाद जाति-पांति का तूफान खड़ा हो गया । हरिजनों को अन्त्य समूह में रखा गया और उनके साथ अस्पृश्यता का व्यवहार किया जाने लगा ।

मध्यकाल में हरिजनों की स्थिति

मध्यकाल में हरिजनों की दशा और गिरने लगी । उनके साथ दुर्व्यवहार किया जाने लगा । मुस्लिम वंश के समय हरिजनों को भी अस्पृश्य, अछूत तथा नीच नाम दिया गया । मुगल काल में भी हरिजनों की यही दशा रही। अतः हम कह सकते हैं कि प्राचीन काल में शूद्रों का स्थान नीचा नहीं था । परन्तु समय के साथ इनका स्वरूप भी बदलता गया । आगे हरिजनों को अछूत कहकर पुकारा जाने लगा ।

ज्योतिरीश्वर कवि शेखराचार्य के 'वर्ण रत्नाकर' (१३२५ई०) ग्रन्थ में भी हमें हरिजन जातियों का उल्लेख प्राप्त होता है । 'सेति, खिवर, धानुक, चराडार, चमार, डोड' आदि ४० हरिजन जातियों की गणना मन्द जातियों में की गई है[१] । इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि चौदहवीं शताब्दी में भी हरिजनों की गणना मन्द जातियों के अन्तर्गत होती थी ।

---

१. सुनीतिकुमार चटर्जी और बबुआ जी मिश्र (सम्पा०): 'वर्णरत्नाकर' (१९४०ई०), पृ०सं०१ ।

(ख) अंग्रेजी काल में हरिजनों की स्थिति

मुगल साम्राज्य के पतन के साथ युरोप वालों के पैर यहां जमने लगे । फ्रांस, पुर्तगाल, स्पेन और इंगलैण्ड आदि सभी यहां अपने ठिकाने बनाकर बैठ गये । अंग्रेजों ने अपनी चालाकी और होशियारी से देखते-देखते समूचे देश को गुलामी के पंजों में जकड़ लिया ।

उनकी नीति 'भेद-नीति' ने अपना जौहर दिखाया । हिन्दुस्तानी आपस में लड़ते-झगड़ते, जाति-पांति, छोटे-बड़े के मामलों में उलझे रह गये और अंग्रेज बहादुरों ने अपना काम बना लिया ।

जमींदार, रईस, राजे-महाराजे, सर-उपाधिधारियों आदि का एक समाज ही अलग बन गया । यह समाज अन्य लोगों को घृणा की दृष्टि से देखता था और अनुचित व्यवहार करता था । किसानों और गरीबों को जमींदारों के अनेक बेगार के कार्य करने पड़ते थे ।

ईसाई प्रचारकों ने धर्म परिवर्तन का कार्य किया । अनेक लोग अपना धर्म परिवर्तन कर बैठे । जाति-पांति का दायरा बढ़ गया । हिन्दू-मुस्लिम दंगों ने भी भयानक असर दिखाया । मशीनों के प्रचलन से बेकारी बढ़ी और लोगों ने अपने को जिन्दा रखने के लिए ऐसे कार्य करने शुरू किये, जिनसे जातियां पर जातियां बन गईं ।

बहुत से लोग हाथ से काम-काज करना बुरा समझने लगे । हाथ से काम करने वाले लोगों को छोटा समझा जाने लगा । चमड़े का काम, चमड़ा सिझाना, हल जोतना, घास छीलना, मकान बनाना, सफाई का काम सुअर पालना, सूप बनाना, सांप नचाना, जादूगरी, चटाई बनाना, कपड़ा धोना, मैला उठाना, बाल काटना, श्मशान का रखवाला, बांस से तमाशा दिखाना, पत्तल बनाना आदि धंधों को छोटे काम कहा गया । इन कार्यों को करने वाले नीच समझे जाने लगे और उनसे छुआ-छूत का बर्ताव किया जाने लगा ।

इस प्रकार अंग्रेजी सल्तनत में हरिजनों की दशा निम्न हो गई था। जातियों का कागजातों में लिखा जाना अनिवार्य हो गया। जाति-उपजाति में परहेज होने लगा।

कुली प्रथा का प्रचलन हुआ। इसी में कई छोटी-छोटी जातियों का जन्म हो गया। समाज में हेय समझे जाने वाले लोगों के समूह को अन्त्यज, अछूत, पिछड़ा, परिगणित, दलित, पतित, नीच, अपराधशील नाम दे दिये गये। हरिजनों का मंदिर में जाना रोक दिया, उन्हें कुएं से जल भरने से भी रोका जाने लगा। दलित कहे जाने वाले लोगों की परछाईं तक से परहेज किया जाता था। नाई उनकी हजामत बनाने, कहार पानी ढोने, भिश्ती पानी भरने से इन्कार कर देता था। वे कुएं से पानी नहीं भर सकते थे, चारपाई पर नहीं बैठ सकते थे। स्कूलों में उनके बच्चे पढ़ाये नहीं जाते थे। कोई अच्छी आय के पेशे नहीं कर सकते थे। उनके लोगों के मकान छोटे तथा कच्चे होते थे। उन्हें कई प्रकार की भेंट देनी पड़ती थी और बेगार करनी पड़ती थी।

कहीं-कहीं तो उनकी दशा बहुत ही खराब था। उन्हें सड़कों पर नहीं चलने दिया जाता था। वे घुटने से नीचे कपड़ा नहीं पहिन सकते थे। वे जेवर नहीं पहिन सकते थे। धातु के बर्तन नहीं रख सकते थे। विवाह में खुशी नहीं मना सकते थे। उन्हें जमींदारों के खेत पर बार माने की मजदूरी पर दिन-रात कार्य करना पड़ता था। वे खेती नहीं कर सकते थे और यदि कभी लेते तो उनकी खेती उजाड़ दी जाती थी। वे बस्ती में नहीं रह सकते थे। घोड़े की सवारी नहीं कर सकते थे। वे चप्पल नहीं पहन सकते थे और छाता भी नहीं लगा सकते थे।

बेगार न करने पर उन्हें मकानों और गांवों से निकाल दिया जाता था। उनको खाने के लिए गन्दा, मोटा और थोड़ा अनाज मिल जाता था। बेचारे पेट भरने के लिए न खाई जाने वाली चीजों को खाने लगे थे। अनेक अत्याचारों ने उन्हें डरपोक बना दिया था। वे कितनी ही बुरी आदतों और लतों में फंस गये

थे । उनकी आकृति विकृत हो गई थी । वे सामाजिक प्राणी थे पर समाज में उनकी स्थिति एक पशु से भी खराब थी ।

उनके अपने मकान भी न थे । उनके पीने के पानी का भी इन्तजाम न था । पीने के पानी के लिए भी वे दूसरों पर मोहताज थे और घृणा की बातें सहते थे ।

सभी वर्ग इन गरीब लोगों को सताने और इनपर जुल्म करने में अपना गौरव समझते थे । कोई भी इन्हें तंग और परेशान कर सकता था । इन गरीबों की कोई फरियाद सुनने वाला न था ।

कभी-कभी तो दूसरों की सेवा के काम करने के लिए मना करने पर उनकी सत्ता का बदला दूसरे वर्गों द्वारा जला डाला जाता था । मार-धाड़ तथा गाली-गलौज तो उन्हें कोई भी दे सकता था । उनके राजनैतिक, सामाजिक धार्मिक, नैतिक, शिक्षा सम्बन्धी सभी अधिकार छिने हुए थे । वे गुलामों के भी गुलाम थे । उनका जीवन दुःख और आह से भरा था । वे जीवन से निराश थे ।

अतः हम कह सकते हैं कि अंग्रेजी राज के अन्तर्गत हरिजनों की दशा अत्यन्त गिरी हुई थी । उनके सभी अधिकार छिने हुए थे । हरिजनों की दशा भारत के स्वतंत्र होने के बाद से संभलने लगी और निरन्तर वे तरक्की करते जा रहे हैं ।

ग) वर्तमान स्थिति

विदेशी शोषण तथा अत्याचार के विरोध में प्रतिक्रिया हुई । देश में जनचेतना पैदा हो गई । भौतिक आविष्कारों के फलस्वरूप प्रचार के अनेक साधन उपस्थित हो गये । इस युग में अनेक संस्थाओं ने समाज-सेवा के कार्यों को अपनाया । कितनी ही संस्थाओं ने दलित समाज की भलाई के कार्य भी करने शुरू किये ।

कांग्रेस ने देश की आजादी के लिए आन्दोलन भी किये । कांग्रेस ने रचनात्मक कार्यक्रम की ओर ध्यान दिया तथा हरिजन-सेवा के कार्य

की प्रगति हुई । कांग्रेस के प्रयास से हरिजन सेवा की अनेक संस्थायें स्थापित हुईं। धार्मिक संस्थायें और सरकार तथा के सफल प्रयास से हरिजन समाज की दशा में सुधार होने लगा । देश की स्वतंत्रता मिलने तथा प्रजातंत्रात्मक सरकार ने हरिजन समस्या को सुलझाने के लिए विशेष कदम उठाया । नवयुग हरिजनों के लिये वरदान साबित हुआ । इस काल में जाति-पांति के विचार अभी देश में काम करते हैं, फिर भी कुछ प्रतिशत लोग अब इन विचारों को बेकार तथा शोभा समझते हैं । साम्प्रदायिक विचारों को मिटाने की सरकार ने कोशिश की जा रही है । इन सभी वर्गों के लिए अब अछूत या दलित कहना नहीं समझा जाता । गांधी जी के द्वारा दिया गया 'हरिजन' नाम प्रचलित है तथा प्रायः इसी नाम से इस वर्ग के सभी लोगों को पुकारा जाता है ।

कई उच्च वर्ग के लोग हरिजन वर्ग को छूने लगे हैं । भेदभाव का विचार कम होता जा रहा है । गांव तथा देहात की दशा अभी ठीक नहीं है, वहां अभी भी अछूतपन की भावना काम कर रही है ।

योग्य से योग्य हरिजन के साथ अभी भी कोई अन्य वर्ग का व्यक्ति विवाह का रिश्ता करने को तयार नहीं होता है । खाने-पीने में भी अभी परहेज किया जाता है ।

आर्थिक स्थिति में कोई विशेष सुधार नहीं हुआ है । अभी तो हरिजन वर्ग के लोग पुराने पेशों को करने में ही उलझे रहते हैं । उन पेशों से उनको आय गुजारे भर को भी नहीं होती । उनके मकानों की हालत बड़ी ही दयनीय है । कच्ची दीवारों के घर तथा फूस के झोपड़ों में ही ये गुजारे करते हैं ।

हरिजन वर्ग के पास जमीन की कमी है । अभी भी मेहनत-मजदूरी, घास छीलने के ऊपर झगड़े होते रहते हैं । वर्ण-विशेष के कारण अभी हरिजन समाज को आगे बढ़ने में काफी कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है । अन्य वर्गों के समान वे तरक्की नहीं कर पाते हैं ।

हरिजन वर्ग को राजनैतिक अधिकार प्राप्त है, उन्हें राय देने का अधिकार है। राजनैतिक संस्था में उनके लिए संरक्षण है।

ऊंचा शिक्षा पाने में इस वर्ग का आर्थिक स्थिति बाधक हो जाता है। इस वर्ग में स्वयं भी भेदभाव का भावना काम करता है। वे आपस में भी छुआ-छात करते हैं।

इस वर्ग का जीवन स्तर बहुत हो नीचा है। कई वर्ग तो ऐसे पाये जाते हैं, जिनका आय बहुत हो कम होता है तथा वे प्राय: एक समय भूखे हो रह जाते हैं। वे अच्छे वस्त्र नहीं धारण कर पाते, साफ-सुथरे नहीं रह पाते।

हरिजन समस्या अभी उलझा हुई है। इस दिशा में अभी बहुत कुछ किया जाना है। हरिजन वर्ग अभी अन्य वर्गों से बहुत पिछड़ा है।

कितने ही मन्दिरों के दरवाजे अभी भी हरिजनों के लिए बन्द पड़े हैं। अभी भी अन्य वर्ग के कुओं से पानी भरना हरिजन के लिए कठिन कार्य है।

बहुत सी संस्थाएं हरिजन वर्ग की सेवा का कार्य कर रही हैं। इन संस्थाओं का कार्य अभी हृदय परिवर्तन की ओर बहुत कम है। ये संस्थायें शिक्षा आदि का कार्य तो करती हैं, पर उनका भी अच्छे कार्यकर्ता बनाने की ओर बहुत कम ध्यान है। इन संस्थाओंको हरिजन वर्ग का समर्थन भी प्राप्त नहीं है। बहुत से लोग हरिजन वर्ग को थोड़ा मजदूरी देकर काम करने के लिए बाध्य करते हैं।

भारत की (१९६१ई०) की जनगणना[१] के अनुसार अब यहां हिन्दी प्रदेश की अनुसूचित जाति का विवरण प्रस्तुत है:--

उत्तरप्रदेश के हरिजन वर्ग

१- अगरिया, २- बंगरिया, ३- भुईया, ४- भुईयार, ५- बुलिया, ६- बैराहा, ७- बैरवार, ८- पंका, ९- परिहा, १०- पतारी, ११- कोल, १२- कोरवा, १३- बनमानस, १४- धनग, १५- शिल्पकार,

१ सेन्सस ऑफ इंडिया (१९६१ई०) प्रिण्टेड इन इंडिया बाई दि मैनेजर, गवर्नमेंट ऑफ इण्डिया, पब्लिश्ड बाई दि मैनेजर ऑफ पब्लिकेशन, दिल्ली, १९६६ई०)

९७- कोली, ९८- कोरी, ९९- कोचबंद, १००- कोरिया, १०१- कोतवाल, १०२- डिंग्दर, १०३- मदारा, १०४- बाज़ीगर, १०५- महार, १०६-लट्ठ, १०७- मेगु, १०८- मेगु, १०९- महबावंशी, ११०- बांकर, १११- माल, ११२- धोबार, मज़हबी, ११३- मंग, ११४- मंग-गरोड़ा, ११५- मतंग, ११६- मंग-गरुड़ा, ११७- मेग या मेघवाल, ११८- मेनघवर, ११९- मुरकरी, १२०- नढ़िया, १२१- हबी, १२२- नट, १२३- प्येरा, १२४- परधी, १२५- पासी, १२६-रावल, १२७- [illegible], १२८- सांसिया, १२९- गारभंगा, १३०- थोरी, १३१- नायक, १३२- टिरगर, १३३- टिरबांडा, १३४- तुरी, १३५- वाल्मीकि, १३६-अमरल ।

मध्यप्रदेश के हरिजन वर्ग

१- अवेलिया, २- बगरी, ३- बगड़ी, ४- बलाही, ५- बहना, ६-बलाई, ७- भिदार, ८- चितार, ९- दहित, १०- दहयात, ११- दहल, १२-ददार १३- धानुक, १४- धरकार, १५- वाल्मीक, १६- लालबेगा, १७- देद, १८- धर, १९- धोबा, २०- डाहोर, २१- डोम, २२- डोमार, २३- डोरिग, २४- गैहा, २५-गंडा, २६- घासी, २७- घसिया, २८- होलिया, २९- कंजर, ३०- कटिया, ३१- पाथरिया, ३२- खंगर, ३३- कबेरा, ३४- मिर्धा, ३५- खटिक, ३६- चिकवा, ३७- चिकवो, ३८- कोली या कन, ३९- कोतवाल, ४०- कुचबंद, ४१- कुम्हार, ४२- मदगा, ४३- महार, ४४- मेहरा, ४५- मंग, ४६- मंगगेरोडी, ४७- मेघवाल, ४८- मेहर, ४९- मेहतर, ५०- मंगा, ५१- धानुक, ५२- मोगढिया, ५३- मरवान, ५४-नट, ५५- कलबेलिया, ५६- सपेरा, ५७- परधी, ५८- पासी, ५९- रजहार, ६०-सांसी ६१- संसिया, ६२- बेड़िया, ६३- सिलावट, ६४- जमरल, ६५- मदारी, ६६-गरुडी ।

पंजाब प्रदेश के हरिजन वर्ग

१- आदि-धर्मी, २- वाल्मीकि, ३- चुराध्या मंगा, ४- बंगाली, ५-बरार, ६-बुरार, ७-बैरार, ८- बटवाल, ९- बावरिया, १०- बायरिया, ११- बाजीगर, १२-भंजरा, १३- चमार, १४- जटिया, १५- रैगर, १६- रेहार, १७- रामदासी, १८-रविदासी, १९- धानक, २०- डागी, २१- डरोन, २२- धायोर, २३- धैया, २४- धानुक,

२५- धोबरा, २६- धनग्रियर, २७- सिग्गी, २८- धुमना, २९- महशा, ३०-डोम, ३१- गगरा, ३२- गंधाला, ३३- गंधेल, ३४- गगेला, ३५- कबारपंथा, ३६-कजुलाहा, ३७- खटिक, ३८- कोरी, ३९- कोली, ४०- मरोजा, ४१- मरांबा, ४२- मजहबी, ४३- मेघ, ४४- नट, ४५- औड, ४६- पासी, ४७- पैरना, ४८- फरेरा, ४९-सांसी, ५०- रामदास, ५१- मेहतुल, ५२- मनेश, ५३- सपेला, ५४- सरेरा, ५५- सिकलीगर, ५६- सिरकीबंद ।

दिल्ली प्रदेश के हरिजनवर्ग

१- आदि धर्मी, २- आरिया, ३- अहेरिया, ४- बलाई, ५- बंजारा, ६- बावरिया, ७- बाजीगर, ८- भंगी, ९- भील, १०- चमार, ११-चंवार, १२- जाटया, १३- जाटव, १४- रविदासी, १५- रायदासी, १६- रैगर, १७- रैगर, १८- चोहरा, १९- चूहरा, २०- वाल्मीकि, २१- धानुक, २२- धानक, २३- धोबी, २४- डोम, २५- घरामी, २६-जुलाहा, २७- कबीरपंथी, २८- कुचबंध, २९- कंजर, ३०- सिराह, ३१- खटिक, ३२- कोली, ३३- लालबेगी, ३४-मदारी, ३५- मल्लाह, ३६- मजहबी, ३७- मेघवाल, ३८- नरोबट, ३९- नट(कना),४०-पासी, ४१- पैरना, ४२- सांसी, ४३- मेहकुट, ४४- सपेरा, ४५- सिकलीगर, ४६-सिंगरीवाला, ४७- कबेलिया, ४८- सिरकीबंद ।

बिहार प्रदेश के हरिजन वर्ग

१- बौरी, २- भोगटा, ३- भुईया, ४- भुमि ज , ५-चमार, ६- चौपाल, ७- धोबी, ८- डोम, ९- दुसाध, १०- घासी , ११- हलालखोर, १२- कंजर, १३- कुरारियार, १४- लालबेगी, १५-मोचा, १६-मुसहर,१७- नट, १८- पन, १९- सांसी, २०- डाबगार, २१- तुरी, २२- बनटार, २३-हरी, २४- मेहतर, २५- रजवार ।

हिमाचल प्रदेश के हरिजन वर्ग

१- आदि-धर्मी, २- बाघी, ३- नागलू, ४- बाल्मीकि, ५- बुरा, ६- भंगी, ७- बंधेला, ८- बंगाली, ९- बंजारा, १०-बं[illegible]ी,११-बराद,

१२- बेरार, १३- भटवाल, १४- भावरिया, १५- बाज़ीगर, १६- भंगारा, १७-चमार, १८- मोचा, १९- रामदासी, २०- रविदासी, २१- रामदेविया, २२- बेनाल, २३- धोबी, २४- बुरा, २५- डागी, २६- डोम, २७- डोमना, २८- डुमना, २९- भंजरी, ३०- होली, ३१- हेला, ३२- जोगी, ३३- जुलाहा, ३४- कबीरपंथी, ३५- हियोल, ३६- डुमनी, ३७- कीर, ३८- कमोह, ३९- डगोली, ४०- करोयक, ४१- खटिक, ४२- कोली, ४३- लोहार, ४४- मज़हबी, ४५-मेघ, ४६- नट, ४७- पासी, ४८- फरेहा, ४९- रेहर, ५०- रेहरा, ५१- सांसी, ५२- मेपला, ५३- नारारियर, ५४- सिरयार, ५५- गरहदा, ५६- सिकलीगर, ५७- सोपो, ५८-सिरकीबंद, ५९-टेला, ६०- धोथियर, ६१- थमरा, ६२- बोड ।

-o-

तृतीय अध्याय

-o-

समाज सुधारवादी आन्दोलन और हिन्दी उपन्यास

(क) उन्नीसवीं शती की परिस्थितियां-- ब्रह्म समाज, आर्य समाज, प्रार्थना समाज, थियोसोफिकल सोसायटी, रामकृष्ण मिशन .... आदि ।

(ख) सुधार -आन्दोलनों का हिन्दी उपन्यासों पर प्रभाव ।

तृतीय अध्याय

-0-

समाज सुधारवादी आन्दोलन और हिन्दी उपन्यास

उन्नीसवीं शती की परिस्थितियां

नवीन शिक्षा तथा वैज्ञानिक आविष्कारों के फलस्वरूप उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में भारत में जिस बौद्धिक जागृति एवं नवीन चेतना का विकास हो रहा था, धार्मिक रूढ़ियों का अतिक्रमण उसमें बाधक बन रहा था।[१] भारत में धर्म और समाज के मध्य वस्तुत: कोई विभाजक-रेखा नहीं खींची जा सकती, यहां समाज का आधार धर्म ही है। परम्पराओं में लोगों का इतना मोह था कि धार्मिक आडम्बरों में विश्वास न रखते हुए भी वे उनका पालन करते जा रहे थे। अत: इस कारण इस युग में अनेक सुधारवादी आन्दोलनों का जन्म हुआ और धीरे-धीरे धार्मिक रूढ़ियों में लोगों की आस्था कम होती गई। इसके पीछे कई तत्व क्रियाशील थे। पहली थी पश्चिम की वह चुनौती, जो औद्योगिक क्रान्ति की भावना लेकर आई थी।[2] इसमें मौलिकता का अंश ज्यादा नहीं था। भारतवासियों का अपना एक जीवन था और भौतिकता के पार्श्व में से वे अपने अन्दर आध्यात्मिकता का जो भाव सन्निहित रखते थे, वह अन्य देशों में न था। अत: पश्चिम की इस चुनौती को स्वीकार कर लेने में उन्हें अपनी आत्मा की हत्या का भय लक्षित हुआ। इससे पश्चिम के प्रति एक जबरदस्त प्रतिक्रिया का भाव उत्पन्न हुआ, जिसे पूर्व और पश्चिम का संघर्ष भी कहा जा सकता है। यह वस्तुत: आध्यात्मिक

---

१ डा० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय : `उन्नीसवीं शताब्दी' (१९६३ई०), इलाहाबाद, पृ०सं० ३२।

२ विशेष विवरण के लिए द्रष्टव्य-- रार्बट एन० बेला : `रैलिजन एण्ड प्रोग्रेस इन माडर्न इण्डिया' (१९६५ई०), न्यूयार्क।

दोनों का संघर्ष था । स्वभावत: प्रश्न उठता है कि भारत का तत्कालीन जीर्ण-शीर्ण सामाजिक अवस्था में आध्यात्मिकता का वह भाव कहां से उत्पन्न हुआ । भारत के शिक्षित वर्ग ने एक ओर तो पश्चिम के बढ़ते हुए प्रभाव को देखा तथा दूसरा और अपने देश में सर्वत्र निविड़ अंधकार की छाया व्याप्त देखी । नैराश्य एवं दैन्य की इस विषम परिस्थिति में उन्हें भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति के लुप्त हो जाने की पूर्ण सम्भावना लक्षित हुई और इसकी कल्पना मात्र से ही वे चिंतित हो उठे । अत: इस अंधकार को मिटाने के लिए उन्होंने एक ऐसे भारतीय शास्त्र का स्वरूप निश्चित किया,जो भारतीय शिक्षित वर्ग को तो मान्य हो ही, पश्चिमी जगत् भी उसको मान्यता प्रदान करे । अर्थात् धर्म का ऐसा रूप प्रतिष्ठित हो,जो शुद्ध पौराणिकता और आडम्बरविहीन हो । वह धर्म का स्वरूप उपनिषदों के धर्म में खोजा गया, जो आज भी प्रचलित है । यह वही धर्म था, जिसे शंकराचार्य ने बौद्धों को परास्त करने के लिए प्रयोग किया था । अत: उस युग में जो धार्मिक सुधार आन्दोलन प्रारम्भ हुए, उनका एकमात्र उद्देश्य परम्परागत रूढ़ियों को समाप्त कर धर्म का एक कोई सर्वसम्मत स्वरूप उपस्थित करने का था, जो शिक्षित वर्ग के आडम्बरयुक्त परम्परागत एवं अनावश्यक रूप से कठिन होने के आरोपों से मुक्त हो ।

<u>ब्रह्म समाज</u>

उन्नीसवीं शताब्दी का सर्वप्रथम धार्मिक सुधार आन्दोलन ब्रह्मसमाज (१८२८ई०) के नाम से विख्यात है । इसके प्रवर्तक राजाराम मोहनराय(१७७४-१८३३ई०) थे । राजाराम मोहनराय को नवोत्थान का आदि पुरुष भी कहा जाता है

१.(अ) एच० डी० शाह तथा सी०आर० एम राव : `ट्रेडिशन एण्ड मार्डनिटी इन इण्डिया' (१९६५ई०),बम्बई-१ ।
(ब) एडवर्ड शिल्स : `दि इण्टलेक्चुअल बिटवीन ट्रेडिशन एण्ड माडर्निटी' `द इंडियन सिचुएशन' (१९६१ई०),लन्दन ।
(स) के०एम०पानिकर : `हिन्दू सोसाइटी एट क्रास रोड्स' (१९५५ई०),बम्बई-१ ।
(द) राबर्ट, एन०बेल्ला : `रेलिजन एण्ड प्रोग्रेस इन माडर्न एशिया' (१९६५ई०),न्यूयार्क ।

वे साधक कम और ज्यादा राजनीति और सामाजिक नेता अधिक थे । ब्राह्मण धर्म के अध्ययन से वह शक्ति निकालना चाहिए, जिससे हिन्दू ईसाई होने से बच सकते थे और वे यूरोप के ज्ञान तथा उसके वैज्ञानिक अनुसन्धान की प्रवृत्ति तथा पद्धति को अपनाकर अपने खोये हुए अधिकार को फिर से प्राप्त कर सकते थे । राजाराम मोहन राय धार्मिक कम सामाजिक सुधारक अधिक थे । उन्होंने जो कुछ किया उसे हम राष्ट्रीय सांस्कृतिकता का कार्य कह सकते हैं । उनके द्वारा स्थापित ब्रह्मसमाज पर हिन्दू धर्म का ईसाई अनुवाद होने का आरोप लगाया जाता है, किंतु यह आरोप ठीक नहीं है, क्योंकि ब्रह्मसमाज को ईसाई धर्म की ओर केशव चन्द्र ने मोड़ा। राजाराम मोहन राय तो इस निष्कर्ष पर पहुंचे थे कि भारत के प्राचीनतम सत्यों का यूरोप के नवीन सिद्धांतों के साथ सामंजस्य किये बिना भारत का कल्याण संभव नहीं है। ईसाई धर्म का सामना करने के लिये यह आवश्यक था कि भारत यूरोप की वैज्ञानिकता को ग्रहण करे तथा उस वैज्ञानिकता के साथ अपने धर्म को भी ग्रहण करे। उस धर्म को संसार के सामने रखें। अतएव वैज्ञानिकता का वेदांत से मणिकांचन योग नवोत्थान का प्रधान लक्षण हो गया और राजाराम मोहनराय हिन्दुत्व के उस पक्ष की व्याख्या करने लगे जिसमें रूढ़ियां नहीं थी, मूर्ति-पूजा नहीं थी, अवतारवाद नहीं था, मंदिरों-तीर्थों की कोई बात न थी। राजाराम मोहनराय ने बहु-विवाह-छुआछूत आदि का प्रबल विरोध किया क्योंकि प्राचीन हिन्दू धर्म तथा उपनिषदादि ग्रंथ इसका अनुमोदन नहीं करते। उन्होंने वैदिक हिन्दू धर्म को सरल, सम्पूर्ण और युक्तिसंगत बताया। उन्होंने सबसे बड़ी क्रांतिकारी बात[१] विधवा-विवाह पर जोर देकर की। उनका मत है कि हिन्दुत्व का कोई ऐसा रूप नहीं रहना चाहिए जो विज्ञान और बुद्धिवाद की कसौटी पर खरा न उतरता हो। राजाराम मोहनराय उस महान सेतु के समान हैं जिस पर चढ़कर भारतवर्ष अपने अथाह अतीत

---

१. सर जान कमिंग : (सम्पा० माडर्न इंडिया): ए कोआपरेटिव सर्वे, (१९३१), लन्दन, पृ० सं० १२२ ।

से अज्ञात भविष्य में प्रवेश करता है। हिन्दुओं के बीच नये धर्म के मंतव्यों का प्रचार करने के उद्देश्य से १८२६ ई० में उन्होंने कलकत्ते में वेदान्त कालेज की स्थापना की। एक अन्य सभा की स्थापना की जिसमें अंग्रेज बैरिस्टर तथा द्वारिकानाथ टैगोर जैसे लोग सदस्य थे। इससे उन्हें संतोष न हुआ। इ उन्होंने एक ऐसी सभा की स्थापना करने का विचार किया जो शुद्धतः औपनिषदों सिद्धान्तों (सत्यों) पर आधारित हो। इसलिए १८२८ ई० में उन्होंने ब्रह्मसमाज की स्थापना की जिसका रूप भारतीय था। यह अद्वैतवादी हिन्दुओं की संस्था थी। यूरोप के सम्पर्क से जैसे भारत में नई मानवता जन्म ले रही थी। समाज इस अभिनव हिन्दुत्व का एक रूप था। यह सभी धर्मों के प्रति सहानुभूति शील और उदार था। १९वीं सदी में जो नवोत्थान हुआ उसका आधार धर्म था। राजाराम मोहनराय ने जो विश्व मान्यता की बात कही वह यूरोप में पहले ही उद्भूत हो चुकी थी, किंतु यूरोप की विश्व मानवता संकीर्ण थी। क्योंकि उसमें पूर्वी समाज के लिये स्थान नहीं था। दुर्बल जातियों की गणना नहीं की, किंतु राजाराम मोहनराय की इस मानवता में समस्त भूमंडल की स्वतंत्र, समृद्ध पराधीन, दलित जातियों के लिये एक समान स्थान था। "यह आन्दोलन समाज के एक विशेष अल्पसंख्यक शिक्षित समुदाय तक ही सीमित था"[1]।

उनके बाद इस समाज का भारऔर देवेन्द्रनाथ टगोर और केशवचन्द्र सेन के हाथों गई और धीरेधीरे इस समाज के लोग ईसाई मत की ओर बढ़ने लगे। इसका विरोध आर्य [illegible] समाज ने किया।[2] अपने समाज को विश्वधर्म का व्याख्याता बनाने के लिये उन्होंने सभी धर्मों की उपासना आरम्भ कर दी। हिन्दू, बौद्ध, यहूदी, ईसाई, मुस्लिम और चीनी सभी धर्मों की प्रार्थनायें उनके प्रार्थना संग्रह में सम्मिलित थी। केशवचन्द्रसेन के वैष्णव कीर्तन भी प्रार्थना में मिला लिये गये। होम, आरती कुछ व्रतों के नवीन संस्करण में भी चार बातें हिन्दू धर्म

---

१. डा० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय : "आधुनिक हिन्दी साहित्य" (१९५४), पृ० सं० ९१
२. वही, पृ० सं० ९३

कर रही। सभी सारी बातें ईसाई धर्म की आ गईं। ब्रह्मसमाज के जिस रूप का प्रवर्तन केशवचन्द्रसेन ने किया वह ईसाईपन का ही प्रतिरूप था। केवल उसके इष्टदेव अकेले ईसा मसीह ही नहीं थे। फिर भी ब्रह्म समाज आन्दोलन भारतीय संस्कृति के महान् आन्दोलनों में से एक है। क्योंकि यूरोप से आने वाले अनेक विचारों ने आरम्भ में ब्रह्मसमाज के भीतर से ही हिन्दूधर्म में प्रवेश किया। भारतवर्ष यूरोप के साथ अपना समन्वय खोज रहा था। ब्रह्मसमाज यूरोप का भारतीयकरण नहीं बल्कि भारत के ही यूरोपीयकरण का प्रयास था। पर राजाराम मोहनराय का उद्देश्य भारत को यूरोप बनाना नहीं था। वे यूरोप के नवीन अनुसंधानों के साथ भारत के प्राचीन सत्यों का समन्वय खोज रहे थे। हिन्दुत्व का जो रूप उन्होंने लिया, वह ईसाईपन और इस्लाम से भिन्न न था। ब्रह्मसमाज ने अतुलपन का और केवल संकेत भर किया।

<u>आर्य समाज</u>

इसी समय एक दूसरे शक्तिशाली आन्दोलन का सूत्रपात १८७५ ई० में स्वामी दयानन्द सरस्वती (१८२८-१८८३) के नेतृत्व में हुआ। यह आन्दोलन आर्य समाज आन्दोलन था, जिसका हिन्दी से घनिष्ठ संबंध था। स्वामी दयानंद गुजरात के थे। उन्होंने जातिभेद, विधवा-विवाह के प्रचलन और सम्मिलित खान-पान पर बल प्रदान किया। आर्य समाज आन्दोलन आत्मिक शुद्धि पर अधिक बल देता है और लोगों में आत्मशुद्धि, आत्मगौरव, जाति-धर्म-निष्ठा और परम्परागत रूढ़ियों को समाप्त करने की भावना का संचार कर रहा था।[1] आर्यसमाज आन्दोलन आर्यधर्म को ऐसा स्वरूप प्रदान करना चाहता था, जिससे हर दृष्टि से वह प्रगतिशील, सरल और आडम्बरहीन धर्म की नई ढंग से व्याख्या प्रस्तुत की तथा सत्य को ग्रहण कर और असत्य का त्याग करने, अविद्या का नाश तथा विद्या की वृद्धि पर बल दिया।

१.सर पी०जी० ग्रिफिथ : 'द ब्रिटिश इम्पैक्ट आन इंडिया' (१९५२), लन्दन, पृ० सं० २५२ - २५३

" ईश्वर को सबके कर्म विचारते है। वह नियन्ता जाति-पांति के नाम पर न्याय नहीं करता वरन् कर्म के अनुसार फल देता और न्याय करता है -- ऐसा विश्वास आर्यसमाज के अनुयायियों का था। आर्य समाज के सभा एवं प्रचारकों ने जाति-पांति के विचारों की तथा अछूतपन के भावों की घोर निन्दा की ।

आर्य समाज ने अनेकों गुरुकुल, विद्यालय, पाठशालाओं की स्थापना की। सभी संस्थाओं में हरिजन वर्ग के विद्यार्थियों की शिक्षा-दीक्षा की व्यवस्था की। आर्य समाज के प्रयास से अस्पृश्य वर्ग के लोगों में शिक्षा का अच्छा प्रसार हो गया। आधुनिक काल में हरिजनों का उद्धार आर्य समाज संस्था के द्वारा ही हुआ है।

अन्य उच्चवर्ग के लोग उनसे धार्मिक कृत्यों को करने में भी परहेज करता था। आर्य समाज ने कट्टर पंथियों के मंदिर प्रवेश को हाथ न लगाया। आर्य समाज ने अपने मन्दिर स्थापित किये और उनमें हरिजन वर्ग के लोगों को प्रविष्ट किया और उन्हें वहां धार्मिक शिक्षा दी। सन्ध्या, उपासना, हवनादि की विधियां सिखाईं। सहस्त्रों हरिजनों को जनेऊ पहनाये। एक प्रकार से उन्हें वेद का ज्ञान दिया और इस बन्धन को कि हरिजन वर्ग वेद ज्ञान नहीं पा सकता, तोड़कर फेंक दिया।

आर्य समाज के प्रचारक देश के कोने कोने में प्रचारार्थ पहुंचे। प्रचारक अपने भजनों-उपदेशों में जाति-उत्थान, समाजोत्थान, देशोद्धार, समाज-संगठन के विचारों को व्यक्त करते, सभी वर्गों से मिल जुलकर रहने की अपील करते।

आर्य समाज ने उन बहिष्कृत और दूसरे धर्म में परिवर्तित लोगों को पुन: शुद्धि द्वारा आर्य धर्म में दाखिल किया। लाखों मनुष्य शुद्धि आन्दोलन द्वारा पुन: आर्य धर्म की शरण में आये और उन्होंने जाति तथा समाजोत्थान के कार्य में हाथ बटाया।

दलितोद्धार सभा, पतितोद्धार सभा, शुद्धि सभा तथा मेघोद्धार सभा की स्थापना करके आर्य समाज ने अछूतोद्धार के कार्य को प्रगति दी। इन सभाओं का कार्यक्रम अछूतोद्धार करना ही था। इन सभाओं ने अपने कार्यक्रम को पूर्णत: पूरा

किया।

अन्धविश्वास और साम्प्रदायिक भावों से भरे हुये साहित्य की आलोचना की। आर्य समाज ने नये साहित्य की रचना की और उस साहित्य के द्वारा तत्कालीन समाज के उत्थान का काम किया। पाखंडियों द्वारा फैलाये गये इन गन्दे विचारों का विरोध किया। पाखंडियों के अनुसार हरिजन वर्ग निम्न और हरिजन ही बना रहने के लिये पैदा किया गया है, ये ऊपर उठ नहीं सकते, इन्हें पूजापाठ का अधिकार नहीं, वे गरीब ही बने रहेंगे, उनके भाग्य में ऐसा लिखा गया है, आदि बातें समाज में जड़ जमा हुआ था। आर्य समाज ने इन पाखंड का खंडन किया।

ईश्वर ने सब को एक समान पैदा किया है। न कोई छोटा है न कोई बड़ा, ऊंच-नीच का विचार अमानुषिक है। इसकी ओर ध्यान ही न देना चाहिये, आदि बातों का आर्य समाज ने विचार किया।

आर्य समाज ने हरिजन वर्ग के लोगों को साफ-सुथरा रहने के लिये कार्य किया। साफ-सुथरी आदतें पैदा करने, सदाचार द्वारा कार्य करने के लिये प्रचार किया। आर्यसमाजी वर्ग की बस्तियों में जाने और उनसे सम्पर्क स्थापित करके उनके उत्थान का कार्य करते थे।

हरिजन वर्ग में फैली हुई कुरीतियाँ यथा अभक्ष्यभक्षण, मदिरा पान, बाल विवाह आदि को छुड़ाने के लिये अथक परिश्रम किया। आर्य समाज के प्रयास से लाखों हरिजन वर्ग के लोगों ने इन सभी दोषों को छोड़ा।

हरिजन आर्य समाज ने हरिजन वर्ग को प्रोत्साहित किया। हरिजन वर्ग ने अपने स्वयं मन्दिर बनवाकर उसमें पूजा-पाठ करना आरम्भ किया।

आर्य समाज ने हरिजन वर्ग के ऊपर किये जाने वाले अत्याचारों के विरोध में वातावरण पैदा किया और सताये गये लोगों की हर तरह से मदद की।

आर्य समाज ने हरिजन वर्ग की सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, नैतिक, धार्मिक तथा व्यावहारिक उन्नति के लिये चेष्टा की। आर्य समाज के सफल प्रयास से हरिजन वर्ग दशा बहुत ही अच्छी हो गई और समाज ने उनके प्रति सद्व्यवहार करना आरम्भ किया।

प्रार्थना समाज

"शक्ति सम्पन्न गुणों और समर्थवान् व्यक्ति के सत्संग से उसके गुण और चरित्र का प्रभाव उसके सम्पर्क में आये हुए लोगों के ऊपर होता है। भगवान् की उपासना का अर्थ यह है उसके सम्पर्क में आने से उसके गुणों का पाना तथा उसके द्वारा बनाये गये प्राणियों की सेवा करना।"

बंगाल प्रान्त में इस संस्था का संगठन किया गया। यद्यपि संस्था का प्रचार भगवान् की पूजापाठ की ऐसी सेवा विधि के प्रचार से था जो सभी धर्मों को मान्य है, पर इस समाज ने समाज के दीन-दुःखी लोगों के उत्थान के लिये भी कार्य किया।

जब कभी समाज की ओर से कोई उत्सव या समारोह किया जाता उसमें इस बात पर जोर दिया जाता कि मनुष्य को सभी प्राणियों का, सभी लोगों को चाहे वे जिस वर्ग के हों, जिस वर्ण के हों, चाहे जिस धर्म के मानने वाले हों, समान भाव से सेवा करनी चाहिये। आपस का भेदभाव और तू-तू, मैं-मैं व्यर्थ है।

प्रार्थना समाज के पूजाघरों में सभी वर्ण, सभी वर्ग और धर्म के व्यक्ति सम्मिलित हो सकते थे।

प्रार्थना समाज के कार्य से अनेकों निम्न कहे जाने वाले लोगों की दशा में सुधार हुआ। इस समाज के अनुयायियों के सम्पर्क से उसका चारित्रिक स्तर ऊंचा हुआ।

थियोसोफिकल सोसाइटी

१८७५ई०में ही अमरीका के न्यूयॉर्क नगर में मैडम ब्लेवेट्स्की और कर्नल अल्कॉट ने थियोसोफिकल सोसाइटी की नींव डाली। १८७९ ई० में वे भारतवर्ष आये और यहाँ उसका प्रधान केन्द्र स्थापित किया। उन्होंने अपनी सोसाइटी के द्वारा पाश्चात्य दर्शन की महत्ता प्रकट करने के साथ-साथ भारत की प्राचीन ज्ञान-गरिमा से भी परिचय प्रकट किया। १८९३ई०में जब श्रीमती एनी बिसेंट भारत आईं तो इस मत का और अधिक प्रचार हुआ। उन्होंने भी देश के प्राचीन गौरव का गुणगान किया।

प्रचार से आजाद किया । श्री गांधि प्रभृति ने लोगों के थियोसोफी को जीवेबाज़ी, मदारी का खेल और भैंस का शाप बताने वाला सिद्ध करने और उसका भोले के प्रेम शिक्षित लोगों में प्रचार होने पर भी सामाजिक तथा शिक्षा सम्बन्धी क्षेत्र में इसका गहरा प्रभाव पड़ा, यद्यपि हिन्दी साहित्य से इसका कोई सम्बन्ध नहीं रहा । हां इतना कहा जा सकता है कि थियोसफी ने राष्ट्रीयता का पोषण किया । इसने नवीन शिक्षा को भारत के हितों के विरुद्ध बतलाया ।[1]

<u>रामकृष्ण मिशन</u>

बंगाल में रामकृष्ण परमहंस(१८३६-१८८६ई) भी इसी प्रकार के धार्मिक पुनरुत्थान कार्य में संलग्न थे । उन्होंने हिन्दू धर्म और दर्शन के विभिन्न धाराओं का समन्वय कर धर्म का वह रूप प्रस्तुत किया, जो सरल और आडम्बर-हीन था । स्वामी रामकृष्ण की मृत्यु के बाद उनके शिष्य स्वामी विवेकानन्द (नरेन्द्रनाथ दत्त,१८६३-१९०२ई) ने रामकृष्ण मिशन की स्थापना की और सेवा भाव की वृद्धि में सहायता प्रदान की । उन्होंने वेदान्त दर्शन के अद्वैतवाद पर अधिक बल दिया, क्योंकि उनकी विचारधारा में प्रगतिशील मानवजाति के लिए आगे चलकर सिर्फ वेदान्त धर्म ही कल्याणकारी हो सकता था ।

और भी अनेक सुधारवादी आन्दोलनों का जन्म हुआ, जिन्होंने धार्मिक एवं सामाजिक कुरीतियों और कुप्रथाओं के उन्मूलन में योग दिया । हिन्दी से सम्बन्धित न होने के कारण उनके उल्लेख की यहां आवश्यकता नहीं है । रामकृष्ण परमहंस, स्वामी विवेकानन्द और स्वामी रामतीर्थ के विचार भारतीयता तथा स्वदेश भक्ति के पोषक तथा भारत के नवसमाज को गतिदायक सिद्ध हुए । आर्य समाज ने ब्रह्म समाज का पाश्चात्य प्रभाव रोकने की चेष्टा की। उसने देश का ध्यान वेदों और भारत की प्राचीन सभ्यता की ओर आकृष्ट किया।

१.डा० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय : 'हिन्दी साहित्य का इतिहास',नवां सं०(१९६६ई०), पृ०सं० २३० ।

विपरीतताओं में फैला हुआ अपने को देखता था । स्वामी विवेकानन्द ने ... वेद-नाद ... जगाने में भारत की आध्यात्मिकता का प्रचार किया और अपने शक्तिशाली विचारों से भारत में राष्ट्रीय सामाजिक तथा धार्मिक चेतना को स्फूर्ति प्रदान की । उन्नीसवीं सदी तक सुधारवादी और राजनीतिक आन्दोलनों में काफ़ी गहरा सम्बन्ध था । किन्तु उसके बाद ज्यों-ज्यों राजनीति की प्रमुखता होती गई, त्यों-त्यों धार्मिक और सामाजिक विवाद से भारतीय राजनीतिक एकता को आघात न पहुंचने देने के उद्देश्य से कांग्रेस से अलग-अलग हो गये और बाद को धार्मिक एवं सामाजिक आन्दोलन बिल्कुल पिछड़ गये ।

(ख) सुधार-आन्दोलनों का हिन्दी उपन्यासों पर प्रभाव

इन सामाजिक सुधार आन्दोलनों का हिन्दी उपन्यासों पर बहुत प्रभाव पड़ा है । प्रत्येक उपन्यासकार पर इन आन्दोलनों की छाया मिलती है । स्वतन्त्रता के बाद धर्म का आधार कमजोर हो गया है । नीत्शे की यह घोषणा कि ईश्वर की मृत्यु हो गई है और उसने विश्व के बौद्धिक वर्गों पर अपना अत्यधिक प्रभाव डाला है । स्वयं मार्क्सवाद में एवं सार्त्र के अस्तित्ववाद में धर्म की उपेक्षा भावना ने हमारे स्वतंत्रकालीन उपन्यासकारों को अत्यधिक प्रभावित किया है । और अब हमारे जीवन का प्रमुख आधार धर्म नहीं, आधुनिक चेतना है । प्रश्न उठता है कि जैसा स्वातन्त्र्योत्तरकालीन उपन्यासों में दिखाया गया है, क्या उसी के अनुसार वास्तव में धर्म का कोई सामाजिक आधार नहीं है? इसकी गहराई से जांच करें तो उपन्यासों के समाज और वास्तविक समाज में विचित्र अन्तर्विरोध उपस्थित होगा । समाज में आधुनिकता का परिवेश केवल कि ऊपरी सतह तक सीमित है । जरा सा नाखून से खरोंच कर देखें तो महानगरों में रहने वाले अत्याधुनिक लोग भी कमोबेश उसी धार्मिक भीरुता, आडम्बरप्रिय परम्परा एवं रूढ़ियों के शिकार हैं । जिस प्रकार स्वतंत्रतापूर्व के लोग । इन असंगतियों में ही वर्तमान जीवन विकसित हो रहा है ।

पश्चिमी सभ्यता के साथ सम्पर्क स्थापित होने से विविध सुधारवादी तथा अन्य आन्दोलनों से तथा नई शक्तियों की वृद्धि से अभूतपूर्व

धार्मिक, राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक परिवर्तन हुए, उनसे फलतः हिन्दी उपन्यास की गतिविधि की परम्परा टूटी और नवनिर्माणोन्मुख हुई। इस युग के उपन्यास तीन भागों में बंटा हुआ है-- (१) उच्च वर्ग, (२) मध्य वर्ग और (३) निम्न वर्ग। नवीन परिवर्तनों से केवल मध्य वर्ग प्रभावित हुआ पर दूसरा तथा तीसरा वर्ग निर्जीव रूप से प्रभावित हुए। नवजागरण के कारण हरिजनों ने अधिक क्रियाशीलता प्रकट की। पूर्व तथा पश्चिम के सम्पर्क से नवचेतना उत्पन्न हुई, समाज अपना चिन्तन शक्ति कठोर का [illegible] हुआ। नवयुग के जन्म के साथ विचार स्वातन्त्र्य का जन्म हुआ, साहित्य में उपन्यासों की वृद्धि हुई। लेखकों ने अपना परिपाटी विहित और तिलस्म उपन्यास को छोड़कर दुनिया नई आंखों से देखना शुरू किया। १९ वीं शदी के उपन्यास-लेखकों में सुधार या उपदेश देने की प्रवृत्ति अधिक मिलती है, जब कि इसके विपरीत बीसवीं शदी के उपन्यास साहित्य में लेखक सुधार या उपदेश नहीं देता। यद्यपि हरिजनों को लेकर पुरानी मान्यतायें रही आती हैं, फिर भी इस दिशा में नये लेखकों के द्वारा सुधार हुआ है। तत्कालीन उपन्यासकारों पर राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक और आर्थिक आन्दोलनों की गहरी छाप मिलती है। लज्जाराम शर्मा मेहता, किशोरीलाल गोस्वामी, मन्नन द्विवेदी, चतुरसेन शास्त्री, प्रेमचन्द, भगवतीचरण वर्मा और भगवतीप्रसाद वाजपेयी आदि के उपन्यासों पर हमें आर्य समाज आन्दोलन की गहरी छाप मिलती है। प्रेमचन्द के तो सम्पूर्ण उपन्यास पर आर्य समाज आन्दोलन छाया है। क्योंकि उनके समय आर्य समाज का अधिक प्रभाव था। बीसवीं शताब्दी के हिन्दी उपन्यास-लेखकों ने अपनी रचनाओं में धर्म और समाज की पतित अवस्था पर क्षोभ प्रकट करते हुए हरिजनों के भविष्य के उन्नत और प्रशस्त जीवन की ओर इंगित किया है। हिन्दी उपन्यास-लेखकों ने हरिजनों के राजनीतिक, सामाजिक, अधिकारों का

---

१. विशेष विवरण के लिए द्रष्टव्य-- लज्जाराम शर्मा, किशोरीलाल गोस्वामी और मन्नन द्विवेदी के उपन्यास।

२. विशेष विवरण के लिए द्रष्टव्य-- प्रेमचन्द, चतुरसेन शास्त्री और बेचन शर्मा 'उग्र' आदि के उपन्यास।

और अधिक ध्यान दिया है । इन्होंने सामाजिक खान-पान, रहन-सहन, विवाह आदि सभी बातों पर हरिजनों को महत्वपूर्ण स्थान देने की बात कही है । समाज की संकीर्ण मान्यताओं पर कटु व्यंग्य भी किये गये हैं । अधिकतर उपन्यासकारों का हरिजनों के प्रति दृष्टिकोण सुधारवादी है । उनका लक्ष्य हरिजनों को ऊपर उठाना है, लेकिन कुछ उपन्यासकार ऐसे भी हैं । जो पुरानी मान्यताओं को ही महत्व देते हैं । इस प्रकार हिन्दी उपन्यास-क्षेत्र में दो वर्ग हो गये हैं-- एक तो हरिजनों के प्रति दुर्भावना नहीं रखता । उसको हम सुधारवादी वर्ग कह सकते हैं तथा दूसरा जो कि हरिजनों के प्रति दुर्भावना रखता है । इसको हम पुरातनवादी या परम्परावादी वर्ग कह सकते हैं । सुधारवादी लेखकों में निम्न प्रमुख हैं -- प्रेमचन्द, गोविन्दवल्लभ पंत, पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र', बैजनाथ केडिया, सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन 'अज्ञेय', वृन्दावनलाल वर्मा, अमृतलाल नागर, संतोष नारायण नौटियाल, फणीश्वरनाथ रेणु, रामदेव, उदयशंकर भट्ट, राधिकारमण प्रसाद सिंह, भगवतीचरण वर्मा, रांगेय राघव, नागार्जुन, चतुरसेन शास्त्री, दयाशंकर मिश्र, यज्ञदत्त शर्मा, रामप्रकाश कपूर, राजेन्द्र अवस्थी, बैजनाथ गुप्त, यादवेन्द्र शर्मा 'चन्द्र', रामदरश मिश्र, मन्मथनाथ गुप्त, रामचन्द्र तिवारी, शैलेश मटियानी और भगवती प्रसाद वाजपेयी आदि ।

दूसरा वर्ग पुरातनवादी या संकीर्णवादी विचारधारा का समर्थक है । पुरातन परम्परा का पालन करने वाले उपन्यासों में निम्न का नाम प्रमुख है -- लज्जाराम शर्मा, विश्वम्भरनाथ शर्मा 'कौशिक', शिवपूजनसहाय, रामगोविन्द मिश्र, चन्द्र विद्यावाचस्पति, कमल शुक्ल, रामप्रसाद मिश्र और हा. सुरेश सिनहा आदि ।

नवोत्थान काल के प्रथम चरण में जितने भी सार्वजनिक आंदोलनों का जन्म हुआ, उन सभी ने अन्तत: किसी न किसी प्रकार राष्ट्रीय रूप ग्रहण किया । हिन्दी से सम्बन्ध रखने वाला आर्य समाज आंदोलन उसका प्रत्यक्ष उदाहरण है । सैद्धान्तिक दृष्टि से प्रेमचन्द और आर्य समाजी विचारों में कोई अन्तर नहीं है । वास्तव में हिन्दी नवोत्थान त्रिमुखी होकर अवतरित हुआ ।

आधुनिककालीन हिन्दी उपन्यासकार [illegible] बिल्कुल ही नया भवन खड़ा करने के स्थान पर उसी प्राचीन दृढ़ नींव पर नये ज्ञान और अनुभव के प्रकाश में एक ऐसे भव्य प्रासाद का निर्माण करना चाहते हैं, जिसके नीचे में रहकर सारा भारतीय जनसमूह सुख और शान्तिपूर्वक धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष जीवन के ये चारों फल प्राप्त कर सके। वे पुरातन से परिचित हैं। उनकी रचनाओं में महाभारत का स्वर प्रतिध्वनित है। वे भारतीय संस्कृति के प्रधान अंग पुनर्जन्म के सिद्धान्त से परिचित हैं। उन्होंने अपने नवीनतम ज्ञान और अनुभव का सम्बल लेकर भारतीय मंगल-क्रान्ति के लिए शंख-ध्वनि की है।

धार्मिक शिक्षा के स्थान पर उदारवादी तथा धर्मनिरपेक्ष शिक्षा का प्रभाव, समाज सुधार-आन्दोलनों द्वारा फैलाई चेतना, जाति-व्यवस्था पर सुधारकों का प्रहार, स्वाधीनता-आन्दोलन का जनतंत्रीय आधार आदि कारणों से हरिजनों के प्रति अत्याचार करने की भावना को ठेस पहुँची है। किन्तु एक विशेष प्रवृत्ति [illegible] में रही कि सवर्ण हिन्दू मिलकर हरिजनों के ऊपर अत्याचार करने लगे, जिससे दोनों वर्गों में कटुता बढ़ गई। उपन्यासकारों ने इस बात का उल्लेख किया है। स्वामी दयानन्द सरस्वती और महात्मा गांधी ने वर्ण व्यवस्था को उपयोगी सामाजिक संगठन अवश्य माना है, लेकिन दोनों सुधारकों ने हरिजनों के ऊपर अत्याचार करने की भावना का विरोध किया है। सुधारवादी समाज-सुधारकों ने हरिजनों की सामाजिक स्थिति को ऊपर उठाने की कोशिश की है।

विभिन्न समाज सुधारवादी आन्दोलनों ने उपन्यासों को प्रभावित किया है, जैसा कि हम ऊपर उल्लेख कर चुके हैं। हिन्दी उपन्यासकारों ने सुधारवादी आन्दोलनों के प्रभाव को ग्रहण किया है, जिससे उपन्यासों को लोकप्रियता का व्यापक आधार प्रदान किया है। इन आन्दोलनों ने उपन्यास लेखकों की रचना-प्रक्रिया पर भी विशेष प्रभाव डाला है और उपन्यासों में

सुधारवादी आन्दोलनों के बहुविध-पक्षों की समस्याओं का विशद् चित्रण मिलता है। निष्कर्ष रूप में हम यह कह सकते हैं कि प्रारम्भ से लेकर आज तक हिन्दी-उपन्यासों ने किंचित् अपवादों को छोड़कर मुख्य रूप से सुधारवादी आन्दोलनों को ही विशाल फलक पर विभिन्न औपन्यासिक प्रवृत्तियों के माध्यम से प्रस्तुत किया है।

-०-

चतुर्थ अध्याय

-0-

सामाजिक स्थिति और हरिजन

(क) खान-पान ।

(ख) विवाह-सम्बन्ध ।

(ग) अमानुषिक व्यवहार-- शासक वर्ग , राज वर्ग,जमींदार वर्ग,
पूंजीपति वर्ग, कुएं से पानी न भरने देना,
समाज का अमानुषिक व्यवहार ।

(घ) वेश्या-समस्या ।

(ङ०) शिक्षा ।

(च) छुआछूत का भावना ।

(छ) मनुष्यत्व की भावना ।

-0-
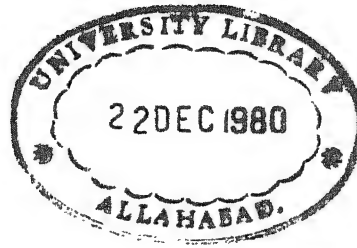
चतुर्थ अध्याय

-0-

सामाजिक स्थिति और हरिजन

प्राचीन युग से ही भारतीय इतिहास में हरिजनों के साथ भेद-भाव की भावना चली आ रही है। यह एक मानवीय समस्या है। आश्चर्य है कि बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ होने के पूर्व किसी ने इस ओर ध्यान न दिया। न इस बात का प्रयत्न किया गया कि समाज में हरिजनों को कोई अधिकार दिया जाय। हरिजन भी सवर्ण हिन्दुओं की तरह मनुष्य के पुतले हैं,किन्तु पता नहीं क्यों समाज उनके साथ छुआछूत का व्यवहार करता है। यही छुआछूत की समस्या उपन्यासों में विभिन्न उपन्यासकारों के द्वारा चित्रित की गई है।

वर्णाश्रम धर्म पर आस्था और उसके फलस्वरूप अस्पृश्यता की समस्या दोनों ही इस युग में विविध दोत्रीय आयामों के साथ प्रकट होती है। वर्णाश्रम धर्म पर यह आस्था यदि संकीर्ण भूमिका में प्रस्तुत न की जाती तो कदाचित् उस रूप में अस्पृश्यता की समस्या को अपने साथ न खींच पाती, जिस रूप में उसे रूढ़िवादियों ने प्रस्तुत किया, परन्तु जैसा कि स्पष्ट है कि समय के साथ वर्गों और वर्णों का यह आदि विभाजन अपनी व्यापकता को खोता हुआ एक अत्यधिक संकीर्ण मनोवृत्ति का सूचक बनता गया। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र-- इन चार वर्णों में प्रथम तीन द्विज होने के कारण समाज में अधिकार और प्रतिष्ठा पाते रहे, चौथा अर्थात् शूद्र वर्ण, इन तीनों से विच्छिन्न होता हुआ अन्तत: ऐसी परिस्थिति में पहुंचा कि उसे अस्पृश्य

घोषित कर दिया गया । बहुत हुआ तो उच्च वर्ग की ओर से यत्र-तत्र उसकी दीन-दशा पर कृत्रिम आंसू बहा दिये गये, उनके उद्धार के लिए कतिपय उपायों का निर्देश करके उन पर कुछ दया प्रदर्शित कर दी गई । लेकिन सामाजिक और व्यावहारिक दृष्टि से किसी ने उनके प्रति न तो वास्तविक सहानुभूति ही प्रदर्शित की और न उन्हें इस योग्य ही समझा । यदि किसी और प्रयत्न भी किये गये तो वर्णों की सामाजिक व्याख्या कर चार वर्णों के समानाधिकार की बात कही गई तो पुरातन वर्ग के द्वारा धर्म, समाज और जातीयता के खतरे की आवाज उठाकर सारे प्रगतिशील प्रयत्नों को दबा दिया गया । इन स्थितियों को हम समाज का अध्ययन करने पर पाते हैं ।

आज समाज-रचना में सवर्ण हिन्दुओं को नेतृत्व समाप्त हो रहा है, वरन् हरिजन वर्ग भी आधुनिक समाज-रचना में यथासंभव योगदान दे रहा है । हरिजन वर्ग अपना अस्तित्व बनाये रखने के लिए अपनी समस्याओं को सुलझा रहा है । यद्यपि हरिजन वर्ग में कुण्ठा और निराशा की भावना व्याप्त है । हरिजनों को विकास का मार्ग नहीं मिल रहा है । जब समाज उसके ऊपर अत्याचार करता है तो वह अपना आक्रोश समाज के ऊपर उतारता है ।

पहले हरिजनों का समाज में सम्मानित स्थान था, शिक्षा-दीक्षा की कोई उचित व्यवस्था न थी । लोग उनकी परछाईं से भी बचते थे और उनसे घृणा करते थे । पहली बार सन् १९१७ई०में कलकत्ता कांग्रेस ने प्रस्ताव पास किया, 'यह कांग्रेस भारतवासियों से आग्रह करती है कि परम्परा से दलित जातियों पर जो रुकावटें चली आ रही हैं, वे बहुत दुख देने वाली और क्षोभकारक हैं, जिससे दलित जातियों को बहुत कठिनाइयों,असुविधाओं और सख्तियों का सामना करना पड़ता है । इसलिए न्याय और भलमन्सी का यह तकाजा है कि यह तमाम बन्दिशें उठा ली जायें ।'[१] गांधी जी इस समस्या का समाधान सहयोग और सद्भाव

---

१. डा० पट्टाभि सीतारमैय्या : 'कांग्रेस का इतिहास' (१९३८ई०),पृ०सं०५९ ।

से करना चाहते थे । उनका विचार था कि हरिजन वर्ग को जाति-व्यवस्था से भिन्न मानकर उसे मिटा दिया जाय और उन्हें हिन्दू सामाजिक-संगठन में प्रतिष्ठित स्थान प्राप्त हो ।

समाजशास्त्रियों के अनुसार हरिजनों की प्रमुख समस्यायें सामूहिक खान-पान, विवाह, उच्च-शिक्षा और मन्दिरों में प्रवेश के साथ समाज में प्रतिष्ठा की हैं । छूत भावना या अस्पृश्यता मुख्यत: इन्हीं खान रूढ़िवादी मान्यताओं पर आधारित हैं । प्रारम्भिक उपन्यासों में इस समस्या के चित्रण की भी तो कल्पना ही नहीं की जा सकती थी, क्योंकि उस काल के अधिकांश उपन्यासकार सनातनधर्मी थे और वे परम्पराओं को भले ही वे रूढ़ एवं आडम्बरपूर्ण हों, सुरक्षित रखने के पक्षपाती थे । आगे चलकर परवर्ती उपन्यासकारों ने पूर्ववर्ती मतों का खण्डन किया और इस बात पर बल दिया कि अस्पृश्यता की समस्या कोई समस्या नहीं है ।

क) खान-पान

समाजशास्त्रियों के अनुसार रूढ़िवादी मान्यताओं में खान-पान सम्बन्धी नियम प्रमुख हैं । हरिजन के साथ बैठकर भोजन करना दूर रहा, उसके छूने मात्र से सवर्ण हिन्दू शरीर को अशुद्ध मानते हैं । हिन्दी उपन्यासकारों ने इस रूढ़िवादी मान्यता के प्रति विद्रोह किया है । यह उनके सामाजिक तत्वों के विश्लेषण-बुद्धि का संकेत भी देता है ।

'गबन' (१९३०ई०) में देवीदीन की पत्नी जग्गो ने रमानाथ (जो कि ब्राह्मण है) की रसोई बनाने के लिए एक ब्राह्मणी की व्यवस्था कर दी है, "उन वृद्ध आंखों से प्रसाद, अखण्ड मातृत्व झलक रहा था, कितना विशुद्ध कितना पवित्र । ऊंच-नीच और जाति-मर्यादा का विचार आप ही मिट गया। बोला-- जब तुम मेरी माता हो गयी तो फिर काहे का छूत विचार ? मैं तुम्हारे ही हाथ का खाऊंगा ।

बुढ़िया ने जीभ दांतों से दबाकर कहा-- अरे नहीं बेटा, मैं तुम्हारा धरम न लूंगी । कहां तुम बराम्हन और कहां हम खटिक । ऐसा कहीं

हुआ है ?

' मैं तो तुम्हारी रसोई में खाऊंगा । जब मां-बाप खटिक है तो बेटा भी खटिक है । जिसकी आत्मा बड़ी हो वही ब्राह्मण है ।'[1] ऐसा लगता कि खान-पान में स्वयं प्रेमचन्द अपना विचार प्रकट कर रहे हैं ।

प्रेमचन्द के विचार से खाने-पीने से कोई नीच नहीं हो जाता। प्रेम से जो भोजन मिलता है, वह पवित्र होता है । उसे देवता भी खाते हैं । लेखक ने इस उपन्यास में नीच तथा ऊंचे जाति के बीच भेद-भाव को भी दर्शाया है, --' खटिक कोई नीच जाति नहीं है । हम लोग बराम्हन के हाथ भी नहीं खाते । कहार का पानी तक नहीं पीते । मांस-मछरी हाथ से नहीं छूते ब । कोई कोई सराब पीते है, मुदा छिप छिपकर । इसने किसी को नहीं छोड़ा बेटा । बड़े बड़े तिलकधारी गटागट पीते हैं ।'[2] देवीदीन धर्म के ठेकेदारों से, बड़े बड़े सेठों से भी चिढ़ता है, क्योंकि ये लोग प्रयाग में गंगा स्नान करके अपने मिल-मजदूरों को हंटरों से पिटवाते हैं, इसलिए देवीदीन ऐसे ढोंगियों एवं सफेदपोश नेताओं को चुनौती देते हुए कहता है,--' अरे तुम क्या देश का उद्धार करोगे ? पहले अपना उद्धार कर लो । गरीबों को लूटकर विलायत का घर भरना तुम्हारा काम है, इसीलिए देश में तुम्हारा जन्म हुआ है । ' जालपा भी कहती है,--' मैं उस चमार को उस पण्डित से अच्छा समझूंगी जो हमेशा दूसरों का धन खाया करता है ।'[3]

देवीदीन खटिक के द्वारा समाज के अत्याचारों का लेखक दिग्दर्शन कराता है, साथ ही साथ देवीदीन द्वारा अत्याचार का विरोध करवा कर प्रेमचन्द यह सिद्ध करदेते हैं कि हरिजनों के अत्याचार के प्रति वे विद्रोह की भावना रखते हैं । वे हरिजनों पर अत्याचार करने देने के पक्ष में नहीं हैं । प्रेमचन्द एक ऐसे

---

१. प्रेमचन्द : 'गबन' (१९३०ई०), पृ०सं० २७६ ।

२. वही, पृ०सं० २८० ।

३. वही, पृ०सं० ३६७ ।

उपन्यासकार (कलाकार) हैं, जिन्होंने हरिजनों की समस्याओं का इतना सजीव चित्रण किया है, मानो वे स्वयं हरिजन बनकर उनकी समस्याओं को भुगत रहे हों ।

देवदीन के द्वारा धार्मिक मैदानों की आलोचना करके प्रेमचन्द ने उचित ही किया है । समाज में हरिजनों का शोषण करने वाले ये ही तत्व प्रमुख होते हैं । रमानाथ का देवीदीन खटिक के हाथ से खान-पान व्यवहार कब करने को चित्रित करके प्रेमचन्द ने हरिजनों के उत्थान को ही चित्रित किया है । प्रेमचन्द जानते थे कि जब तक सवर्णों का हरिजनों के साथ खान-पान का व्यवहार न होगा, तब तक हरिजनों की सामाजिक, धार्मिक उन्नति नहीं हो सकती है तथा यह कार्य सर्वप्रथम प्रेमचन्द द्वारा सम्पन्न किया व किया गया ।

प्रेमचन्द कदाचित् पहले उपन्यासकार हैं, जिन्होंने समस्याओं की ओर ध्यान दिया और उपन्यासों के माध्यम से उनका यथार्थ चित्रण किया । 'कर्मभूमि' (१९३२ई०) में अमरकांत चमारों के एक गांव में आश्रय लेता है और गांव की चमारिन बुढ़िया सलोनी की झोपड़ी में रहने लगता है । उसी गांव में ठाकुर परिवार और मुन्शी रैदासीयों के चौधरी गूदड़ का बहू बनकर व जीवन व्यतीत करता है । अमरकान्त से जब सलोनी कहती है,- 'यहां तो सब रैदासी रहते हैं भैया ।'[1] अमरकान्त उत्तर देता है,- 'मैं जाति-पांति नहीं मानता, माता जी, जो सच्चा हो, वह चमार भी हो तो आदर के योग्य है । जो दगाबाज, झूठा, लम्पट हो, वह ब्राह्मण भी हो तो आदर के योग्य नहीं ।'[2] प्रेमचन्द ने इस प्रकार अमरकांत के माध्यम से इसी समस्या का समाधान प्रस्तुत किया है । प्रेमचन्द का यह वक्तव्य न केवल खान-पान से सम्बन्धित मान्यता पर प्रहार करता है, वरन् मानव के चरित्र के आधारभूत मानदण्ड भी उपस्थित करता है । इस वाक्य के द्वारा प्रेमचन्द के सामाजिक विचारों पर भी प्रकाश पड़ता है । इसके द्वारा यह भी स्पष्ट हो जाता है कि प्रेमचन्द आर्य समाज की भांति कर्म पर बल देते हैं,

---

१. प्रेमचन्द : 'कर्मभूमि' (१९३२ई०), पृष्ठांक २६६ ।

२. वही, पृष्ठांक २९६ ।

जन्म पर नहीं बल देते हैं । आर्य समाज भी कर्म पर बल देता है, जन्म पर नहीं, इसी बात का प्रभाव प्रेमचन्द पर भी है । प्रेमचन्द के 'कर्मभूमि' (१९३२ई०) उपन्यास में हरिजनोत्थान की भावना मिलती है । 'कर्मभूमि' (१९३२ई०) उपन्यास में सवर्ण हिन्दू पात्र भी हरिजनों के आन्दोलन में सहायक ही नहीं बनते, बल्कि वे तो नायक बनकर हरिजनों के आन्दोलन का नेतृत्व करते हैं । यह प्रेमचन्द जी का ही मानवतावादी दृष्टिकोण है कि उन्होंने सवर्ण हिन्दू तथा हरिजनों के साथ सम्बन्ध की भावना को चित्रित किया है । डा० सुरेश सिन्हा का मत है--'यह उपन्यास राजनीतिक, सामाजिक समस्याओं पर आधारित है ।'[1]

(ख) विवाह- सम्बन्ध

वर्णाश्रम धर्म के अनुसार परस्पर विभिन्न सवर्णों में भी विवाह सम्बन्ध होना सामान्य बात नहीं, लेकिन हरिजनों से विवाह-सम्बन्ध का होना अकल्पनीय बात है । विवाह की बात दूर रही, सवर्ण हिन्दू के घर में हरिजन को शरण भी नहीं मिलती ।

युगों से नीची जाति के समुदाय की सुन्दर महिलाओं को सवर्ण अपने विलास का साधन मानते रहे हैं । जागृत हरिजनों का जितना आक्रोश उनके महिला वर्ग के साथ किए गए इन अपराधों से आता है और उनके मन में सवर्णों के लिए जितनी घृणा इन घटनाओं से पैदा होती है, उतनी किसी और बात से नहीं ।

पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' हिन्दी के यथार्थवादी उपन्यासकार हैं । 'उग्र' जी के उपन्यास में समाज के घृणित परिवेश का द्वार खुला मिलता है । 'मनुष्यानन्द' (१९३५ई०) उपन्यास में हरिजनों का सामाजिक उत्पीड़न का चित्रण मिलता है । 'उग्र' जी ने 'मनुष्यानन्द' (१९३५ई०) उपन्यास में अनेक सामाजिक समस्याओं को उभारा है । 'मनुष्यानन्द' (१९३५ई०) उपन्यास में 'उग्र' जी ने हरिजन स्त्री के

---

१. डा० सुरेश सिन्हा : 'प्रेमचन्द : एक विवेचन', पृ०सं० २८६ ।

ऊपर बलात्कार की समस्या को उभारा है । बुधुआ भंगी की लड़की रधिया पर सवर्ण हिन्दू पात्र घनश्याम की नजर पड़ जाती है । घनश्याम सवर्णों के काम-लोलुप, स्वार्थी पुरुषों का प्रतिनिधित्व करता है । वह रधिया को फुसला कर उसका शारीरिक भोग करता है । हरिजनों की दुर्बलताओं का हमारा समाज गलत फायदा उठाता है, इस बात का संकेत लेखक ने दिया है । उच्च वर्ग के पुरुष लोग हरिजन स्त्रियों से केवल वासना तृप्ति चाहते हैं, शादी नहीं, जैसा कि घनश्याम राधा से कहता है,-`यद्यपि मेरे सामने तुम्हें कोई अछूत की नजर से देखे तो उसकी पुतलियां निकाल लूं, फिर भी इस काशी में प्रकट रूप से वैवाहिक जीवन हम नहीं व्यतीत कर सकते ।` हरिजन स्त्रियों को बहला-फुसला कर उनपर किस तरह बलात्कार किया जाता है, इसका नग्न चित्रण `मनुष्यानन्द` (१९३५ई०) में है । `उग्र` जी लिखते हैं,--`और वह राधा ? उस बाला ने तो उस पर अपना सर्वस्व निछावर कर दिया । वह उसके प्रलोभनों में बुरी तरह फंस गया । सामाजिक या दुनिया के ढंग से विवाह न होने पर भी वह उसकी भार्या का पार्ट खेलने लगी ।` `उग्र` जी हरिजनों के शोषण के खिलाफ रहे हैं । वह राधा पर बलात्कार का समर्थन नहीं करना चाहते । घनश्याम तो राधा पर बलात्कार करने में सफल इसलिए हो जाता है कि वह उसे बहला फुसला कर अपने वश में कर लेता है । लेकिन सच्चाई का पता लगने पर राधा घनश्याम का विरोध करती है । राधा घनश्याम से कहती है,-`दूर रहो ।` उसने क्रोध से कहा,--`तुम्हारे मुंह से शराब की बू आती है ।तुम्हारे बदन से व्यभिचार की बू आती है ।` राधा आगे कहती है, --`ऐसे पापी तुम निकले घनश्याम । ऐसा तुमने मुझे लूटा घनश्याम । ऐसे मतलबी, ऐसे दुराचारी

---

१. पाण्डेय बेचन शर्मा `उग्र` : `मनुष्यानन्द`(१९३५ई०),पृ०सं०१६४ ।

२. वही, पृ०सं० १६५ ।

३. वही, पृ०सं० १८७ ।

और [illegible] भले बन गये तुम घन-श्याम । तुमने तो मेरी दुनिया ही में आग लगा दी । इससे स्पष्ट हो जाता है कि `उग्र' जी राधा पर अत्याचार करने के पक्ष में भी नहीं है ।

राधा का चरित्र एक आदर्श नारी की तरह है । हालांकि वह गलतफहमी का शिकार हो जाती है,पर उसको सच्चाई मालूम होती है, तो वह उसका विरोध करती है । राधा पर बलात्कार का जो चित्रण किया गया है, वह गलत प्रतीत होता है। इससे यही स्पष्ट हो जाता है कि हरिजन स्त्री को कोई भी हिन्दू अपनी कामवासना की तृप्ति के लिए प्रयोग कर सकता है। भारतीय समाज में यह बिल्कुल उचित नहीं प्रतीत होता । किसी पर बलात्कार करना तो मानवतावादी दृष्टि से भी उचित नहीं प्रतीत होता । घनश्याम का दोस्त गुलाब जब राधा पर बलात्कार करना चाहता है तो राधा उस अत्याचार का डटकर विरोध करती है । गुलाब राधा से कहता है-`ताकती क्या हो, मेरा नाम गुलाबचन्द है । मैं वही हूं, जिसे तुमने उस दिन देखा था, [illegible] अपने [illegible] के साथ । ओह! तुम तो आज पूरी औरत और मजेदार हो गयी हो । बड़े मजे लिये इस पाजी ने । मुझको ठग लिया । खैर-- तो आज ही सही प्यारी । मेरी जान । मैं भी तुम पर मरना चाहता हूं ।'[2] गुलाब के न मानने पर राधा उस पर चरण प्रहार करती है-`तुरन्त ही राधा संभली और बड़े जोर से धक्का मार कर उसने बेसुध कामी को पृथ्वी पर गिरा दिया--[3] हुंकार उठी क्रोध से-- और उस पतित पर लगी लगातार चरण प्रहार करने । यहां पर भी `उग्र' जी ने बलात्कार की समस्या उठाई है । भारतीय समाज में

१.पाण्डेय बेचन शर्मा `उग्र' : `मनुष्यानन्द'(१९३५ई०),पृ०सं० १८८ ।

२.वही, पृ०सं० १७३।

३.वही, पृ०सं० १७३ ।

औरतों को अबला समझा जाता है, इसलिए गुलाब को भी राधा पर अत्याचार करते दिखाया गया है। उग्र जी गुलाब के द्वारा राधा पर सामाजिक अत्याचार के समर्थक नहीं हैं, अतः इसलिये वे गुलाब को राधा के ही द्वारा दण्ड दिलवा देते हैं। गुलाबचन्द का राधा के ऊपर अत्याचार किया जाना भारतीय समाज में उचित नहीं जान पड़ता। यह सामाजिक दृष्टि से अनुकूल भी नहीं है।

विवाह-शादी की बात तो दूर रहा, सवर्ण हिन्दू के घर में हरिजन को शरण मिलना भी असम्भव है। 'मनुष्यानन्द' (१९३५ई०) उपन्यास में हरिजनों के साथ भेदभाव की समस्या को भी उभारा गया है। 'मनुष्यानन्द' (1935ई०) उपन्यास में भंगी बुधुआ की अनाथ बालिका के पालन-पोषण के लिए कोई हिन्दू तैयार नहीं होता, समाज की इस अमानुषिक तथा विगत संकीर्णता पर 'उग्र' जी कठोर व्यंग्य करते हैं। अघोरी, मिस्टर खां से कहता है-- 'यद्यपि यहां पर ऐसे अनेक हिन्दू हैं, जिनके यहां कुत्ते भी पले हैं-- और एक नहीं अनेक। भंगी, समाज का मैला दूर फेंकने के कारण पतित है, और उसी मैले को खाने वाला कुत्ता शुद्ध है। 'वसुधैव कुटुम्बकम्' सिद्धान्त आदि के आविष्कार इन हिन्दुओं का ऐसा पतन हो गया है पादरी साहब।'[1] ऐसा लगता है कि अघोरी के रूप में स्वयं 'उग्र' जी ने भारतीय समाज के रीति-रिवाजों का मजाक उड़ाया हो। 'उग्र' जी समाज की इन बुराइयों के प्रति अपना विरोध भी प्रकट करते हैं। अंततः बुधुआ की बेटी का पालन कोई हिन्दू नहीं वरन् ईसाई पादरी करता है। हरिजन लड़की सवर्ण हिन्दुओं की दृष्टि में केवल कामलिप्सा का साधन मात्र हो सकती है। यहां तक ही नहीं, हरिजन को तो लोग धोबी के कुत्ते की तरह समझते हैं, आश्रय देने की बात तो दूर ही रहता है, 'अभी आश्रय देने वालों की कमी नहीं' एक दूसरे महा-हिन्दू ने कहा बशर्ते कि किसी ऊंची जात की संतान हो। भला भंगी की बच्ची को कौन पालेगा? अछूतों की संतानें तो ऊंची जात वालों के लिए धोबी के कुत्ते की तरह है-- न घर के और न घाट के।'[2] इससे

---

१. पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' : 'मनुष्यानन्द' (१९३५ई०), पृ०सं०७८ ।

२. वही, पृ० सं० ६१ ।

नायिकाओं सवर्णों की मनोवृत्तियों का परिचय मिल जाता है ।

`गोदान` (१९३६ई०) उपन्यास में सिलिया चमारिन के साथ ब्राह्मण मातादीन का काम-सम्बन्ध है । `गोदान` (१९३६ई०) उपन्यास में सिलिया चमारिन के ऊपर भी सामाजिक अत्याचार को चित्रित किया गया है । सिलिया हरखू चमार की बेटी है । प्रेमचन्द `गोदान` (१९३६ई०) में सिलिया तथा ब्राह्मण मातादीन का सम्बन्ध दिखाते हैं । अवैध पुत्र और अन्तत: विवाह-सम्बन्ध के द्वारा प्रेमचन्द ने सर्वप्रथम हरिजन से रोटी-बेटी का सम्बन्ध स्थापित किया है । मातादीन का सिलिया के साथ विवाह करना तो दूर रहा, वह उसके हाथ का छुआ पानी भी नहीं पीता । प्रेमचन्द का विद्रोही स्वर सिलिया की मां के शब्दों व्यक्त होता है;-" तुम बड़े नेमी धरमी हो । उसके साथ सोओगे, लेकिन उसके हाथ का पानी न पिओगे । यही चुड़ैल है कि यह सब सहती है । मैं तो ऐसे आदमी को माहुर दे देती ।"[1] चमारों का आक्रोश इसलिए है कि मातादीन ने सिलिया का सतीत्व नष्ट किया है, अत: उसे पत्नी के रूप में स्वीकार करें । सिलिया का बूढ़ा बाप कहता है;-" हमें ब्राह्मण बना दो, हमारी सारी बिरादरी बनने को तैयार है । जब यह सामर्थ नहीं है तो फिर तुम भी चमार बनो । हमारे साथ खाओ, पिओ, हमारे साथ उठो-बैठो । हमारी इज्जत लेते हो तो अपना धर्म हमें दो ।"[2] मातादीन सिलिया से केवल काम-वासना की तृप्ति चाहता है । वह उसके साथ खान-पान में भेद रखता है पर अपनी स्त्री बनाकर उसे रखे हुए है । सिलिया का बाप इसपर कहता है;-" सिलिया कन्या जात है, किसी न किसी के घर जायगी ही । इसपर हमें कुछ नहीं कहना है; मगर उसे जो कोई भी रखे, हमारा होकर रहे । तुम हमें ब्राह्मण नहीं बना सकते हो, मुदा हम तुम्हें चमार बना सकते हैं ।"[3]

---

१. प्रेमचन्द : `गोदान` (१९३६ई०), पृ०सं० २५१ ।

२. वही, पृ० सं० १५१ ।

३. वही, पृ० सं० १५१ ।

प्रेमचन्द का सिलिया के अत्याचार के प्रति दृष्टिकोण समर्थन का नहीं है। वह मातादीन के द्वारा सिलिया पर किए गए अत्याचारों से सन्तुष्ट नहीं है। तब अन्त में वे मातादीन के व्यवहार को परिवर्तित कराके ही दम लेते हैं। मातादीन कहता है,- "मैं ब्राह्मण नहीं, चमार ही रहना चाहता हूं, जो अपना धरम पाले वही ब्राह्मण है, जो धरम से मुंह मोड़े वही चमार है।"[1]

सिलिया के प्रति किए गए मातादीन के अत्याचार को हम ठीक नहीं कह सकते हैं। मातादीन तो 'मनुष्यानन्द' (१९१५ई०) के पात्र घनश्याम के समान हैं। जैसे घनश्याम, राधा से वासना तृप्ति चाहता है, वैसे 'गोदान' (१९३६ई०) उपन्यास में मातादीन सिलिया से काम-वासना की तृप्ति करना चाहता है। या हम कह सकते हैं कि मातादीन का चरित्र 'हरिजन' (१९५६ई०) उपन्यास के पात्र रमेश के समान है, जो कि शंकर चमार की पुत्री से वासना की तृप्ति चाहता है पर विवाह करना नहीं। मातादीन का सिलिया के प्रति दृष्टिकोण गलत है। काम-संबंध तो स्त्री-पुरुष में तभी हो सकता है, जब कि वे आपस में विवाहित हों। समाज इसी को मान्यता देता है। अगर कोई किसी हरिजन स्त्री के साथ काम-भावना रखता है, तो समाज में उसे अपनी स्त्री मानने में हर्ज क्या है? अगर कोई नहीं मानता तो वह उसके ऊपर अत्याचार करता है। मातादीन भी सिलिया को पहले अपनी स्त्री बनाता है पर बाद में उसे अपनी स्त्री समाज में नहीं प्रदर्शित करना चाहता, जो कि सामाजिक दृष्टि से उचित नहीं प्रतीत होता। हरिजनों को समाज में प्रतिष्ठित करने के लिए तथा हरिजन समस्या का समाधान करने के लिए यह जरूरी था कि हरिजनों का सवर्ण लोगों के साथ विवाह-सम्बन्ध कराया जाय तथा यह कार्य प्रथम बार प्रेमचन्द जी के द्वारा 'गोदान' (१९३६ई०) में उत्पन्न हुआ।

उच्च वर्ण के लोग हरिजन युवतियों से केवल वासना तृप्ति ही

---

१. 'गोदान', (१९३६ई०), पृ०सं० २०३।

चाहते हैं, विवाह करना नहीं । `हरिजन` उपन्यास (१९४९ई०) में इस समस्या का चित्रण मिलता है । `हरिजन` (१९४९ई०) उपन्यास में एक ओर तो रमेश कजरा चमारिन से अवैध सम्बन्ध रखता है, तो दूसरी ओर वह सरोज से भी प्रेम करता है । सरोज के पूछने पर रमेश कहता है;-` सरो तुम भ्रम में हो । कजरा मेरा कुछ नहीं है । इस समय संसार में उसका कोई नहीं ।`

`क्यों तुम तो हो ।` सरोज ने फिर व्यंग्य किया ।` सरोज का कहना तो ठीक ही है, ` जब तुम विवाह करके स्त्री घर में ला सकते हो तो विवाह नहीं कर सकते ?` इससे स्पष्ट हो जाता है कि रमेश अपनी वासना तृप्ति के लिए कजरा को माध्यम बनाना चाहता है, पर उसको अपना स्त्री नहीं मानता, जैसा कि `मनुष्यानन्द` (१९३५ई०) उपन्यास में घनश्याम, बुधुआ भंगी की लड़की राधा से वासना तृप्ति चाहता है । रमेश तथा घनश्याम इन स्त्रियों दोनों का ही चरित्र समान दिखाई पड़ता है । लेखक का कजरी के अत्याचार के प्रति दृष्टिकोण समर्थन का नहीं है, क्योंकि सरोज स्वयं ऐसे दुश्चरित्र पात्र से शादी नहीं करना चाहती है । इससे स्पष्ट हो जाता है कि `हरिजन` (१९४९ई०) उपन्यास के में हरिजनों के अत्याचार के प्रति लेखक पुरातन-परम्परा को नहीं मानता, बल्कि वह तो कुछ हरिजन पात्रों के द्वारा अत्याचार के प्रति विरोध प्रकट करता है ।

रमेश जो कि कजरी से केवल वासना की तृप्ति चाहता है, उसको हम सामाजिक दृष्टि से उचित नहीं कह सकते हैं । क्योंकि यह तो एक सामाजिक अपराध के समान है । इससे स्पष्ट हो जाता है कि रमेश एक दुराचारी व्यक्ति है। इसका इस दृष्टिकोण से समर्थन नहीं किया जा सकता कि अगर समाज में व्यभिचार की खुली छूट दे दी जाय तो फिर हमारे समाज का क्या होगा ? हमारा समाज तो कुछ सिद्धान्तों के आधार पर टिका है । अगर उन सिद्धान्तों को बलि हम दे

१.संतोष नारायण नौटियाल : `हरिजन` (१९४९ई०), पृ०सं० २९९ ।
२.वही, पृ०सं० २९९ ।

पैसों से फिर समाज का भगवान् ही मालिक है । अत: रमेश जो अत्याचार कजरी के प्रति करता है, उसको उचित ही नहीं ठहराया जा सकता है ।

इन सब सामाजिक अत्याचारों को देखकर कजरी कहती है कि, 'मुझे ज्ञात होना चाहिए था कि समाज मुझसे घृणा करता है, मुझे ऊंचा उठने देना नहीं जानता ।'[1] कजरी का यह वाक्य उसकी स्थितियों को स्वयं स्पष्ट कर देता है ।

'मैला आंचल' (१९५४ई०) में रमपियरिया चमारिन के ऊपर महंत रामदास जी के द्वारा सामाजिक अत्याचार किया जाता है । महंत रमपियरिया से अनुचित संबंध रखने के लिए रमपियरिया को दासिन बना लेते हैं, 'महंथ रामदास जी रमपियरिया को दासिन रखेंगे ।'[2] रमपियरिया की मां के ऊपर पंच दण्ड लगाती है कि उसे एक शाम भोज देना होगा, ' रमपियरिया की माये को एक शाम भोज देना होगा । महंथ साहेब 'जात' ले रहे हैं तो 'भात' दें ।... क्या कहती है रमपियरिया की माये ? .... देगी ?.... तब ठीक है ।.. . बोलिये पंच परमेसर क्या विचार ? ... जो दस का विचार । दस का विचार हो गया --रमपियरिया दासिन बन सकती है ।'जाति' की बंदिस में जरा सा 'ढील' देने से सब गड़बड़ा जाता है । इसी तरह बराबर 'पंचायत' होती रहे तब तो ?'[3] जब महंत को भात देने का प्रश्न मालूम होता है तो वह मुकर जाता है कि लछमी से पूछेंगे । रमजू की स्त्री इसका विरोध करती है--' लछमी से पूछेंगे ?.... रमपियरिया की माये । सुनती हो ? हम कहा था न-- उसने तो इनको भेंड़ा बना लिया है ।.... अरे, महंथ साहेब... लछमी कौन होती है जो आप उससे पुछियेगा ?'[4] इससे स्पष्ट हो जाता है कि रेणु जी रमपियरिया

---

१. गतोष नारायण नौटियाल : 'हरिजन' (१९४९ई०), पृ०सं० २२२।

२. फणीश्वरनाथ 'रेणु' : 'मैला आंचल' (१९५४ई०), पृ०सं० २८१।

३. वही, पृ०सं० ३०६ ।

४. वही, पृ०सं० ३०७ ।

के ऊपर हुए अत्याचार से असन्तुष्ट है । लेखक तो पंचों के भात मांगने पर विरोध प्रकट करता है । पंचों का भात मांगना कहां तक उचित है ? 'रमपियरिया जवान है, उसे जो मन में आये कर सकता है ।'[1] कोई व्यक्ति अगर अपना इच्छा से किसी का दास बनता है तो उसपर क्यों जुर्माना किया जाये ? रामदास तो दुष्ट चरित्र का व्यक्ति है, वह एक तरफ तो लछमा कोठारिन को दास बना कर रखे हैं तथा दूसरी ओर रमपियरिया को दास बनाता है । लेखक रामदास के इस व्यवहार से सन्तुष्ट नहीं है । वह इसका विरोध करवाता है, --'महंथ साहेब । बुरा मत मानियेगा-- आप हिंजड़ा हैं । रम्मु को ले जाने के लिए उठकर खड़ी होती है, --'रमपियरिया को लछमिनियां का लौंडी बनायेंगे ? महंथ साहेब, हम सब समझ गये ।'[2] महंथ तो एक तरफ रमपियारी का समर्थन करते हैं तो दूसरी ओर लछमा से कहते हैं;--'बाबा काहे फेंकती हो ? बात-बात में इतना गुस्सा होने से कैसे काम होगा ?' महंथ साहेब गम्भीर होकर कहते हैं;--' तुम मेरी 'गुरुभाई' हो ।.....रमपियारी को रास्ते पर लाना तुम्हारा काम है ।'[3] महंथ रमपियरिया का भी तिरस्कार करता है;--' चुप चमारिन ।....अखाड़ा को भरस्ट कर दिया ।'[4] रामदास गुसाईं जैसे लोगों के पाप से ही धरती कलमला रही है । रामदास का रमपियारी का तिरस्कार कर देना तो अनुचित लगता है । जब रामदास ने रमपियारी का भार वहन किया तो उसे क्यों भगाना चाहता है ? हमारे समाज में हरिजनों को नीचा समझा जाता है, इसीलिए सभी उनके साथ अत्याचार करना चाहते हैं ।

फणीश्वरनाथ रेणु के 'परती : परिकथा'(१९५७ई०) में हमारा समाज मलारी चमाइन के ऊपर इतना अत्याचार करता है कि वह घबरा कर सुवंश

१.फणीश्वरनाथ रेणु : 'मैला आंचल',(१९५४ई०),पृ०सं०३०५ ।

२.वही, पृ०सं० ३०७ ।

३.वही, पृ०सं० ३०८ ।

४.वही, पृ०सं० ३२६ ।

लाल नामक सवर्ण हिन्दू के साथ भाग जाता है,--"मलारी और सुवंश लाल गांव छोड़कर भाग गए । घाट-बाट, खेत-खलिहान, डगर-सड़क और अड़ा-गली में बस एक ही चर्चा-- हद हो गई । जुल्म हो गया ।"[1]

मलारी जब परजात सुवंश के साथ भागकर शादी कर लेती है तो समाज के लोग उससे दण्ड वसूल करना चाहते हैं । यह तो उसी प्रकार का अत्याचार है, जिस प्रकार `गोदान`(१९३६ई०) में होरी शुद्ध के साथ मुखिया लोग दंड वसूल करते हैं । महाजन के विरुद्ध षड्यंत्र में हरिजन वर्ग के लोग भी मिल जाते हैं । महाजन, मलारी की मां से कहता है, --" जाति वालों को भात कहां से देंगे री सालो । तेरी बेटी ने सरकारी शादी की है तो कहे न सरकार बाप से जाति वालों का भात कहां से आवेगा ? बोल ? बोलती है मुट्टी कि लगाऊं लात ?... ।"[2]

मलारी के विवाह करने पर जो दंड समाज के लोग उसके मां-बाप को देते हैं, मैं उससे असहमत हूं । आज तो कानून के द्वारा अस्पृश्यता का अंत किया जा चुका है । अन्तर्जातीय विवाह को प्रोत्साहन दिया जा रहा है । अगर मलारी ने सुवंशलाल से शादी कर ली तो क्या बुरा किया ? इसकी तो प्रशंसा की जानी चाहिए कि मलारी ने ऐसा साहस भरा कदम उठाया । व समाज के सवर्ण लोग तो इस ताक में रहते हैं कि कब मौका मिले, कब हरिजनों को परेशान करें । बालगोविन भी सवर्णों के अत्याचार का पर्दाफाश करता है तथा उसके विरुद्ध विरोध प्रकट करता है । लुत्तो बाबू जब सभापति के से बालगोविन मोची की शिकायत करता है तो बालगोविन मोची कहता है,--"देखिये, सभापति जी। यह इसी तरह हमेशा लट्ठ-वादुकर थोपता है, हमको । जात का नाम लेकर मसखरी करता है । समझा दीजिये । बालगोविन मोची ने हाथ जोड़ कर विनती करते हुए कहा-- हमेशा चमार-चमार कहता है । कहता है, यह

१.फणीश्वर नाथ रेणु : `परती: परिकथा`,(१९५७ई०),पृ०सं० ३९७ ।
२. वही, पृ०सं० ३९२ ।

राजनीयत का बात है, ढोल पीपी बजाने वाले क्या समझें.....।'[1] इससे यह तो स्पष्ट हो ही जाता है कि सवर्ण लोग हरिजनों के बारे में कितने कुत्सित विचार रखते हैं। हमारा तो स्पष्ट मत है कि जब तक हरिजन लोग अपने अधिकारों और कर्त्तव्यों के प्रति सजग नहीं होंगे, उनकी राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक उन्नति होना सम्भव नहीं है।

'अनावृत' (१९५९ई०) में फागली भंगिन के ऊपर भी सुन्दर अत्याचार करता है। पहले वह फागली भंगिन को मीठी बातों से बहकाता है। सुन्दर फागली से कहता है,--'धरम-अधरम कुछ नहीं है, पाप-पुण्य दुकानदारी, मंदिर हम पंडितों के भोजनालय और धनिकहीन स्त्रियों के मिलने के स्थान...।'[2] फागली विरोध करती है, --'मैं भंगिन हूं, तुम मुझे प्यार करोगे तो तुम्हारा धरम बिगड़ जायगा।'

फागली विरोध करती है,--'मैं भंगिन हूं, तुम मुझे प्यार करोगे तो तुम्हारा धरम बिगड़ जायगा।'

'तू तो पागल है फागली, आदमी का धर्म कभी नहीं बिगड़ता। तूने धर्मशास्त्र नहीं पढ़े हैं। ब्रह्मा ने अपनी ही कन्या सरस्वती से प्रेम किया, विष्णु ने वृंदा को छला, चन्द्रमा ने गुरुपत्नी पर कुदृष्टि डाली सूर्य ने घोड़ी से, वायु भगवान ने केसरी वानर की पत्नी से.... देवताओं के गुरु बृहस्पति ने अपने छोटे भाई उतथ्य की पत्नी ममता से और पराशर ने धीवर कन्या[3] मत्स्यगंधा से। ..... फिर मैं ब्राह्मण होकर तुमसे प्यार करूं तो क्या बुरा है?' बारबाक तो स्पष्ट कर देता है--'उसका फागली के साथ एक पति का सम्बन्ध है[4]।' इस प्रकार

१.फणीश्वरनाथ रेणु :'परती : परिकथा'(१९५७ई०),पृ०सं०७०।
२.यादवेन्द्र शर्मा चन्द्र :'अनावृत'(१९५९ई०),पृ०सं०९४।
३.वही, पृ०सं० ९६ ।
४.वही, पृ०सं० १३५ ।

वह फागलों के साथ पति की सम्बन्ध स्थापित कर लेता है, वह फागला के ऊपर बलात्कार करता है ।

लेखक फागलो भंगिन के ऊपर होने वाले अत्याचार का विरोध करता है । लेखक हरिजन स्त्री के साथ बलात्कार किये जाने पर रोष प्रकट करता है । चारवाक कहता है,--"मुझे ऐसा लगता है कि एक दैत्य के हाथों एक देवी पड़ गई है। जालंधर के हाथों महासती वृन्दा ।"[1] चारवाक आगे कहता है,-- "उस लम्पट फागला के अन्धविश्वास का तुम बेजा फायदा उठाकर अपने समाज में झूठी प्रतिष्ठा बनाए रखो, यह मेरे लिए सह्य नहीं । सुन्दर ।"[2]

जैसा कि मैं कह चुका हूं कि सुन्दर एक दुष्ट चरित्र का व्यक्ति है । वह फागलो से केवल वासना पूर्ति ही करना चाहता है, विवाह करना नहीं । वह फागलो से एक ओर तो यह कहता है,--"मुझे लोग धर्मघोर समाज विरोधी की भी परवाह नहीं । फागली, ईश्वर के शाप से तुम्हारा जन्म शूद्र वर्ण में हुआ है, किन्तु तुम्हें तो सबसे पवित्र घर में जन्म लेना चाहिए ।....तुमसे मैंने कई बार कहा था कि आदमी का धर्म नहीं बिगड़ता ।..... मैंने तय किया है कि मैं तुम्हें अपनी बीबी बनाकर रखूंगा ।"[3] तथा दूसरी तरफ वह कहता है, --"मैं ऐसा नहीं कर सकता, मेरा बाप लज्जा से मर जाएगा । फिर मेरी मां वह मां तो बूढ़ी है भैया । मैं इन सब को कैसे मरने दे सकता हूं । आप यकीन रखिए, जब यह भांडा फूटेगा कि सुन्दर ने ब्राह्मणी, सेठानी, क्षत्राणी, सुनारी आदि सबको छोड़कर एक भंगिन से प्यार किया तब.... । नहीं मैं ऐसा नहीं कर सकता ।"[4] चारवाक से कहे गये इस कथन से स्पष्ट हो जाता है कि वह फागलो के साथ विवाह नहीं करना चाहता । उससे तो वह वासना की पूर्ति ही करना चाहता है ।

---

१. यादवेन्द्र शर्मा चन्द्र : "अनावृत" (१९५८ई०), पृ०सं० ६३ ।

२. वही, पृ०सं० १२२ ।

३. वही, पृ०सं० २३७ ।

४. वही, पृ०सं० ६३ ।

मन्मथनाथ गुप्त के 'सराफों का कटरा' (१९६६ई०) उपन्यास में हरिजन नारी के ऊपर अत्याचार को चित्रित किया गया है। सदियों से सवर्ण हिन्दू लोग हरिजन वर्ग की युवतियों को अपनी काम वासना की पूर्ति का शिकार बनाते रहे हैं, इसी का चित्रण इस उपन्यास में भी मिलता है। 'सराफों का कटरा' (१९६६ई०) उपन्यास में जगन्नाथ नाम का सवर्ण हिन्दू सुहासिनी भंगिन को भगा कर ले जाता है तथा उस पर बलात्कार करता है, 'जगन्नाथ के साथ साथ एक भंगिन के भागने की रिपोर्ट आई है। पता लगा है कि दोनों एक साथ गए हैं।'[1]

लेखक का इस अत्याचार के प्रति सहानुभूतिपूर्ण दृष्टिकोण है। वह जगन्नाथ को दंड पुलिस से मारा दिलवाने का प्रयास करता है। लेखक ने जगन्नाथ का चित्रण उपन्यास में एक दुष्ट व्यक्ति के रूप में किया है।

सुहासिनी भंगिन के ऊपर जो अत्याचार किया गया है, उसके बारे में मेरा दृष्टिकोण है कि किसी स्त्री पर बलात्कार करना तो न सामाजिक दृष्टिकोण से उचित है और न नैतिक दृष्टि से। क्या हरिजनों की बहू-बेटी की समाज में कुछ इज्जत नहीं है? यदि एक चमार किसी सवर्ण वर्ग की बेटी के साथ बलात्कार करे तो वह नीच कार्य कहा जाता है, पर यदि कोई सवर्ण वर्ग का व्यक्ति किसी हरिजन युवती से बलात्कार करे तो समाज उसको कठोर दंड देने की व्यवस्था नहीं करता। इसके कारण क्या हैं? कारण यह है कि समाज में प्रभुत्व बड़े लोगों का होता है, अतः इसीलिए उनके विरुद्ध कोई कार्यवाई नहीं होती है और इसीलिये ये अत्याचार होते रहते हैं। क्या हरिजनों का खून-खून नहीं है जो कि कभी अत्याचार के विरुद्ध गर्म न हो?

(ग) अमानुषिक व्यवहार

चूंकि हरिजनों को ऊँचे जाति के लोग निम्न कोटि का समझते हैं, अतः उनके साथ पशुओं से भी अधिक घृणा का व्यवहार किया जाता है।

१/मन्मथनाथ गुप्त : 'सराफों का कटरा' (१९६६ई०), पृ०सं० ६८।

हरिजन समाज के लिए सब घिनौने कार्य भी करता है, लेकिन उसे अच्छा जीवन व्यतीत करने का अधिकार भी नहीं प्राप्त है । कहीं शासक वर्ग हरिजनों पर जुल्म ढाता है, तो कहीं राजवर्ग के व्यक्ति उनके साथ अमानुषिक व्यवहार करते हैं, तो कहीं जमींदार वर्ग और कहीं पूंजीपति वर्ग ऊपर अत्याचार करता है । हिन्दी उपन्यासकारों ने इन सभी स्थितियों का चित्रण किया है । यहां तक की उनके ऊपर अत्याचार की सीमा नहीं है, उन्हें कुएं से पानी भी नहीं भरने दिया जाता है । समाज के विभिन्न वर्गों के द्वारा हरिजनों पर अमानुषिक व्यवहार किया जाता है ।

शासक वर्ग

शासक वर्ग हमेशा से हरिजनों के ऊपर अमानुषिक व्यवहार करता आया है । शासक वर्ग के होने के नाते वे हरिजनों के ऊपर मनमाना अत्याचार करते हैं ।

लज्जाराम शर्मा 'मेहता' के 'आदर्श हिन्दू' (१९१५ई०) में भी हरिजनों के ऊपर अमानुषिक व्यवहार को दर्शाया गया है ।

'आदर्श हिन्दू' (१९१५ई०) नामक उपन्यास में हरिजनों के ऊपर सामाजिक अत्याचार का चित्रण किया गया है । लज्जाराम शर्मा ने भूमिका में ही लिख दिया है,— इसमें तीर्थयात्रा के व्याज से एक ब्राह्मण कुटुम्ब में सनातन धर्म का दिग्दर्शन, हिन्दूपन का नमूना, आजकल की त्रुटियां, राजभक्ति का स्वरूप, परमेश्वर की भक्ति का आदर्श और अपने विचारों की बानगी प्रकाशित करने का प्रयत्न किया गया है ।[१]

भारतीय समाज में हरिजनों को बहुत हेय दृष्टि से देखा जाता है । उनके साथ अच्छा व्यवहार नहीं होता । इस उपन्यास में भी भैयला चमार की निम्न परिस्थितियों का चित्रण मिलता है । बाबूलाल तहसीलदार साहब

---

१. लज्जाराम शर्मा : 'आदर्श हिन्दू' भाग १, (१९१५ई०), भूमिका से, पृ०सं०२ ।

मुरव्वत अहों से बूढ़ा भगवानदास को लड़ाने के लिए सेमला चमार को माध्यम बनाता है। बाबू लाल सेमला चमार को बहकाकर तहसीलदार साहब पर नालिश करवा देता है। तहसीलदार साहब बूढ़े भगवान दास से कहते हैं,--"मैंने उस सेमला चमार को बहकाकर मुझ पर नालिश करवा था। कुसूर उसका था कि उसने मेरे घोड़े को पानी नहीं पिलाया। अगर इस बात पर मैंने उसको गाली भी दे दी तो क्या गज़ब हो गया। है तो आखिर वह चमार जाति। चमार की हैसियत ही क्या?"[1] इस वाक्य से यह स्पष्ट हो जाता है कि उस युग में चमारों की सामाजिक स्थिति कितनी दयनीय थी। जब तहसीलदार साहब बूढ़े भगवान दास के सामने बाबू लाल को सब बात कहने के लिए बुलाता है तो वह कहता है,--"बेशक इन साहबों का कहना सच है। मैंने बाबा को मसलहत से छिपकर (बाबा के पैर पकड़ कर उसके चरणों में गिर देते हुए) आपको इनसे नाराज कराने के लिए ही ऐसा किया था। अब मैं आप दोनों से क्षमा मांगता हूं।"[2] लज्जाराम शर्मा जी का 'आदर्श हिन्दू' (१९१४ई०) उपन्यास में सेमला चमार पात्र के प्रति दृष्टिकोण अत्याचार पूर्ण ही है। सेमला चमार के ऊपर उन्होंने पर्याप्त सामाजिक अत्याचार को चित्रित किया है। लज्जाराम शर्मा की सहानुभूति हरिजन पात्र के प्रति नहीं है।

'आदर्श हिन्दू' (१९१४ई०) उपन्यास में हरिजनों तथा सवर्ण हिन्दुओं के बीच भेद-भाव को दिखाया गया है। सवर्ण हिन्दू हमेशा से अपने को ऊंचा मानते आये हैं। वे हरिजनों को बहुत ही निम्नस्तर का समझते हैं। तहसीलदार साहब कहते हैं,--"चमार की हैसियत ही क्या?"[3] इस वाक्य से स्पष्ट हो जाता है कि सवर्ण लोग किस तरह नीच वर्ण के लोगों के साथ धर्म की विभिन्नता के आधार पर कैसा निम्न व्यवहार करते हैं। सनातनधर्मी लज्जाराम शर्मा पुरातन युगों की भांति ही शूद्र वर्ण के भंगी अथवा चमारों को चाण्डाल

----

१. लज्जाराम शर्मा : 'आदर्श हिन्दू' भाग१(१९१७ई०),पृ०सं०१४६।

२. वही, पृ०सं० १५२।

३. वही,पृ०सं० १४६।

अनुयायी हैं । पंडित प्रियानाथ कहते हैं,--'यदि उसकी मदद लेकर आपने उनके हाथ का छुआ पानी न पिया तो क्या हानि हुई ? यदि छुआछूत ही विनाश का हेतु होता तो संक्रामक रोगों में इसकी व्यवस्था क्यों की जाती ? एक ओर डाक्टर लोग छुआछूत बढ़ा रहे हैं और दूसरी ओर धर्म के तत्वों को न समझकर, वेदान्त के सिद्धान्तों पर पानी फेरकर [illegible]-प्रथा फैलाने का प्रयत्न ।'[1] पुरातन वर्णाश्रम धर्म की मान्यताओं में उन्हें तनिक भी परिवर्तन मान्य नहीं । पंडित प्रियानाथ कहते हैं,-'ब्राह्मणों को ब्राह्मण ही रहने दीजिए । उनसे जूता सिलवाने का काम न लीजिए । यदि उनमें कोई गिर गया हो तो उसपर लातें न मारिए ।'[2] मेहता जी के विचार से ब्राह्मण सवर्णों में ज्येष्ठ है और हरिजन दिन-प्रतिदिन और भी घृणित तथा पतित होते जा रहे हैं । पंडित प्रियानाथ कहते हैं,--'अब भी ब्राह्मणों में भगवान भुवन भास्कर का-सा ब्राह्मणत्व प्रकाशमान् है ।'[3] ये विचार मेहता जी तक ही सीमित नहीं हैं, गोस्वामी जी भी इनके प्रति आस्थावान हैं । मेहता जी के उपन्यासों में ऐसे अनेक प्रसंग मिलते हैं जहां हरिजनों के सम्बन्ध में उनकी रूढ़िगत मान्यता को देखा जा सकता है । मेहता जी ने अपने उपन्यासों के माध्यम से अपने युग के सुधारों की तेज होती हुई बाढ़ों को रोकने का प्रयत्न किया था । ये अपने युगीन समाज के रूढ़िवादी हिन्दू वर्ग के सच्चे प्रतिनिधि हैं ।

मेहता जी यदा-कदा हरिजनों की गिरी हुई दशा को सुधारने की चर्चा भी करते हैं, पर उनके कार्य के मूल में भी उच्च वर्णों की अधिकार भावना ही प्रतीत होती है । इस सम्बन्ध में जो क्रान्तिकारी परिवर्तन परवर्ती उपन्यासों और उनके लेखकों के दृष्टिकोण में देखा जाता है, उसकी यहां छाया तक नहीं है । युग की परिस्थितियों को देखते हुए इसे किसी सीमा तक स्वाभाविक कहा जा सकता है, पर जब हम इस तथ्य को सामने रखते हैं कि उसी युग में एक ओर आर्य समाज भी हिन्दू धर्म के विषय में एक नया दृष्टिकोण रख रहा था, इन दोनों

---

१. लज्जाराम शर्मा : 'आदर्श हिन्दू' भाग २(१९१४ई०), पृष्ठांक २५२ ।

२. वही, पृष्ठांक २५३ ।

३. वही, भाग ३, पृष्ठांक १३६ ।

की विचारधाराएं द्विधों से मुक्त तथा संकीर्ण ही कही जा सकती है । आर्य समाज के संस्थापक दयानन्द के अनुसार किसी भी व्यक्ति को जन्म से ही हरिजन नहीं समझा जाना चाहिए, वरन् व्यक्ति के कर्मों के आधार पर ही उसकी जाति का निर्धारण करना चाहिए । इस प्रकार दयानन्द जन्मना-वर्ण नहीं, बल्कि कर्मणा-वर्ण मानते हैं । यदि जन्म से हरिजन व्यक्ति भी आगे बढ़कर विद्वान हो जाता है तो आर्य समाज के अनुसार उसे ब्राह्मण वर्ण का ही समझा जायेगा । आर्य समाज ने सबसे बड़ा क्रान्तिकारी विचार यह प्रस्तुत किया कि जाति-व्यवस्था का आधार जन्म न होकर गुण,कर्म तथा स्वभाव होना चाहिए । ईश्वरीय विधान के स्थान पर लौकिक तथा जनतन्त्रीय आधार उपस्थित किया गया कि प्रत्येक व्यक्ति अपनी योग्यता के अनुसार उच्च जाति प्राप्त कर सकता है । ब्रह्म समाज तथा प्रार्थना समाज का जाति विरोध एक सुधारवादी ढंग था, उससे निम्न जातियां आत्मविश्वास न पा सकीं । लेकिन आर्य समाज ने स्वयं अपने वैदिक धर्म से जाति-व्यवस्था का आधार गुण,कर्म तथा स्वभाव उपस्थित करके जाति-व्यवस्था को ईश्वरीय देन समझने वालों की मानसिक दासता दूर की । वस्तुत: यह धार्मिक तथा सामाजिक समस्याओं का ईश्वरीय नहीं वरन् सांसारिक समाधान था व आर्य समाज ने अछूतों की शिक्षा पर विशेष ध्यान दिया था, क्योंकि उसका विश्वास था कि अछूतवर्ग बिना शिक्षित हुए उच्च वर्ण के समकक्ष नहीं आ सकता ।[1]

जिस प्रकार मेहता जी पर सनातन धर्म का प्रभाव है, उसी प्रकार गोस्वामी जी पर भी सनातन धर्म का प्रभाव स्पष्ट परिलक्षित होता है । ऊंच-नीच के प्रश्न पर उनकी कट्टरता भी अद्वितीय है । उनके आदर्श पात्र सदैव ही उनकी इस मान्यता के अनुरूप आचरण करते हैं । 'अंगूठी का नगीना' (१९१८ई०) की लक्ष्मी नौकरानी बसन्तिया को गले लगा लेती है, इस पर उपन्यास की दूसरी नारी पात्र मालती, लक्ष्मी से कहती है;--' वह यहां टहलुई, कहां हम लोग अमीर आदमी ।'[2]

१.डा० चण्डीप्रसाद जोशी : 'हिन्दी उपन्यास : समाजशास्त्रीय विवेचन',(१९६२ई०), पृ०सं० ६ ।

२.किशोरीलाल गोस्वामी : 'अंगूठी का नगीना', (१९१८ई०), पृ०सं०१३७ ।

हरिजनों के प्रति भी लेखक की घृणा को उनके अनेक उपन्यासों में देखा जा सकता है। जब किसी दुष्ट पात्र की मृत्यु करा देने मात्र से ही लेखक को सन्तोष नहीं मिलता, तो वे उसकी लाश को मेहतरों से उठवा कर उसका परलोक भी बिगाड़ना चाहते हैं। इसी प्रकार की घटना से सम्बन्धित एक वार्तालाप का अंश इस प्रकार है,–

'हाय हाय बेचारे को मेहतरों ने फेंका।
मैंने कहा --'वह इसी योग्य था।'[1]

अतः हम कह सकते हैं कि किशोरीलाल गोस्वामी रूढ़िवादी हिन्दू समाज के सच्चे अनुयायी हैं। किशोरीलाल गोस्वामी जी हरिजनों को हर दर्जे का घृणित पात्र समझते हैं, जिनसे उच्च कुल के किसी व्यक्ति की मृत-लाश भी नहीं छुआई जा सकती। कहने की आवश्यकता नहीं कि जाति-व्यवस्था संबंधी यह दृष्टिकोण कितना दकियानूस और जर्जर हो गया है। लेकिन तत्कालीन लेखकों में उसके प्रति विद्रोह की कोई भावना नहीं दृष्टिगत होती। हरिजनों की दशा में सुधार के लिए कुछ प्रयत्न अवश्य किए गए हैं, जो उनकी दया-दृष्टि का परिचायक ही कहा जा सकता है। इसके पीछे कोई उदार मानवीय भावना तथा समानता की चेतना नहीं है। वस्तुतः ये लेखक मानसिक रूप से हरिजनों को बराबरी का दर्जा देने को तैयार भी नहीं थे, क्योंकि उनकी मानसिक बनावट तथा उनके संस्कार प्रगतिशील सामाजिक-चेतना से सम्बन्ध नहीं रखते थे। स्पष्ट है कि जाति तथा वर्ण-व्यवस्था के सम्बन्ध में जो[2] क्रान्तिकारी विचार परवर्ती युगों में अभिव्यक्त हुआ, वह अभी नहीं बन पाया था।

फिर भी प्रारम्भिककालीन उपन्यासकारों में कुछ ऐसे उपन्यासकार भी हैं, जो युगीन सुधार आन्दोलनों की वैचारिक क्रान्तियों से प्रभावित हैं और उनके अनुसार समाज में बहुत परिवर्तन की आकांक्षा रखते हैं। मन्नन द्विवेदी, जिनसे

----

१. किशोरीलाल गोस्वामी : 'माधवी माधव वा मदन मोहिनी' (१९०९ई०), भाग२ पृ०सं०४८।
२. वही, प्रथम संस्करण, पृ०सं० ४८(१९०९ई०)।

भाव में प्रेमचन्द को हिन्दी में लिखने की प्रेरणा मिली, एक ऐसे ही उपन्यासकार हैं, जिन्होंने समाज-व्यवस्था की बुराइयों की ओर इंगित किया। इन्होंने अपने उपन्यासों में जहां अन्य सामाजिक पहलुओं को उद्घाटित किया, वहां दो महत्वपूर्ण सामाजिक प्रश्न भी उनके विश्लेषण और विवेचन के विषय बने०--हरिजन समस्या तथा ब्राह्मण समस्या। ब्राह्मणों के उच्चवर्गीय अहंकार को वे व्यंग्य की नजर से देखते हैं, साथ ही हरिजन वर्ग के सुधार के लिए भी कार्यक्रम निर्धारित करते हैं। उनके उपन्यास `रामलाल` (१९१७) का आत्माराम हरिजनों की दशा सुधारने के लिए `भारतीय पतितोद्धारक समिति` की स्थापना करना चाहता है। हरिजनों को इकट्ठा करके, उनको पढ़ा-लिखाकर, उन्हें कोई कारीगरी सिखाना तथा चमारों के लिए स्कूल खोलना उसका लक्ष्य है[१]। मन्नन द्विवेदी अपने `कल्याणी` (१९२०) में समाज में हरिजनों की स्थिति के बारे में कहते हैं--`कोई शूद्र `पैसाोनेटर` हो को मार कर देख ले। शूद्र दिन भर फावड़ा चलाता है, एक आना पाता है, ब्राह्मण सेकेण्ड भर के `कल्यान` कहने में उससे कहीं अधिक बना लेता है, तिसपर भी जो ब्राह्मणों का महत्व न माने उसको `आरियासमाजी` छोड़कर और क्या कह कहिएगा[२]।` तात्पर्य यह है कि मन्नन द्विवेदी हरिजनों का ब्राह्मण वर्ग के साथ उत्थान चाहते हैं। मन्नन द्विवेदी का अपना विचार यह है कि जाति तथा वर्ण का निर्णय जन्म के आधार पर न होकर गुण, कर्म तथा स्वभाव के आधार पर हो। कहने की आवश्यकता नहीं कि यह बात स्वीकृत हो जाने पर अनेक सामाजिक बुराइयाँ स्वतः समाप्त हो जाती हैं।

<u>राज वर्ग</u>

जिस प्रकार जमींदार वर्ग किसानों का शोषण करता था, उसी प्रकार राजा लोग हरिजनों के साथ अमानुषिक व्यवहार करते थे। एक तरफ से

---

१. मन्नन द्विवेदी : `रामलाल` (१९१७, पृ०सं० १४६-१६२।

२. मन्नन द्विवेदी : `कल्याणी` (१९२०, पृ०सं० १५०-१५१।

ब्रिटिश सरकार हरिजनों का शोषण करती थी तथा दूसरी तरफ राजा लोग हरिजनों का शोषण करते थे । हरिजनों के लिए न व्यवस्थित शासकीय प्रणाली थी, न कानूनों की समानता थी । रियासतों के हरिजन वर्ग ने आधुनिक युग का अनुभव तक नहीं किया । राजाओं का हरिजनों के प्रति सामाजिक दृष्टिकोण मध्ययुगीन राजाओं की तरह रहा ।

पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' के 'सरकार तुम्हारी आंखों में' (१९३७ई उपन्यास में हरिजन के सामाजिक शोषण को चित्रित किया गया है । 'सरकार तुम्हारी आंखों में' (१९३७ई उपन्यास में राजा शत्रुघ्न सिंह के द्वारा जग्गू तेली के सामाजिक शोषण को चित्रित किया गया है । जब जग्गू तेली रोज की तरह तेल बेचने के लिए निकलता है तो महाराज शत्रुघ्न सिंह से शोर मचाने वाले को पकड़ लाने को कहते हैं,--' यह तेली :-- उठ चोर मेरे महल के नीचे शोर मचा रहा है । चोरी की ईंट बाजारे में कहो । पकड़ लाओ बदमाश को ।'[1] महाराज के सामने आते ही और उनका रूद्र रूप देखते ही तेली के मुंह से तेलनिकल गया-- गरीब के होश के फाख्ते से उड़ गये । तेली राजा के इस तानाशाही के विरूद्ध कुछ भी नहीं कह पाता है,क्योंकि वह तो हरिजन होने के कारण अपना आक्रोश भी व्यक्त नहीं कर सकता है । जग्गू तेली राजा के इस व्यवहार पर उनसे कहता है;-- 'दोहाई अन्नदाता की । माफ कीजिये सरकार । तेली हूं तो क्या हुआ, उधार राजा की तरक्क सबके लिये है ।'[2] 'उग्र' जी का दृष्टिकोण 'सरकार तुम्हारी आंखों में' (१९३७ई हरिजनों के प्रति अनुचित रहा है । जग्गू तेली के ऊपर सामाजिक अत्याचार के प्रति 'उग्र' जी ने उपन्यास में कोई विरोध व्यक्त नहीं किया है ।

जग्गू तेली के ऊपर राजा शत्रुघ्न सिंह द्वारा सामाजिक शोषण कियाक जाना किसी भी प्रकार से उचित नहीं कहा जा सकता है । जग्गू तेली का तो कोई अपराध राजा के प्रति नहीं कहा जा सकता है । वह तो रोज की तरह

१.पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' : 'सरकार तुम्हारी आंखों में' (१९३७ई,पृ०सं०१९ ।

२.वही,पृ०सं०२० ।

तेल बेचने के लिए निकला था । जबर्दस्ती राजा शत्रुघ्न सिंह द्वारा उनको पकड़ मंगवाना सामाजिक दृष्टि से उचित नहीं कहा जा सकता है । जग्गू तेली का चरित्र तो शोषित व्यक्ति का चरित्र है, जिसपर राजा शत्रुघ्न सिंह शोषक की भांति अत्याचार करते हैं । इसका एक कारण यह हो सकता है कि चूंकि वह हरिजन है अतः उसके ऊपर अत्याचार होना ही चाहिए ।शायद समाज की इसी भावना के कारण राजा शत्रुघ्न सिंह ने जग्गू तेली के ऊपर अत्याचार किया हो । फिर भी हम कह सकते हैं कि जग्गू तेली के ऊपर सामाजिक अत्याचार किसी भी दृष्टिकोण से उचित नहीं कहा जा सकता है ।

वृन्दावनलाल वर्मा का 'झांसी की रानी'(१९४६ई०)उपन्यास एक ऐतिहासिक उपन्यास है । इस उपन्यास में भी हरिजनों के ऊपर अत्याचार दिखाया गया है । हरिजनों का सामाजिक शोषण झांसी के राजा गंगाधर राव करते हैं । हरिजनों के साथ कैसा निम्न व्यवहार लोग करते हैं, इसका चित्रण भी उपन्यास में मिलता है । झांसी राज्य में हरिजन लोग भी जनेऊ धारण करना चाहते हैं,"इन सब के संघर्ष में अनेक जातियां और उपजातियां , जिनको शूद्र समझा जाता था, उन्नति की ओर अग्रसर हो रही थीं । व्यक्तिगत चरित्र का सुधार,घरेलू जीवन को अधिक शांत और सुखी बनाना तथा जातियों की श्रेणी में ऊंचा स्थान पाना, यह उस प्रगति की सहज आकांक्षा थी । ब्राह्मण,क्षत्रिय और वैश्य जनेऊ पहिनते हैं; यह उनकी ऊंचाई की निशानी है, जो न पहिनता हो वह नीचा । इसलिए उन जातियों के कुछ लोगों ने जिनके हाथ छुआ पानी और पूड़ी मिष्टान्न आम तौर पर ऊंची जाति के हिन्दू ग्रहण कर सकते थे, जनेऊ पहिनने आरम्भ कर दिये । उनके इस काम में कुछ बुन्देलखण्डी और महाराष्ट्र ब्राह्मणों का समर्थन था ।"[१]

पर झांसी नगर के ब्राह्मण जो काफी संख्या में हैं,हरिजनों की इस प्रगति के विरुद्ध हो जाते हैं,-' आन्दोलन उठा । कुछ जनेऊ के अधिकारी नहीं हैं, अधिकांश पंडित मत के थे । आन्दोलन के पक्ष में एक विद्वान तान्त्रिक

१.वृन्दावनलाल वर्मा : 'झांसी की रानी लक्ष्मीबाई'(१९४६ई०),पृ०सं०४२ ।

नारायण शास्त्री नाम का था । वह श्रृंगार-शास्त्र का भी पारंगत समझा जाता था । उसने शिवाजी के प्रसिद्ध अमात्य बालाजी आवजी के पक्ष[१] में दी हुई महा-पण्डित विश्वेश्वरभट्ट की सब व्यवस्था को जगह-जगह उद्धृत किया ।' जब ब्राह्मण लोग नारायण शास्त्री का मत देते हैं तो हरिजन लोग भी साक्ष्य करके उनका यथार्थ स्थिति सामने रख देते हैं,[२] 'नारायणशास्त्री जिसकी तुम बार-बार दुहाई देते हो, ब्राह्मण ही नहीं है ।' इसका कारण यह है कि वह छोटा भंगिन को रखे हुए है । इसी जनेऊ धारण करने के प्रश्न पर हरिजन लोग राजा का कोप-भाजन बनना पड़ता है ,' राजा ने अपराधियों से पूछा, 'क्या ब्राह्मण बनना चाहते हो ?'

अपराधियों में एक अधिक साहस वाला था । उसने उत्तर दिया, 'नहीं तो सरकार ।'

'फिर यह अनुचित काम क्यों किया ?'

'अनुचित तो नहीं सरकार ।'

'क्यों रे अनुचित नहीं है ?'

'सरकार । ब्राह्मणों के अलावा और अनेक जातियां भी तो जनेऊ पहिनती है ।'

'अबे बदमाश, उन जातियों का बराबरी करता है ?'

'वह चुप रहा ।'

गंगाधर राव का क्रोध चढ़ लेने पर उतरता मुश्किल से था ।

बोले, 'जनेऊ तोड़कर फेंक दे और फिर कभी आगे न पहिनना ।'

उसने हाथ जोड़े और सिर नीचा कर लिया ।

राजा ने कड़क कर पूछा,--'क्या कहता है ? अपने हाथ से तोड़ता है या तुड़वाऊं' ?

उसने उत्तर दिया,--'अपने हाथों तो हम लोग अपने जनेऊ नहीं तोड़ेंगे चाहे प्राण भले ही निकल जायें । आप राजा हैं चाहे जो करें ।' गंगाधर राव की आंखों के लाल डोरे रक्त हो गये । चोबदार को हुक्म दिया,--'एक पतला तार लाओ । तांबा, लोहा किसी का भी । जल्दी लाओ ।'

वह दौड़कर ले आया । आगी मंगवाई गई । तार को जनेऊ का आकार बनाकर गरम किया गया । आज्ञा दी, 'यह गरम जनेऊ इसको पहिनाओ[३] ।'

---

१. वृन्दावनलाल वर्मा : 'झांसी की रानी लक्ष्मीबाई' (१९४६),पृष्ठ०४२।
२. वही, पृष्ठ० ४३।
३. वही, पृष्ठ०४८ ।

वर्मा जी हरिजनों के ऊपर किये जाने वाले अत्याचार के समर्थक नहीं है, बल्कि वे तो उनका विरोध करते हैं। राजा के अत्याचार का वह हरिजनों के द्वारा विरोध व्यक्त करवा देते हैं, "वह गरम जनेऊ उसके कन्धे को झुलसाया ही गया था कि युवक तात्या ने विनय की, "महाराज, धर्म की रक्षा करिये। यह ठीक नहीं है।"

गंगाधर राव ने वह गरम जनेऊ तुरन्त अलग करा दिया। युवक से बोले--"श्रीमन्त पेशवा भी तो यही दण्ड देते।"[1]

लेखक मानो अपना निष्कर्ष धर्म के बारे में दे[2] रहा हो, "धर्म अपने विश्वास की बात है। इसमें राज्य को तटस्थ रहना चाहिए।"

हरिजनों के ऊपर जनेऊ के प्रश्न पर अत्याचार करना उचित नहीं लगता है। क्या कारण है कि ब्राह्मण के जब जनेऊ पहनने पर राजा गंगाधर राव को बुरा नहीं लगता? पर जब हरिजनों को जनेऊ धारण करते देखते हैं तो दण्ड देने की आज्ञा देते हैं। धर्म तो अपनी जगह है तथा राज्य का शासन अपनी जगह है। राजा को यह अख्तियार ही नहीं है कि वह इन सब अनुचित कार्यों में हाथ डाले। प्रत्येक मनुष्य का अपना अलग अस्तित्व होता है। राज्य को तो किसी मनुष्य को दण्ड तब देना चाहिए, जब वह राष्ट्र विरोधी कार्य करे। जनेऊ पहनना तो कोई राष्ट्रीय अपराध नहीं कहा जा सकता है। रह गई समाज की बात, हमारा समाज तो सदियों से कलंकित रहा है। समाज की कुछ बुराइयां हैं, जिन्हें दूर करना चाहिए। इन्हीं थोड़ी-सी बुराई के कारण समाज की सब अच्छाइयां भी बुराई के नीचे दब जाती हैं। समाज में हरिजनों को पतित व नीच समझा जाता है। यहां भी राजा तथा समाज इसी भावना से प्रभावित होने के कारण हरिजनों को जनेऊ पहनने पर अत्याचार करना चाहते हैं। सवर्ण हिन्दू तो मौके की तलाश में रहते हैं कि कब मौका मिले, हरिजनों को उत्पीड़ित किया जाये। लेखक को चूंकि

----

१. वृन्दावनलाल वर्मा : "झांसी की रानी लक्ष्मीबाई" (१९४६), पृष्ठांक ५६।

२. वही, पृष्ठांक ५६।

यह अत्याचार पसंद नहीं है, अत: वह राजा के भी विचार को बदल देता है, अनेक वाले अपराधियों को बनावटी स्वर में डांटते हुए बोले,--'इस युवक ने तुमको बचा लिया।'[1] तात्या नामक युवक के कहने से राजा गंगाधर राव अपना निर्णय बदल लेते हैं, जो समाज के स्वस्थ विकास को ही प्रोत्साहन देता है।

वृन्दावनलाल वर्मा के 'सोना' (१९५२ई) उपन्यास में शालिवाहन कुम्हार के ऊपर सामाजिक अत्याचारों का चित्रण मिलता है। हरिजन लोग भले ही किसी का नुकसान न करें तो भी किस प्रकार राज परिवार के लोग हरिजनों का शोषण करते हैं, व उनको परेशान करते हैं, इसी का चित्रण हमें 'सोना' (१९५२ई) उपन्यास में प्राप्त होता है। अनूप सिंह, जो देवगढ़ के बड़ राजा धुरन्धर सिंह का साढ़ू है, शालिवाहन कुम्हार पर जबर्दस्ती सामाजिक अत्याचार करता है। ढुंगरिया में कुम्हार शालिवाहन रहता है। वह अपने एकमात्र गधे को बहुत पीटता है। मिट्टी के बर्तन बनाकर उस गधे पर लाद-लादकर हाट बाजार ले जाता है तथा पैसे कमाता है, परन्तु बिचारे को इतना खाने के लिए नहीं देता जितना काम लेता है। एक दिन अनूप, जो कि राजा का संबंधी है, गधे को बेभाव पीटते देख लेता है। कुम्हार ने उस गधे का नाम बबुआ रखा है। गधा तो छोटा है, पर कुम्हार उस पर बर्तन बहुत लाद कर ले जाता है। उल्टी कहावत की तरह 'ऊंचा दुकान का फीका पकवान'। शायद इसीलिए कुम्हार ने उसका नाम बबुआ रख छोड़ा था। अनूप सिंह जाकर पंचों से कुम्हार की शिकायत करता है;--'संध्या समय अनूप मुखिया के घर गया। वहां गांव के कुछ पंच भी बैठे हुए थे। अनूप ने कुम्हार की शिकायत की।

'गधे को भी इतना नहीं मारा जाता। कुम्हार बिल्कुल कसाई है।'

'गधे में अकल आती भी तो पिटने से ही है।'

'और अगर पिटते-पिटते मर जाय गरीब बबुआ तो?'

'मर जायगा तो कुम्हार का ही नुकसान होगा, हमारा तुम्हारा क्या ले जायगा कुंवर साहब?'

---

१. वृन्दावनलाल वर्मा : 'झांसी की रानी लक्ष्मीबाई' (१९४६), पृ.सं०५९।

`बिना काम का पशु है ।`

`काम तो उसको इतना लम्बा है कि ठिकाना नहीं । जब रेंकता है तब हाथ-हाथ भर निकाल देता है ।`

` पर इस कुम्हार का इलाज तो करना ही पड़ेगा ।`

`कर डालो । तुम्हारे लिये बायें हाथ का खेल है । ले आओ आज्ञा किसी दिन महाराज की ।`

`इस जरा से मामले को देखता हूँ ले आऊं`[1]

राजा के लोगों का कितना आतंक हरिजनों तथा अन्य लोगों पर कितना पड़ा है, उसका भी चित्रण `सोना` (१९५२ई) में मिलता है । हरिजन वर्ग तो सवर्ण हिन्दुओं के प्रति कोई दुर्भावना नहीं रखता, पर सवर्ण हिन्दु वर्ग को हरिजनों को सताने में आनन्द मिलता है । अनुप गधे के पास जाकर उसको कुछ कर देता है, जिससे कुम्हार के सब बर्तन टूट जाते हैं, `अनुप गधे के कान के पास झुका । एक बार उसने कुम्हार की ओर देखा और एक क्षण गधे के कान के पास लगा था कि कुम्हार ने जो कुछ देखा उससे सब हंसी चली गई । गधे ने जोर के साथ दुलत्ती फेंकी । अनुप कुछ दूर खड़ा था । दुलत्ती फेंकने के कारण गधे पर लदी बालों एक ओर खिसक गई और सारे बर्तन अनुप से भी दूर जा पड़े और चकनाचूर हो गये ।

वह गधा घर की ओर भागा । कुम्हार के होश गुम । अनुप अपनी पुंगी से रूपों का धुआं उड़ा रहा था ।

`हाय, हाय, यह क्या हो गया? ऐसा क्या कर दिया मेरे अजूबे को ? सब चौपट हो गया । मेरे सारे बर्तन टूट गये ।`

`आगे से कभी मत ठोंकना-पीटना उसको । मैंने उससे पूछा था आज तुमको कितना पीटा गया ? अजूबे को याद आ गई । क्रोध से भर गया । दुलत्ती फाड़ी और चल दिया । बस ।`

`हायरे मैं मर गया ।`

`गधे को जब पीटा था, तब अपने भविष्य को सोच लेना चाहिए था ।`

`मैं फरियाद करूंगा पंचायत में । तुमने न जाने उसको क्या कर दिया है ।`

१.वृन्दावनलाल वर्मा : `सोना` (१९५२ई,पृष्ठांक ६४।

'अच्छा भगवान के यहां फरियाद करेगा । जाओ ।'
कुम्हार गधे को पकड़ने और पंचायत में फरियाद करने चला गया ।'[1]

लेखक शालिवाहन कुम्हार पर हुए सामाजिक अत्याचार से सहमत नहीं है । वर्मा जी सामाजिक अत्याचार के विरोध में शालिवाहन कुम्हार का विद्रोहात्मक व्यक्तित्व हमारे सामने रखा है । शालिवाहन कुम्हार अपने ऊपर बिना अपराध के, अत्याचार को सहन नहीं कर पाता है । उसमें अनूप सिंह के विरुद्ध प्रतिहिंसा की भावना जगती है । इसी कारण वह पंचायत में फरियाद करता है । शालिवाहन का पंचायत में अत्याचार के विरुद्ध फरियाद करना इस बात को सिद्ध कर देता है कि वर्मा जी का 'सोना' (१९५२ई) में हरिजनों के प्रति दृष्टिकोण पुनरुत्थानवादी है । वे हरिजनों का उत्कर्ष दिखाना चाहते हैं, अपकर्ष नहीं । यदि वर्मा जी की सहानुभूति हरिजन मात्र के साथ नहीं होती, तो शालिवाहन का पुरातन परम्परा के अनुसार ज्यों का त्यों चित्रण करते, जिसमें अत्याचार के प्रति विरोध प्रकट करने की भावना ही नहीं होती ।

'उदयाचल' (१९५८ई) में चमारों के सामाजिक उत्पीड़न का भी चित्रण मिलता है । मंगतु के बेगार न करने पर राजा उसकी औरत को पीटने के साथ झोपड़ी के जलाने का हुक्म देता है,-- 'मैं हुक्म देता हूं कि इस चमार के बच्चों की झोपड़ी में इसी वक्त आग लगा दी जाय और उसकी औरतों को नंगा करके पेड़ से लटका दिया जाय ।'[2] राजा उसको कड़ा दण्ड देने का आदेश करता है, --'उस चमार के बच्चे को छोड़ना नहीं । ऐसा सबक सिखाना कि दूसरों को भी नसीहत रहे ।'[3]

लेखक मंगतु चमार के ऊपर होने वाले अत्याचार से असन्तुष्ट है । वह अत्याचार का विरोध करता है । बहादुर मिस्त्री कहता है,--'लेकिन रस्सी जल गई चचा, मगर ऐंठ अभी बाकी है । ये बुड्ढे अभी तक अपने वही पुराने हथियार

---
१. वृन्दावनलाल वर्मा : 'सोना' (१९५२ई, पृ०सं०६७।
२. चतुरसेन शास्त्री : 'उदयाचल' (१९५८ई, पृ०सं० ३४।
३. वही, पृ०सं० ३५ ।

आजमाना चाहते हैं । जनता का राज है, पर उन्हें तो चमारों से बेगार लेना ही होगा । उन्हें या तो सोचना चाहिए कि अब ये चमार नहीं हरिजन हैं ।"[1] लेखक मंगलू के अटल निश्चय की घोषणा करता हुआ कहता है:-" हमारे करोड़ों भाइयों पर ये लोग सदियों से जुल्म करते आए हैं । हम लोग जो अब तक अछूत थे और आज हरिजन बन गए हैं, सदियों से पीड़ित और पददलित हैं । अब तो हमें उभरना होगा- अपने ही बलबूते पर ।"[2]

राजा का चमारों का उत्पीड़न तो उचित नहीं लगता है । कभी आदमी का इन्सान जब पर टूट जाता है । ये सवर्ण तब तक हरिजनों का खून पीने से बाज नहीं आयेंगे । जब तक कि उनका खात्मा न कर दिया जाये ।ये सवर्ण लोग (राजा जैसे लोग) बुजदिल हैं, जो अपनी कमजोरी छिपाकर दूसरों पर दबाव डालते हैं, लेकिन उनकी हालत उस तपेदिक के मरीज की जैसी है, जो खून थूक रहा हो और दम तोड़ रहा हो । अब उनका अंत समय आ पहुंचा ही हो ।मंगलू की झोपड़ी जलाना तथा औरत को पीटने का हुक्म देकर तो राजा ने सामाजिक दृष्टि से तो अपराध किया है । एक सताये हुए प्राणी को राजा ने और सताया है ।

गर्म लहरें जमीन के नीचे जब तक उबलती हैं, तब तक उनका किसी को पता नहीं होता है । लेकिन जब वे ज्वार-भाटे के रूप में तूफ़ान बनकर सामने ऊपर आती हैं, तब दुनिया उन्हें देख पाती है । यही स्थिति हरिजनों की भी है । हरिजनों के अन्दर गर्म लहरें सदियों से उठती रही हैं, पर वे संगठित न होने के कारण ऊपर उठ न सके । पर अब तो सरकार के सहयोग से हरिजन ऊपर की ओर उठ रहे हैं । सब क्षेत्रों में आगे बढ़ रहे हैं । उनकी बाढ़ या प्रगति को कोई शक्ति रोक नहीं सकती है । लेखक अन्त में राजा के भी विचारों में परिवर्तन कर हरिजनों के क्षेत्र में क्रांति उपस्थित कर देता है:- "बुजुर्गों की तो सभी बातें बदल रही हैं । हमारे बुजुर्गों की जमींदारियां छिन गईं । अब हम लोगों के मालिक

---

१. चतुरसेन शास्त्री : 'उदयास्त' (१९५८ई), पृष्ठ० ४३।

२. वही, पृष्ठ० ४४ ।

कहाँ रहे । अब तो समानता का युग है । सबको बराबर बनकर रहना पड़ेगा ।'[1]
लेखक मन्नू का अंत में विजय दिखा कर यह सिद्ध कर देता है कि उनके ऊपर होने वाला अत्याचार गैर कानूनी है, मेरा मत यही रहा है कि हरिजनों को आज के समाज में उचित न्याय मिले, समानता का हक हो ।

जमींदार वर्ग

जमींदार वर्ग का हरिजनों के ऊपर अमानुषिक अत्याचार का व्यवहार करते हुए चित्रित किए गए हैं । जमींदार वर्ग किस प्रकार हरिजनों का शोषण करता था, इसका परिचय हमें विश्वम्भरनाथ शर्मा 'कौशिक' के उपन्यास 'भिखारिणी' (१९२९) में मिल जाता है ।

'कौशिक' जी के 'भिखारिणी' (१९२९) उपन्यास में भी पासियों की निम्न सामाजिक स्थितियों का चित्रण मिलता है । उच्च वर्ग के लोग हरिजनों के साथ भी नौकरों से भी नीचा व्यवहार करते हैं, इसका चित्रण विश्वम्भरनाथ शर्मा 'कौशिक' के 'भिखारिणी' (१९२९) उपन्यास से मालूम होता है ।
'भिखारिणी' (१९२९) उपन्यास में रामनाथ बैजू सहित अनेक पासियों के सहित जंगल में शिकार खेलने के लिए जाते हैं । पर दुर्भाग्यवश शिकार खेलते वक्त उनको चोट लग जाती है । जब ठाकुर अर्जुन सिंह पूछते हैं तो एक पासी कहता है;--'मालिक हम रह और बैठुआ रहे ।'[2] जब ठाकुर अर्जुन सिंह, रामनाथ के घायल होने की सुनकर कोड़ा लेकर बढ़ते हैं तो रामनाथ कहते हैं;--'ठाकुर साहब ये बेचारे निरपराध हैं, इनको कुछ मत कहिये, नहीं तो मुझे दुःख होगा ।'[3] रामनाथ के कहने पर ठाकुर अर्जुन सिंह पासियों से कहते हैं;--'अच्छा जाओ[4] इनका छोड़े देता हैं, आगे कबहुं ऐसी गफलत करिहौ तो खाल उड़ाय दीन जाई ।' अर्जुन सिंह

---

१. चतुरसेन शास्त्री : 'उदयास्त' (१९५८ई, पृष्ठांक ४८।
२. विश्वम्भरनाथ 'कौशिक' : 'भिखारिणी', (१९२९ई, पृष्ठांक १३७ ।
३. वही, पृष्ठांक १३८ ।
४. वही, पृष्ठांक १३८ ।

कट्टर ब्राह्मण है तथा छुआछूत की भावना में विश्वास रखने वाले हैं,इसलिए वे पासियों को गलती न करने पर भी मारने दौड़ते हैं । 'कौशिक' जी की 'भिखारिणी' (१९२९) उपन्यास में हरिजनों के प्रति दृष्टिकोण अत्याचार वादी रहा है, सुधारवादी नहीं । लेखक ने कहीं पर भी ठाकुर अर्जुन सिंह के अत्याचार के विरुद्ध आवाज नहीं उठाई है । पासियों की ओर कोड़ा लेकर मारने दौड़ना तो 'कौशिक' जी के हरिजनों के प्रति संकुचित भावना को प्रदर्शित करता है। कहीं भी लेखक हरिजनों के उत्थान की भावना को प्रकट नहीं करता है ।

ठाकुर अर्जुन सिंह का पासियों को निरपराध होने पर भी कोड़ा लेकर मारने दौड़ना सामाजिक दृष्टि से अनुकूल नहीं कहा जा सकता है। हरिजन लोग भी तो मनुष्य है तो फिर मनुष्य-मनुष्य के बीच भेद कैसा ? अत: हम कह सकते हैं कि ठाकुर अर्जुन सिंह का व्यवहार कठोरता का परिचायक है उदारता का नहीं ।

शिवपूजन सहाय के 'देहाती दुनिया' (१९२६) उपन्यास में जमींदार के द्वारा हरिजनों के सामाजिक शोषण एवं केप्रतिनिधि हैं ? 'देहाती चित्रित किया गया है । बाबू सरबजीत सिंह नये जमींदार वर्ग के प्रतिनिधि हैं । 'देहाती दुनिया' (१९२६) में पल्टू चमार के ऊपर बाबू साहब के अत्याचार का चित्रण हुआ है । बाबू सरबजीत सिंह एक बीघा खेत के लिए ब्रह्महत्या करते हैं। इस कारण उनपर गांव वाले उनके ऊपर ब्रह्मदोष का आरोप लगाते हैं । उनके विवाह हो जाने पर गांव वालों ने कहना शुरु किया कि,"ब्याह तो हो गया,पर वंश न होगा या, हम लोगों को बड़ी सुविधा हुई । अब तक भी हम बैलों और गाय-भैंसों के घावों में कीड़े पड़ते थे, तब बेटी बेचने वालों के सात नाम लिखकर उनके गले में बांधने के लिए नामों का पता लगाना पड़ता था । पर अब तो केवल 'मनबहाल सिंह' का नाम ही काफी होगा ।" चूंकि मनबहलाव सिंह सरबजीत

---

१. शिवपूजन सहाय : 'देहाती दुनिया' (१९२६),पृष्ठांक २२।

सिंह के ससुर हैं, अत: वह दिन-रात इसी फिराक में रहने लगे-- किसी को ऐसा कहते-सुनते पकड़ पाऊं, तो उसकी पाठ की खाल उधेड़ डालूं ।[1] इसी कारण वे बिद्दु कहार के ऊपर अत्याचार करते हैं तथा बाद में पल्टू चमार के ऊपर भी अत्याचार करते हैं, 'कुछ दिनों के बाद पल्टू चमार की भी बिद्दु जैसी दशा हुई । पर बिद्दु की तरह पल्टू लाचार नहीं था । वह जूतियां गांठकर पेट पालने का वाला चमार नहीं था । वह था ईसाई चमारों का सरदार ।अपने समाज में उसकी बड़ी साख और धाक थी ।[2] सन् १९५०ई० के पहले भारतीय समाज में जमींदारों का बोलबाला था । वे निम्न जाति का सामाजिक शोषण करते थे, इसी का चित्रण शिवपुजन सहाय ने 'देहाती दुनिया' (१९२६) उपन्यास में किया है । लेखक का 'देहाती दुनिया' (१९२६) में हरिजन के प्रति दृष्टिकोण अत्याचार पूर्ण रहा है, क्योंकि उपन्यास में कहीं भी बाबू सरबजीत सिंह के द्वारा पल्टू चमार के ऊपर हुए अत्याचार का विरोध नहीं किया है । इससे यह भी स्पष्ट हो जाता है कि लेखक हरिजनों के उत्थान के सचेष्ट नहीं हैं ।

'देहाती दुनिया' (१९२६) उपन्यास में शिवपुजन सहाय बिना कारण पल्टू चमार को पिटवाते हैं । यह तो जमींदार के उन्माद की अवस्था का परिचय देता है । हमारे समाज में सभी लोग बराबर माने जाते हैं,फिर पल्टू चमार के ऊपर हुए सामाजिक अत्याचार का हम समर्थन किसी प्रकार नहीं कर सकते हैं ।बिना कारण कोई किसी पर अत्याचार करता है, तो उसका विरोध हर दृष्टि से उचित प्रतीत होता है । अत:इससे स्पष्ट हो जाता है कि पल्टू चमार के ऊपर बाबू सरबजीत सिंह ने जो अत्याचार किया है, वह सामाजिक दृष्टि से उचित नहीं प्रतीत होता । यह तो सही बात है कि यदि कोई व्यक्ति गलती करता है तो गांव वाले उसको दोषी ठहराते ही । यदि सरबजीत सिंह दोषी है तो वह क्यों अपने बारे में सत्य बात नहीं सुनना चाहते ? अत: हमारा दृष्टिकोण

---

१. शिवपूजन सहाय :'देहाती दुनिया' (१९२६),पृ०सं० २२।

२. वही, पृ० २३ ।

है कि बिना कारण पल्टू चमार को पिटवाना एक सामाजिक अपराध के समान है,जिसके दोष से बाबू नरबदेश्वर बच नहीं सकते । हमारे विचार से किसी व्यक्ति के गुण,मानसिक प्रवृत्तियां, स्वभाव तथा समाज -व्यवस्था का अन्योन्याश्रित सम्बन्ध होता है । जमींदारी-व्यवस्था एक ओर तो हरिजनों में भय, अंधविश्वास, आत्महीनता के भावों को पुष्ट करती है तो दूसरी ओर जमींदारों को अभिमानी निर्दय और निरंकुश बना देती है ।

नागार्जुन के 'वरुण के बेटे' (१९५७) नामक उपन्यास में मछुआ जाति के वर्ग संघर्ष को चित्रित किया गया है।निम्नवर्ग के व्यक्तियों को जीवनयापन के लिए कितना संघर्ष करना पड़ता है, यही इस उपन्यास का मूल तत्व है । मलाही तथा गोंढियारी दो गांव हैं ।अत्यन्त निकट होने के कारण दोनों एक ही गांव के दो भाग प्रतीत होते हैं । यहां के अधिकांश निवासी मछुए हैं । गढ़-पोखर से मछलियां पकड़ कर जीवनयापन करते हैं । गढ़ पोखर अवाम को तोतो हरवरी जुबान पर घिसते-घिसते 'गरोखर' बन गया है,'गरोखर और उससे पश्चिम कोस भर का इलाका बेगुरा के मैथिल जमींदारों के अधिकार में था । कभी वे सचमुच 'बाबू साहेब' और 'साहूकार' थे । तिरहुत के खानदानी शासक ।[1] जमींदारी का उन्मूलन होता है । जमींदार 'गरोखर' को मलयरा के जमींदार के हाथ बेच देता है। वह गांव के अन्य मछुओं को 'गरोखर' से मछली नहीं पकड़ने देता है । मछुए इस नई व्यवस्था का विरोध करते हैं । संघर्ष प्रारम्भ होता है,'बहोतेरे गढ़पोखर पर हमेशा अपना अधिकार रहा है । जमींदार जल-कर लेता था, हम देते थे । नया खरीददार दूसरे-तीसरे गांव के मछुओं को मछलियां निकालने का ठेका दिया करेगा और हम अपने पुश्तैनी अधिकारों से वंचित होकर हलते फिरेंगे , भला यह भी क्या मानने की बात है ।[2] भोला, नकछेदी तथा गंगा सहनी ने तीन हजार रुपया देकर 'गरोखर'

१.नागार्जुन : 'वरुण के बेटे' (१९५७),पृष्ठांक ३१।

२.वही, पृष्ठांक ३४ ।

का पट्टा लिखवाया था । मछलियाँ निकाले जाने पर आधा हिस्सा उसमें मजदूरी होती थी तथा आधा हिस्सा दोनों मिल कर बाँट लेते । नया मालिक मछली पकड़ने के प्रश्न पर पुलिस को बुला लेता है । अंचलाधिकारी पट्टे को देखकर वापस चला जाता है;--"कागजात साफ बतला रहे थे कि पुश्त दर पुश्त गढ़पोखर से मछलियाँ निकालने का हक मलाही-गोढ़ियारी के मछुओं का चला आया है । मालिक बदलता रहा है, लेकिन असामी कभी नहीं बदले हैं ।"[1] परन्तु जमींदार शान्त नहीं होता । जमींदार तथा मछुओं के बीच यहीं संघर्ष जन्म लेता है । इसमें स्त्रियाँ तक भाग लेती हैं । अन्त में पुलिस इन सब को पकड़ ले जाती है । मछुआ गिरफ्तार होकर 'मछुआ संघ जिन्दाबाद' का नारा लगाते हुए चले जाते हैं ।

लेखक मछुओं के ऊपर होने वाले अत्याचार का विरोध करता है । वह नहीं चाहता कि इनका पुश्तैनी अधिकार समाप्त हो जाय । मछुओं के द्वारा लेखक ने अपने विरोध को प्रकट किया है तथा उनके अटल निश्चय की घोषणा की है;--"मछुओं का संगठन तय कर चुका था, कि किसी भी स्थिति में घुटने नहीं टेकेंगे । मलाही वालों का नया प्रभुत्व गैर कानूनी है, सर्वथा गलत है, वे गढ़पोखर की सीमाओं के अन्दर उन्हें घुसने नहीं देंगे ।"[2]

नये जमींदार के द्वारा मछुओं को मछली न पकड़ने देना तो अत्याचार है । इसे हम सामाजिक तथा नैतिक दृष्टि से भी उचित नहीं कह सकते हैं । इसका कारण है कि मछुओं का जीवन इन्हीं के ऊपर टिका होता है । उन्हें मछली पकड़ने के अधिकारों से वंचित कर देना तो एक गंभीरतम अपराध के समान है जो तर्कसंगत भी नहीं लगता है । मछुए विरोध प्रकट करते हुए कहते हैं;--"यह पानी सदा से हमारा रहा है, किसी भी हालत में हम इसे छोड़ नहीं सकते। पानी और माटी न कभी बिके हैं, न कभी बिकेंगे । सरोवर का पानी मामूली पानी नहीं है, यह तो हमारे शरीर का लहू है । जिन्दगी का निचोड़ है ।"[3]

---

१. नागार्जुन : 'वरुण के बेटे' (१९५७ई०, पृ०सं०७८।

२. वही, पृ०सं० १२७।

३. वही, पृ०सं० ३३ ।

जमींदार अपनी कूटनीति का प्रयोग भी करता है । वह गंगा-सहनी को मिला लेता है । पर अन्ततः जमींदार असफल होकर रह जाता है । सत्य का पलड़ा भारी पड़ने लगता है । मछुए साम्यवादी विचारों से भी प्रभावित लगते हैं-- 'इन्किलाब जिन्दाबाद....... मछुआसंघ जिन्दाबाद[1].... हक की लड़ाई जारी है । जारी है !.... गढ़पोखर हमारा है, हमारा है !..... यह संपूर्ण घटना आधारित होने का कारण साम्यवादी विचारों से उद्भूत वर्ग संघर्ष पर आधारित है ।'[2]

बैजनाथ गुप्त के 'जीवन : जीवन आग और आंसू' (१९५८) उपन्यास में हरिजनों के ऊपर सामाजिक अत्याचारों को चित्रित किया गया है। ठाकुर साहब चमार के लड़के को पीटते हैं । लड़के का अपराध इतना है कि वह एक दिन उनके बाग में घुस चला जाता है, तो इसी बात को लेकर ठाकुर रनबाज सिंह उसको पीटते हैं, 'कई व्यक्ति ठाकुर रनबाज सिंह को पकड़ने की चेष्टा कर रहे थे, किन्तु ठाकुर साहब उस लड़के को बुरी तरह से मारते चले जा रहे थे । मार वे लड़के को रहे थे, किन्तु शरीर उनका कांप रहा था । साथ ही कहते जा रहे थे-- इन सालों ने क्या समझ रखा है । सरकार बदल गई तो क्या आदमी भी बदल गए । जिस दिन संसार में ऊंच-नीच, गरीब-अमीर, छोटे-बड़े का भेदभाव मिट जायगा, उस दिन दुनियां का भी लोप हो जायगा । चमार के छोकड़े की इतनी हिम्मत ! इसका बाप सरपंच है तो क्या साला हमसे बड़ा हो गया । चमार तो चमार... ।

बुल्लू ने बीच में ही बोलते हुए कहा -- नहीं मालिक । सरपंच होये से कहउ जाति बदल जाये । रहे तो चमार का चमारइ ।'
'नहीं, नहीं अब से जमींदारी खत्म हुई है, देखता हूं इन सालों के पंख लग गए हैं।

---

१. नागार्जुन : 'वरुण के बेटे' (१९५७), पृ०सं० १३०।

२. सरोजनी त्रिपाठी : 'आधुनिक हिन्दी उपन्यासों में वस्तुविन्यास', (१९७३), पृ०सं० २९८ ।

[illegible]गुरे [illegible] ने ठाकुर साहब धमकाने लगे हैं । मुलाजी इधर हो जाते हैं उधर [illegible] कुछ बात ही नहीं करते । मगर वे नहीं समझते, अपना दाहिना भुजा हिलाते हुए, उन्हें दुर्बलता [illegible] है । एक-एक को काट कर फेंक दूंगा । देखता हूं कौन मेरा रोक सकता है । जमींदारी खत्म होने का मतलब यह नहीं है कि बीबा चमारों से दबकर रहूंगा । मेरा नाम ठाकुर रनबाज सिंह है । बड़े-बड़े [illegible] अफसरों को जूते से मार चुका हूं । दरोगा तक तो मुझसे घबड़ाता है । पंचायतें क्या बन गई हैं, इन सालों के पंख लग गए हैं । देखता हूं, मेरा कोई क्या बिगाड़ लेता है ।" इतना कहने के पश्चात् उन्होंने झपट कर उस लड़के के मासूम कपोलों पर तीन-चार चट्-चट्-चट् फिर जमा दिए ।"[1]

"ठाकुर साहब जाने दया । अब कभी ये आपकी बागी में पैर रखे ।गुल्लू ने ठाकुर साहब के पैर को दाहिने हाथ से छूते हुए कहा ।"[2]

ठाकुर कहते हैं--"लात के देवता बात से नहीं मानते । आज इसके हाथ-पैर तोड़ दूंगा । साले की नाक पहिले मेरे नाम से थर्राते थे और आज लूट मचाए हुए हैं ।"[3]

ठाकुर साहब इतना मारते हैं कि झिंगुरी बेहोश हो जाता है, 'झिंगुरी बेहोश पड़ा है । ठाकुर रनबाज सिंह उसे मार रहे हैं । कई व्यक्ति उन्हें मारने से रोक रहे हैं । गांव के रखवारे और चरवाहों की भीड़ लगी हुई है । बाबू साहब क्षमा करो । बहुत हो गया । मर जायगा ।" [illegible] ने हाथ जोड़ते हुए कहा ।

'कौन ब्राह्मण है जो हत्या लेगा । मर जाने दो साले को ।"[4]

१.भैरवनाथ गुप्त :'जंगल: आग और आंसू',(१९५९ई,पृ०सं०१८।

२.वही, पृ०सं० १८ ।

३.वही, पृ०सं० १८ ।

४.वही, पृ०सं० २० ।

लेखक हरिजनों के ऊपर होने वाले अत्याचार के प्रति मूक दर्शक नहीं बना रहता । वह ठाकुर के अत्याचार का स्पष्ट विरोध करता है कि उनका कार्य गलत है । एक औरत कहती है,--"अरे बहिनी अइसन मारत का चाही । ठाकुर अहेन त अपने घरे का अहेन । आम तोरे रहा तऽ दुइ चार थपरा मारि देते न । अइसन नाहि देखे कि बिचू के लरिका का जान निकारि ले ।" कोई कहता जा रहा था,--"पैनवा लबका के पुकार नाहि बा । गरीबई मनई का सब मारत गरियावा चाहि ।" कोई कहता जा रहा था,--" अबहीं हमार गर्भे का मनई इनके लड़के लरिकन क मारि देहे होत त देखतु । जान लै लेतान, जान ।"[1]

ठाकुर रनवाज सिंह से झिंगुरी का जो पिटाई हुआ है, वह तो सरासर अन्याय है । माना कि उसने उनके बाग से आम चुराये तो वे दो-चार थप्पड़ मार लेते, पर यह तो उचित नहीं लगता कि वे किसी हरिजन की जान ले लेवें । ठाकुर रनवाज सिंह का यह विचार भी तर्कयुक्त नहीं लगता कि जिस दिन संसार में ऊँच-नीच का भेद-भाव मिट जायेगा, उस दिन दुनिया का लोप भी हो जायेगा । आज तो समानता स्थापित हो रही है, पर दुनिया तो अपनी जगह है, जिस तरह पहले थी । वास्तव में जब ठाकुर को जमींदारी से हाथ धोना पड़ा है, इसलिए वह क्रोध में चमारों को चोट कर अपना गुबार निकालता है । सरकार ने सन् १९५०ई० में जमींदारी तोड़ी थी । चूँकि यह उपन्यास उसके आस पास के समय लिखा गया है, अत: इस उपन्यास में ठाकुर के जमींदारी प्रवृत्ति का परिचय मिलता है । ठाकुर सोचते हैं कि जमींदारी के समय जो रोब था, वह अब भी बना रहे । पर युग बदलने के साथ सब बदल जाता है । जब जमींदारी टूटी तो लाखों जमींदार बेकार हुए तथा उनकी जमीन के मालिक काश्तकार लोग बन बैठे । इस तरह सरकार ने हरिजनों को ऊपर उठाने की चेष्टा की । छटंकी लाल ठाकुर के चरित्र का विश्लेषण करता हुआ कहता है--"तुम नहीं जानते दादू । इनकी हालत खिसियाई बिल्ली की तरह है । मुफ्त हराम की चाट लगी थी । जितने घरों में अब हराम की चूल्हे नहीं जलते । ठकुराइन साहब अलग मुंह

---

१. बैजनाथ गुप्त : 'बाभन : आग और आंसू', (१९५८ई०, पृष्ठसं० २३ ।

फुटता रहता है, क्योंकि चौका-बर्तन भी अब उन्हीं को करना पड़ता है। गांव में पैसा है नहीं कि नाउन-धोबिन रखें। नौकर-चाकर भी छोड़कर भागे जा रहे हैं। किसान से अपने खेत को जुतवा भी नहीं सकते। अपने हाथ से काम करेंगे नहीं, क्योंकि शान में बट्टा लगता है। जो काम पहले पैसे से होते थे क्या करेंगे। सबसे बड़ा भय तो उन्हें अपनी झूठी इज्जत का है। पैसे-पैसे के लिए परेशान हैं मगर शान वही रखना चाहते हैं। ऐंठ वही है जो पहिले था। रस्सी जल गई मगर ऐंठन न गई।[1]

रामचन्द्र तिवारी के 'नकलीन' (१९६३) उपन्यास में हरिलाल चमार के ऊपर जमींदार तथा कारिन्दा का अत्याचार चित्रित किया गया है। हमारा समाज हरिजनों को हमेशा से निम्न कोटि का समझता चला आया है, क्योंकि समाज में प्रायः हरिजनों का उत्पीड़न होता है। ठाकुर शिवनन्दन सिंह तथा कारिन्दा दोनों मिलकर हरिलाल हरिजन का सामाजिक शोषण करते हैं। जब कारिन्दा हरिनाथ हरिजनों का उत्पीड़न करते हैं तो हरिलाल, हरिनाथ के विषय में ठाकुर शिवनन्दन सिंह से कहता है--'ठाकुर दादा, कारिन्दा साहब भी तो आदमी को आदमी नहीं समझते। गाली सदा जबान पर बनी रहती है। यदि मद चढ़ गया तो क्या बुरा हुआ?'[2]

हरिनाथ अपने चमार की इस स्पष्टवादिता पर चौंक पड़ते हैं। वे बोलकर हरिलाल से कहते हैं--'क्यों रे चमार के, तुझे नहीं सोता? अभी कान पकड़ कर बाहर निकाल दूंगा।' 'आप बाबू तुम बैठे रहो, तुम अभी कान पकड़ कर निकाल दोगे, यह हो सकता है मैं चला जाऊंगा, पर अभी घण्टे भर में तुम्हारी बहिन का संदेशा पहुँचेगा।'[3]

इस बात पर हरिनाथ चमार को पीटना चाहता है। वह इतना पीटना चाहता है कि उसकी जान निकल जाये पर वह अपनी इच्छा पर संयम

---

१. बैजनाथ गुप्त : 'जीवन आग और आंसू', (१९५८), पृ०सं०२१।

२. रामचन्द्र तिवारी : 'नक्कोकन' (१९६३), पृ०सं०७१।

३. वही, पृ०सं० ७१।

रखता है, क्योंकि अगर हरिलाल बीमार पड़ जाता है तो उसके खलिहान का काम रुक जायेगा। हरिलाल तो बचपन का सेवा-चाकरी में हरिलाल दाहिना हाथ है, अतः आखिर हरिनाथ बोल नहीं पाता।

रामचन्द्र तिवारी का 'नवजीवन' (१९६३) उपन्यास में हरिजनों के प्रति दृष्टिकोण[1] सुधारवादी है। लेखक ने हरिलाल चमार के माध्यम से हरिजनों की विकट सामाजिक परिस्थिति के विरुद्ध विद्रोह को चित्रित किया है। लेखक हरिजनों के ऊपर अत्याचार भी नहीं चाहता, बल्कि वह तो हरिजनों का उत्थान चाहता है। रामधन कहता है, --'हरिलाल ठीक कहता है, हमने और भी चमार देखे हैं, उनकी सेवा भी है, पर ऐसा बदमिजाज नहीं देखा।' हरिलाल के ऊपर अत्याचार दिखाने के साथ-साथ उसमें सामाजिक अत्याचार के विरोध में विद्रोह की भावना भर दी है।

हरिलाल के ऊपर जो अत्याचार कारिन्दा के द्वारा किया जाता है, वह ठीक नहीं कहा जा सकता है। जो व्यक्ति अपने मालिक का निःस्वार्थ भाव से सेवा कर रहा है, मालिक के द्वारा उसी का उत्पीड़न कहाँ तक उचित कहा जा सकता है? हरिलाल है तो हरिनाथ का सेवक, उसके खेत को जोतता है तो फिर दण्ड देने की बात अनुचित लगती है। यदि हरिलाल स्वयं उसका नौकर न होता तो भी हरिनाथ के द्वारा हरिजनों का शोषण समाज में हम उचित नहीं ठहरा सकते हैं। लेखक हरिजनों के अत्याचार के प्रति सहानुभूति दृष्टिकोण रखता है, इसीलिए हरिलाल अपने ऊपर होने वाले अत्याचारों का डटकर मुकाबला करता है। जब ठाकुर शिवनंदन सिंह, हरिनाथ से हरिजनों के बारे में कहते हैं,--'आजकल ये शुद्र बहुत सिर चढ़ गये हैं। ताड़ना न दीजिए तो वश में न आयें। अच्छा किया[2] जो रामधन ने दण्ड लगा दिया। उस चमार के भी यदि दण्ड लग जाता तो....।' इसी बात पर हरिलाल काम छोड़ कर

---

१. रामचन्द्र तिवारी : 'नवजीवन' (१९६३), पृ०सं० ७२।

२. वही, पृ०सं० ७४।

कहता है,--`हां दादा, बमार पाटने के हा लिए तो हैं। अपना काम छोड़ कर, हारी बीमारी भुलाकर तुम्हारा काम करें और ऊपर से गाली खायं, मारने का धमकी खायं।* हरिनाथ बाबू, ये हैं तुम्हारे बैल। कहो तो खोलकर बांध दूं। मेरे बस का यह काम नहीं। पिटना और मजदूरी करना है तो सड़क पर मदद लग रही है। भगवान सब को देता है।` हरिलाल का यह कथन ही हरिनाथ तथा ठाकुर शिवनन्दन सिंह के अत्याचारों का खुलकर चित्रण कर देता है। हरिलाल का चरित्र निम्नकोटि का नहीं है, बल्कि वह सवर्ण हिन्दू ठाकुर शिवनंदन सिंह तथा हरिनाथ से उच्च है। वह जन्म से जरूर निम्न जाति का व्यक्ति है, पर जमींदार तथा कारिन्दा के समान नीच प्रवृत्ति का व्यक्ति नहीं है। प्राचीन वर्ण-व्यवस्था में हरिजनों के प्रति उच्च वर्ण की उपेक्षा भी एक महत्वपूर्ण सामाजिक बुराई थी और आज भी यह बुराई उसी रूप में विद्यमान है, जिस तरह प्राचीन समय में थी, बल्कि हम तो ये कहेंगे कि कितने भी हरिजनों के उत्थान के लिए कार्य किये गये हों पर आज भी हरिजनों के साथ प्राचीन समय से भी अधिक छुआछूत की भावना हमारे इस समाज में व्याप्त है। उच्च वर्ग जो कि हरिजनों की उपेक्षा करता है, उसको दूर किये बिना समाज का सर्वांगीण विकास सम्भव नहीं है।

पूंजीपति वर्ग

जिसप्रकार हरिजनों के ऊपर राजवर्ग अमानुषिक अत्याचार करता था, उसी प्रकार पूंजीपति वर्ग भी हरिजनों को सताता था। हिन्दी उपन्यासकारों की दृष्टि से यह ओझल न हो सका। उन्होंने अपने उपन्यासों में इस अमानुषिक अत्याचार का सफल चित्रण किया है।

वृन्दावनलाल वर्मा के `भुवन विक्रम` जो कि एक ऐतिहासिक उपन्यास है, में कपिंजल(१९५७) शूद्र के ऊपर सामाजिक अत्याचार का चित्रण मिलता है। कपिंजल शूद्र है,` शूद्र है न? नाम ?``हूं तो, नाम कपिंजल है।`

१.वृन्दावनलाल वर्मा :`भुवन विक्रम`(१९५७),पृ०सं०२१।

व्यापारी वर्ग किस प्रकार अपने दासों पर अत्याचार करते हैं, इसका चित्रण 'भुवन विक्रम' (१९५७ई) में हुआ है। कपिंजल शूद्र नाल व्यापारी का दास है। नाल का बेटा हिमानी तथा अयोध्या का राजकुमार साथ-साथ तीर चलाने का अभ्यास करते हैं। भुवन के तीर लक्ष्य पर सीधे नहीं पड़ते हैं, कपिंजल ने तुरन्त भुवन के कान में फुसफुसा कर, विशेष प्रणि को छोड़ने के नामनेक बातें। अब की बार करके, कपके ध्यान के साथ मारा। भुवन का तीर लक्ष्य पर जा पड़ा। भुवन के मन में कपिंजल के लिए कुछ अनुराग उत्पन्न हुआ।

हिमानी ने कपिंजल के वाक्य का कुछ अंश तो सुन ही लिया। मेघ को भी बुरा लगा।

'शूद्र! तेरी यह अनधिकार चेष्टा!' मेघ का फूटा हुआ क्रोध कपिंजल पर बरसा। हिमानी की आंख में भी लाल डोरे गहरे हुए। कपिंजल ने अविचलित स्वर में कहा--'मैंने क्या किया?'

'दास होकर यह सब!' मेघ गरजा और हिमानी को आज्ञा दी, --'ले जाओ बेटी हिमानी इसको यहां से।'[2] इसी पर शूद्र कपिंजल का सारा देह सुज गई, पर वह आह और कराह लेने के सिवाय चिल्ला नहीं रहा था। उसका बचाने वाला वहां था भी कौन? पिटते-पिटते बेहोश हो गया। हिमानी को लगा कहीं मर न जाय। वैसे दासों के प्राण उनके स्वामी या राजा के हाथ में रहते थे, अब जो जितना प्रबलतर हो बैठे।'[2] निरपराध पर अत्याचार करने से नाल के सभी दास भाग जाते हैं।

लेखक का कपिंजल शूद्र के अत्याचार के प्रति सहानुभूतिपूर्ण दृष्टिकोण है। वर्मा जी कपिंजल के अत्याचार के प्रति विरोध प्रकट करते हैं।

---

१. वृन्दावनलाल वर्मा : 'भुवन विक्रम' (१९५७ई, पृ०सं०९३।

२. वही, पृ०सं० ९६।

जब कपिंजल दास को पकड़ने के लिए नाग भुवन से सहायता मांगता है तो भुवन इन्कार कर देता है,--' मैं दास प्रथा को अच्छा नहीं समझता हूं । हमारे यहां कहा है कि ऊपर उठना और आगे बढ़ना प्रत्येक जीव का धर्म है...., कपिंजल या किसी भी दास को पकड़-धकड़ में मैं कोई सहायता न कर सकूंगा ।'[1], इसी प्रकार जब नाग के आदमी कपिंजल को पकड़ने के लिए धौम्य महर्षि के आश्रम में जाते हैं तो महर्षि का शिष्य आरुणि, नाग के नौकरों से कहता है--' लौट जाओ । यहां से तो इस दु:खी[2] शरणागत को तुम्हारा राजा रोमक भी पकड़ कर नहीं ले जा सकता ।'

'भुवन विक्रम'(१९५७ई०) उपन्यास में कपिंजल शूद्र के ऊपर जो अत्याचार किया गया है, वह सामाजिक दृष्टिकोण से ठीक नहीं है । कपिंजल शूद्र का कोई अपराध नहीं है । वह तो निरपराध है ।अगर उसने भुवन से यह कह दिया कि तुम भी लक्ष्य को तीर से मार भेद दो, तो उसने कौन सा गलत कहा । इस बात पर किसानों द्वारा उसकी पिटाई करना कहां तक उचित कहा जा सकता है । इससे यहां तो स्पष्ट हो जाता कि समाज में हरिजनों का निम्न स्थान है तथा उनके ऊपर सवर्ण कों जो चाहे सो अत्याचार कर सकते हैं । साथ ही साथ समाज में दासों की स्थिति भी स्पष्ट हो जाती है । कपिंजल शूद्र नाग का नौकर (दास) ऋण न चुका पाने के कारण हो जाता है ।दास होने के कारण नाग उसपर जो अमानुषिक अत्याचार करता है, वह अनुचित है । मेघ, किसानी सम अत्याचारी शासक के समान हैं । एक तरफ तो वे कपिंजल शूद्र को बगैर अपराध पिटवाते भी हैं तो दूसरी ओर राजकुमार भुवन से शिकायत भी करते हैं, --' असल में तुम्हारे पिता[3] के शिथिल शासन के कारण ही दासों और शूद्रों ने इतना सिर उठा रक्खा है ।'

१.वृन्दावनलाल वर्मा : 'भुवन विक्रम' (१९५७ई,पृ०सं०३०।

२. वही,पृ०सं० ४६ ।

३. वही, पृ०सं० १२

<u>कुएं से पानी न भरने देना</u>

वर्णाश्रम-व्यवस्था में शूद्रों को निम्न स्थान दिया गया है। सदियों से उनके साथ भेद-भाव का बर्ताव किया जाता रहा है। समाज के लोग हरिजनों के ऊपर इतना अत्याचार करते हैं कि उनको कुएं से पानी भी नहीं भरने देते। अधिकांश उपन्यासकारों ने इस समस्या को चित्रित किया है।

राजेन्द्र अवस्थी 'तृषित' के 'सूरज किरन की छांव' (८८ पृष्ठ) में हरिजन के ऊपर सामाजिक ताड़ना का चित्रण मिलता है। तिजरिया मिहतरानी है जब वह कुएं पर पानी भरने जाती है तो उसे लोग (पंडित वर्ग) पानी नहीं भरने देते हैं। समाज में हरिजन को हमेशा अलग ही माना गया है। उनका अलग कुआं भी बना दिया जाता है। सवर्ण हिन्दू लोग अपने कुएं से पानी नहीं भरने देते हैं। तिजरिया जब पानी भरने जाती है तो गेंदरी अपनी भाभी से कहती है,--'अरी वही तिजरिया, जो हमारे मैदान में झाड़ू लगाती है।'

'तिजरिया मिहतरानी ?'

'हां-हां वही, कुएं में पानी भर रही थी, पण्डित के लड़के ने देख लिया तो गांव भर को भड़का दिया। गांव के लोग लट्ठ लेकर दौड़ आये, बोले, उसकी क्या हिम्मत।'

'जब वह चिल्लायी तो गंगा के कुम्हार भी आ गये, चमारों ने उनका साथ दिया, महारों ने भड़काया और बसोरों ने लट्ठ दिये।'

'हां भाभी बड़ा हुआ। चमार तथा कुम्हारों का अलग कुआं है, वे उसी में पानी भरते हैं कहते हैं, आज एक भैंस उसमें डूब मरी। जब तक उसे निकाला न जाय, पानी कहां से आये, सो आज बेचारी यहां चली आयी।'

'यह तो खराब हुआ' मैंने कहा, 'किसी पण्डित को पानी भरकर उसे दे देना था।'

'पण्डित क्यों दे भाभी ?' गेंदरी ने आंखें चढ़ाकर कहा, --'कुआं गांव भर का है,

पण्डितों के बाप का नहीं । इसी से पानी भर सकते हैं । तुम नहीं जानते
इसे अपने पादरी ने बनवाया है । पहले इस गांव भर में कुआं नहीं था ।'

'फिर लोग पानी कहां से लाते थे ?' मैंने प्रश्न किया, उसने
कहा,' सामने के नाले से । गर्मी में वह भी सूख जाता था । कगारों के नीचे
झिरिया खोदकर पानी उलीचते थे ।'

'हमारे गांव में तो अब भी यही होता है गिरधारी । तुम्हारे
पादरी बड़े दयावान हैं ।'[1]

राजेन्द्र अवस्थी का 'सूरज किरन की छांव' (१९५९ई०) उपन्यास में
हरिजनों के प्रति दृष्टिकोण सुधारपूर्ण है । लेखक पंडित वर्ग के अत्याचार
का विरोध करता है,जो कि उचित भी है । लेखक ने इस उपन्यास में सामाजिक
अत्याचार का विरोध करते दोनों पक्षों में(चमार तथा पण्डित वर्ग) में संघर्ष
की भावना को भी चित्रित किया है ।

सिबरिया मिस्तरानी को कुएं से पानी न भरने देना तो
सामाजिक अपराध है । हमारे समाज में हरिजनोंको हेय दृष्टि से देखा जाता
है,इसीलिए उनको हर तरह — तरह से सताया जाता है, उनको कुएं से पानी
न भरने देना, रोटी-बेटी व का संबंध न करना आदि । 'सूरज किरन की छांव'
(१९५९) उपन्यास में भी सिबरिया मिस्तरानी के साथ सवर्ण हिन्दू वर्ग अपना
पुरानी कहानी को दोहराता है,जिसपर संघर्ष तक की नौबत आ जाती है ।
पर लेखक ने संघर्ष दिखाया नहीं है । प्रश्न उठता है कि जब समाज में सब लोग
बराबर हैं तो किसी वर्ग पर क्यों अत्याचार किया जाए ? पर इन अत्याचारों
को देखकर लगता है कि सामाजिक उच्च व्यवस्था का कहीं नाम नहीं है । जैसे
पुलिस वर्ग अपराधी को न पकड़कर सीधे लोगों को सताती है, उसी प्रकार समाज

---

१. राजेन्द्र अवस्थी : 'सूरज किरन की छांव' (१९५९ई०, पृष्ठ० ५६ ।

में उच्च वर्ण के लोग निम्न वर्ण के लोग अर्थात् हरिजनों के साथ नाका का बर्ताव करते हैं । हरिजनों के ऊपर किसी प्रकार का अत्याचार करना उच्च वर्णों का जैसे जन्मजात अधिकार बन गया है और यही मुख्य कारण है कि उच्च वर्ण के लोग को हरिजनों के ऊपर सामाजिक अत्याचार करते समय तनिक भी क्लेश नहीं पहुंचता है । हरिजनों को हम कुएं से पानी नहीं भरने देते पर जब कुआं गंदा हो जाता है तो हरिजनों से ही उसे साफ करने के लिए टोकनी उठवाई जाती है । यह प्रश्न उठता है कि जब हरिजन के स्पर्श मात्र से कुएं का जल अशुद्ध हो जाता है, तो फिर कुएं में हरिजन जो उतर कर गन्दगी निकालता है तो क्या कुआं का पानी स्वच्छ रह सकता है? अगर इस प्रश्न का उत्तर हम हां में देते हैं तो इसका मतलब ये है कि जब साफ करने से जल अशुद्ध नहीं होता तो हरिजन के स्पर्श से भी जल शुद्ध ही रहेगा । यदि हम इ उपरोक्त प्रश्न का उत्तर हम ना में देते हैं तो इसका तात्पर्य हुआ कि कुएं का जल अशुद्ध हो गया तो वह पण्डित वर्ग के (सवर्णों) पीने लायक तो नहीं रह जाता है । पर हमारे समाज में से सवर्ण लोग उसी कुएं का पानी पीते हैं तो फिर अछूतपन की भावना ही कहां रही ? अत: हम कह सकते हैं कि सिजरिया मिस्तरानी का कुएं पर पानी भरना कोई सामाजिक अपराध नहीं है । जब समाज हरिजनों के हाथ से साफ किया गया कुएं से पानी को शुद्ध समझ कर पीते हैं तो सिजरिया मिस्तरानी का कुएं से पानी लेने पर कोई अशुद्धता नहीं आ सकती है । राजेन्द्र अवस्थी पर गांधी जी के अछूतोद्धार का प्रभाव दिखाई पड़ता है। वे सिजरिया मिस्तरानी के पानी न भरने देने पर समाज के सवर्णों के प्रति तीव्र आक्रोश व्यक्त किये बिना नहीं रहते ।

रामदरश मिश्र के `सूखता हुआ तालाब` (१९७२) में मुरतिया चमार के ऊपर सवर्ण हिन्दुओं के द्वारा अत्याचार किया जाता है ।रामलाल, मुरतिया को कुएं से पानी नहीं भरने देते हैं ।मुरपलटी का बेटा जब कुएं पर पानी भरने के लिए चढ़ता है तो रामलाल जो कि शिवलाल का बेटा है,उसको

मार देते हैं, भिखलाल के बेटे रामलाल ने सुग्गसरा के बेटे को मारा है । सुग्गसरा का बेटा मुरतिया नाक्साने के लिए कुएं पर चढ़ गया । उसने देखा नहीं कि रामलाल भी पानी भर रहे हैं । बस इतनी बात पर रामलाल ने कई झापड़ लगा दिये मुरतिया को ।"[1]

लेखक ने मुरतिया के अत्याचार के प्रति विरोध नहीं प्रकट किया है । मोतीलाल कहते हैं,-- "अरे जाने दीजिए, झापड़ खा गया तो कौन मामला मर गया । अब चमार सियार के पीछे किस पट्टीदार से लड़ाई करने जाऊं । जब गांव के लोग छूत-छात मानते हैं तो थोड़ा ठहर कर ही पानी भरता मुरतिया को इतनी जल्दी क्या थी ? बात यह है कि इन सालों का भी काम में मन लगता नहीं, जल्दी-जल्दी काम करके तार-भाठ करना चाहते हैं ।"[2] ऐसा लगता है कि इस उपन्यास में लेखक हरिजनों के ऊपर होने वाले अत्याचार का समर्थन कर रहा है ।

रामलाल ने बिना अपराध मुरतिया को पानी नहीं भरने दिया है तथा उसको पीटा है, अतः यह सब करके रामलाल ने सामाजिक दृष्टि से अपराध ही किया है । अगर कोई सवर्ण हिन्दू किसी हरिजन को पानी भरने के लिए तमाचे मारता है तो यह बहुत बुरी बात है । मोतीलाल जैसे नेता से तो हरिजनों का उत्थान नहीं हो सकता है । मोतीलाल जैसे नेता तो एक तरफ हरिजनोत्थान का नारा लगाते हैं तथा दूसरी तरफ उनके ऊपर होने वाले अत्याचारों के प्रति उदासीन रहते हैं । मोतीलाल , बैराम से कहते हैं,-- "आप लोग दुनियादारी की बातों को नहीं समझते, छोटी-छोटी बातों को महत्त्व देकर झगड़ों में समय गंवाया करते हैं । सामाजिक जिन्दगी बड़ी पेचीदा होती है, उसे सरल, और सीधे ढंग से नहीं समझा जा सकता ।"[3] ऐसा लगता है कि

१.रामदरश मिश्र : 'सूखता हुआ तालाब'(१९७२ई०),पृष्ठांक १९ ।

२.वही, पृष्ठांक २१ ।

३.वही, पृष्ठांक २२ ।

स्वयं लेखक यहां पर हरिजनों के प्रति भेदभाव बरत रहा है, "एक कुएं पर बाम्हन और हरिजन पानी नहीं भर सकते । यह तो एक चिरंतन दिव्य कथा है ।"[1] लेखक ने हरिजनों के ऊपर होने वाले अत्याचारों का विरोध न करके हरिजनों के प्रति न्याय नहीं बल्कि अन्याय किया है । रामलाल तो सवर्ण हिन्दू पात्र के हैसियत से पुराना-परम्परा के प्रभाव के कारण अत्याचार करता है । आवश्यकता इस बात का है कि सवर्ण हिन्दुओं के मन में हरिजनों के प्रति प्रेम उत्पन्न किया जाये तभी हरिजनों के ऊपर होने वाले अत्याचार को समाप्त किया जा सकता है । आज भी समाज में हरिजनों के साथ कैसा भेद-भाव बरता जाता है, इसका भी चित्रण मिलता है, --"देखो लाड़ें[2] चमरिया ने प्रसाद छूकर अपवित्र कर दिया । अब इस प्रसाद का क्या होगा ।" लेखक व्यंग्य करता है,--"धर्मेन्द्र क्रोध से थूक फेंक रहे थे, जिनके कण लोगों के चेहरों को पवित्र कर रहे थे ।

'कौन है हो मास्टर धरमेन्दर, चैनव्या की माई है क्या ? कह कर जैराम ने व्यंग्य भरी हंसी के साथ धर्मेन्द्र शिवलाल और दयाल की ओर देखा ।

"मैं क्या जानूं कौन है ? चमरौटी भर को पहचानने का ठेका लिया है क्या ?"[3]

हरिजनों की निम्न सामाजिक स्थिति के लिए सवर्ण हिन्दू ही जिम्मेदार हैं । ये ही लोग हरिजनों की सामाजिक उन्नति के मार्ग में बाधा डालते हैं । आज भी समाज हरिजनों से परहेज करता है । यह कहां तक उचित है कि समाज में हरिजनों का उत्पीड़न किया जाए । यदि चैनव्या की माई प्रसाद छू देता है तो क्या हुआ ? क्या वह मनुष्य नहीं है ? क्या वह उसी ईश्वर का बनाया हुआ नहीं है, जिसके बनाये सवर्ण हिन्दू हैं ? लेखक ने जैराम के द्वारा सवर्ण हिन्दुओं की छुआछूत भावना पर व्यंग्य किया है ।

---

१. रामदरश मिश्र : "सूखता हुआ तालाब" (१९७२ई), पृ०सं० २२ ।

२. वही, पृ०सं० ३७ ।

३. वही, पृ०सं० ३७ ।

समाज का अमानुषिक व्यवहार

सदियों से यह प्रथा चली आ रही है कि समाज में हरिजनों के साथ अमानुषिक व्यवहार किया जाए। उपन्यासकारों की दृष्टि समाज के जघन्य कृत्यों के ऊपर गई है। समाज के सवर्ण लोग परम्परावादी-दृष्टिकोण का लाभ उठाकर उनका शोषण करना अपना धर्म समझते हैं। उच्च वर्ण के लोग हरिजनों को मनमाना काम तक धारण नहीं करने देते। सभी प्रकार से वे हरिजनों का शोषण करने से बाज नहीं आते। 'रंगभूमि' में सुभागी के ऊपर भी होने वाले अत्याचार का प्रेमचन्द ने चित्रण किया है। सुभागी भैरो पासी की पत्नी है तथा एक साधारण पासिन के रूप में प्रेमचन्द ने 'रंगभूमि' (१६२५ई) उपन्यास में सुभागी उन रुपयों को वापस कर देता है। फलस्वरूप गांव वालों के कहने से भैरो उसको पीटता है तथा सूर के घर रहने के कारण दुश्चरित्र होने का भी उस पर आरोप लगाता है। प्रेमचन्द सुभागी पर अत्याचार होने देने के पक्ष में नहीं है। सुभागी के चरित्र द्वारा प्रेमचन्द[2] द्वारा नारी जाति पर होने वाले अत्याचारों का वर्णन किया है। जिस प्रकार सुभागी सास और पति द्वारा दोनों से त्रस्त, दोनों से उपेक्षित और तिरस्कृत[1] ठीक उसी प्रकार वर्तमान युग में आज भी हरिजन वर्ग की नारियां अपने पारिवारिक-जीवन में दुःख भोगती है। प्रेमचन्द ने दाम्पत्य-जीवन के टूटन को भी उभारा है। सुभागी चुपचाप मारी पीड़ा और भर्त्सना आंचल में मुंह छिपाये पीती रहती है, क्योंकि सुभागी भारतीय नारी का प्रतीक है। सुभागी भीतरी रूप से अपने अभिशप्त नारी-अस्तित्व की मजबूरियों का भान करते हुए, दुखी जिन्दगी के दिन काटती रहती है, किन्तु प्रेमचन्द के महान समाज-द्रष्टा की आंखों से सुभागी की यह दशा छिपी रह न सकी। उनका सुधारवादी गांधी दौड़ा हुआ पांडेपुर गांव आया, बिना इस बात का संकोच करते हुए कि वह बस्ती पासी तथा चमारों जैसी हरिजनों की बस्ती है, जहां गन्दगी तथा कीचड़ का नरक है। उसे भिखारी, चमार सूरदास के मन में पैठकर उन्होंने अपनी चिरसंचित संवेदना को सुभागी के आंचल में उड़ेल दिया, जिसे पाकर सुभागी के सूखे मन की धरती भींग उठी, रोम-रोम पुलक उठा, जिसे पाकर वह

सारी दुनिया से लड़ाई लेकर प्रत्येक कष्ट को सहने को तैयार हो गई । उसकी ग्रंथियां खुलीं और स्वाभिमान जग उठा । यही तो प्रेमचन्द चाहते थे ।

सुभागी के माध्यम से लेखक ने स्त्री सम्बन्धी विचार भी प्रकट किये हैं । प्रेमचन्द दाम्पत्य-टूटन को स्वीकार नहीं किया है । अन्त में उन्होंने फिर से पति-पत्नी का मेल करवा दिया है । सुभागी अपने दाम्पत्य-जीवन वैषम्य के कारण दुःखी तथा पीड़ित है और जो समाज से घिरा हुआ है, जहां वह अपनी मर्म-व्यथा का एक शब्द भी बोलकर जी हल्का नहीं कर सकता। अतः सुभागी एक वर्ग प्रधान नारी पात्र के रूप में हमारे सामने आती है ।

सुभागी का चरित्र किसी कुलीन वर्ग की सच्चरित्रता नारी से कम नहीं है । वह सूरदास को अपना भाई मानती है तथा इसी पावन भावना से अन्त तक उसकी सेवा करती है । जब इसी सुभागी के हाथ में पैसे आ जाते हैं तो परिवार में उसकी इज्जत बढ़ जाती है । इस प्रकार सुभागी के चरित्र विकास के द्वारा प्रेमचन्द ने एक और अशिक्षित तथा निम्नवर्गीय ग्रामीण समाज के वैषम्यपूर्ण दुःखी जीवन का यथार्थपूर्ण चित्र प्रस्तुत किया है,तो दूसरी ओर उन गुणों का संकेत भी किया है, जिनके द्वारा दाम्पत्य-जीवन की वह विषमता दूर की जा सकती है । हम कह सकते हैं कि प्रेमचन्द ने सुभागी के चरित्र के द्वारा अनेक स्त्री-सम्बन्धी समस्यायें उठाई हैं तथा उन समस्याओं का चित्रण करने में लेखक पूर्ण सफल रहा है । प्रेमचन्द ने सूरदास तथा सुभागी पर हुए अत्याचार को चित्रित करने में पूर्ण सफलता पाई । सूरदास तथा सुभागी पर जो अत्याचार होता है, उसको किसी भी दृष्टि से उचित नहीं ठहराया जा सकता है ।

'गोदान' (१९३६ई०) में होरी के ऊपर सामाजिक अत्याचार को भी चित्रित किया गया है । गोबर भोला अहीर की पुत्री झुनिया से प्रेम करता है । जब झुनिया को गर्भ रह जाता है तो गोबर उसको घर पहुंचा कर लखनऊ भाग जाता है । उधर धनिया तो पहले झुनिया के घर रखने जाने पर आपत्ति

करता है, पर बाद में उसी घर में बहू समझकर रख लेता है । इस बहाने गांव के मुखियों को होरी पर अत्याचार करने का मौका मिलता है । वे उस पर दंड लगाते हैं कि उसने अपनी बहू को घर में क्यों रखा ? यह तो एक अत्याचार ही तो है कि अगर कोई अपने घर में अपनी बहू को रखता है तो उस पर क्यों दण्ड लगाया जाय ? पंच लोग उसके खेत के अनाज को ले लेते हैं । होरी कहता है, 'पंचो, मुझे अपने जवान बेटे का मुंह देखना नसीब न हो, अगर मेरे पास खलिहान के अनाज के सिवा और कोई चीज हो ।'[1] प्रेमचन्द का होरी के प्रति किए गए इस अत्याचार के प्रति दृष्टिकोण सहानुभूतिपूर्ण नहीं है । धनिया कहती है,--'पंचो गरीबों को सताकर सुख न पाओगे, इतना समझ लेना । हम तो मिट जायेंगे, कौन जाने, इस गांव में रहें या न रहें, लेकिन मेरा सराप तुमको भी जरूर से जरूर लगेगा। मुझसे इतना कड़ा जरीवाना इसलिए लिया जा रहा है, कि मैंने अपनी बहू को क्यों अपने घर में रखा । क्यों उसे घर से निकाल कर सड़क की भिखारिन नहीं बना दिया ।'[2] धनिया अत्याचारों का विरोध करती हुई कहती है,--'ये हत्यारे गांव के मुखिया हैं, गरीबों का खून चूसने वाले । सूद-ब्याज, डेढ़ी-सवाई, नजर-नजराना, घूस-घास, जैसे भी हो, गरीबों को लूटो ।'[3] अत: स्पष्ट हो जाता है कि लेखक इस अत्याचार के पक्ष में नहीं है ।

झुनिया को लेकर मुखियों द्वारा किया गया अत्याचार से किसी को सहानुभूति नहीं हो सकती है । यह तो असामाजिक वातावरण का निर्माण करता है । होरी तो बेचारा निर्दोष है । वह तो अपनी बहू को अपने घर में शरण देता है । किसी की पराई बेटी को शरण नहीं देता । अगर होरी किसी की बेटी को शरण दे देता तो पंच उसके साथ अत्याचार करते तो यह एक उचित परम्परा कही जाती, पर पंचों ने निरपराध होरी को दण्ड देकर अनुचित परम्परा की नींव डाली है ।

---

१. प्रेमचन्द : 'गोदान' (१९३६ई०), पृ०सं० ८२ ।

२. वही, पृ०सं० ८१ ।

३. वही, पृ०सं० ९८ ।

फणीश्वरनाथ 'रेणु' के 'परती: परिकथा' (१९५७ई०) उपन्यास में मलारी चमाइन के ऊपर सवर्णों के द्वारा अत्याचार को चित्रित किया गया है। मलारी चमाइन में लेखक ने पर्याप्त जागरूकता दिखाई है। वह पढ़ लिख लेती है। पर समाज के लोग उसे नौकरी नहीं करने देना चाहते हैं। महाजन कहता है--"क्यों गई थी,अररिया कोर्ट? पूछ, अपना बेटी से। किसके हुकुम से गई थी? किसके साथ गई थी, पूछ।" इसपर मलारी की माँ कहती है--"सरकारी काम से गई थी। सरकार नौकरी करती है, सरकारी हुकुम नहीं मानेगी? गाँव के लोगों का कलेजा जलता है। वे जात की बात नहीं बोलेंगे, तो कलेजा ठंडा कैसे होगा?"[1]

मलारी को लोग सर्विस करने में जो बाधा उपस्थित करते हैं, उससे लेखक सहमत नहीं है। वह विरोध प्रकट करता है। मलारी की माँ कहती है--"जात धरम की बात पीछे करना। पहले यह फैसला करो कि मलारी सरकारी नौकरी करे या नहीं? जात से फाजिल पढ़कर हमारी बेटी ने मास्टरी पास किया है। परजात वालों की छाती जलती है। तरह-तरह की बात उड़ाते हैं।"[2]

मलारी के सर्विस करने पर जो लोग बाधा डालते हैं उनको मैं समाज का शत्रु मानता हूं, उन्हें समाज का हित रक्षक नहीं मानता हूं। चूंकि हमारे यहां हरिजनों को निम्न स्तर की दृष्टि से सवर्ण लोग देखते हैं,अत: वह उनकी उन्नति देना नहीं चाहते। हरिजन तो वैसे ही पिछड़े हुए हैं। पर जो हरिजन लोग तरक्की करते हैं। उनके मार्ग में अनेक रोड़े अटकाये जाते हैं। मलारी के साथ भी यही होता है। लेखक ने हरिजन पात्र में पर्याप्त चेतना का विकास दिखाया है। प्रस्तुत उपन्यास के हरिजन पात्र में अत्याचार के विरुद्ध विद्रोह की भावना मिलती है,जो कि उचित ही है।

रामप्रसाद मिश्र के 'कहां या क्यों' (१९६०ई०) उपन्यास में भी हरिजनों के ऊपर अत्याचार को चित्रित किया गया है। 'कहां या क्यों' (१९६०ई०) उपन्यास में सवर्ण हिन्दु वर्ग के द्वारा मस्बोरा धोबी पर सामाजिक अत्याचार किया

१.फणीश्वरनाथ 'रेणु' : 'परती: परिकथा' (१९५७ई०),पृष्ठांक २०५।

२.वही, पृष्ठांक २०७।

जाता है । `कहां या क्यों' (१९६०ई०) उपन्यास में राय दिग्विजयनाथ की लड़की सुलोचना पर हेमचन्द्र नाम का दुष्ट प्रकृति का आदमी उस पर बुरी नज़र डालता है । इधर राय दिग्विजयनाथ रणंजयनाथ को दामाद बनाने के लिए कृत संकल्प थे। उधर रणंजय के पिता इसी वर्ष विवाह कर डालने के लिए आतुर थे । किन्तु वह इतना बड़ा रियासत का मूल्य समझते थे । सबसे बढ़कर रणंजय यहीं सम्बन्ध करने के लिए निश्चय किए था । दिग्विजयनाथ को उससे बढ़कर लड़का मिलना असम्भव दिखता था । अत: वह सब कुछ करने को तैयार थे । पर हेमचन्द्र उनके रास्ते में पत्थर बन गया है । अत: वे मनोहरपुर के धोबी परिवार के प्रमुख मखौरा को बुलवा भेजते हैं । मखौरा उनकी व इज्जत बचाने के लिए हेमचन्द्र का विरोध करता है, तो इस पर हेमचन्द्र मखौरा को पहले मरवाता है तथा बाद में कत्ल करवा देता है, `सहसा बाईं ओर से विस्फोटमयी ध्वनि उस वन्य प्रदेश में भरती हुई एक गोली आकर मखौरा की कनपटी के ऊपर वाले भाग में घुस गई । खून की बौछार करते हुए वह गिर पड़ा और उसी के साथ ही अचानक हेमचन्द्र भी भयाकुल धराशायी हो गया । मखौरा के मुख से दस-बारह घायल,मृतप्राय सिंह की सी दुर्बल दहाड़े निकलीं, और उसके नेत्र बन्द हो गए ।'[1]

`कहां या क्यों' (१९६०ई०) उपन्यास में हरिजनों के अत्याचार के प्रति मिश्र जी का दृष्टिकोण सहानुभूति पूर्ण नहीं है । यद्यपि उनके हरिजन पात्र में सामाजिक चेतना पाई जाती है । मखौरा, हेमचन्द्र का विरोध करते हुए अपना प्राण दे देता है । पर कहीं भी लेखक मखौरा की प्रशंसा नहीं करता है कि उसने उचित कार्य के लिए अपने प्राण दिये हैं । लेखक मखौरा के मौत पर मौन धारण कर लेता है, इससे यह सिद्ध हो जाता है कि लेखक पुरातन-वादी व्यवस्था के अनुसार हरिजनों पर अत्याचार करने का पक्षपाती है ।

`कहां या क्यों' (१९६०ई०) उपन्यास में लेखक कहीं भी सवर्णों के अत्याचार को गलत नहीं निरूपित करता है । मखौरा पर जो

---

१. रामप्रसाद मिश्र : `कहां या क्यों' ? (१९६०ई०),पृ०सं० १२९ ।

अत्याचार किया गया है, उसको जान से मार कर हेमचन्द्र ने अपनी घृणित प्रवृत्तियों का परिचय दिया है । अत्याचार करना हमें मानवतावादी दृष्टिकोण से उचित नहीं लगता है ।

मझ्बोरा का उच्चकोटि का चरित्र है । वह तो दिग्विजय नाथ के कहने पर सुलोचना बहन की इज्जत को बचाने के लिए अपने जान पर खेल जाता है । वह इस बात को नहीं सोचता कि उसका आगे क्या होगा ? अत: इससे स्पष्ट हो जाता है कि मझ्बोरा में समाज-सुधारक के भी गुण मौजूद हैं ।

मझ्बोरा धोबी तो केवल हेमचन्द्र को कुपथ से सचेष्ट कराता है, पर वह तो उसकी जान ही ले लेता है, --" मझ्बोरा का भयानक आतंक था । उसने उसी दिन ऐलान करके हेमचन्द्र की सारी पकी फसल कटवा ली । कटाई वाले गरीब किसान रोते ही रह गए । हेमचन्द्र थाने को चला मझ्बोरा ने रास्ते में ही घेर लिया । ललकारा-बूढ़े का लौंडा था । मैं मझ्बोरा हूं । हुकुम राजा साहब का है । आगे बढ़े तो जान ले लूंगा । तुम किस खेत की मूली हो तहसीलदार तजम्मुलहुसैन का मैंने भरे बाजार का कत्ल कर डाला था । तब तो कुछ हुआ ही नहीं । कौन इस पृथ्वी पर पैदा हुआ है, जो मेरे खिलाफ गवाही दे सके ? मनोहरपुर से भाग जाओ । इसी में भलाई है ।"[1] हेमचन्द्र के बिल्कुल विपरीत मझ्बोरा है । हेमचन्द्र यदि दुष्ट प्रकृति का पुरुष है तो मझ्बोरा उच्च गुण वाला आदमी है, जिसमें सामाजिकता की भावना भरी हुई है ।

हेमचन्द्र निम्न कोटि के चरित्र वाला है । एक ओर तो वह सुलोचना को बर्बाद करता है तो दूसरी तरफ राजपती को भी बर्बाद करता है । राजपती तो उसके अत्याचार से तंग आकर जहर खाकर आत्महत्या कर लेती है । हेमचन्द्र,सुलोचना से कहता है,-" विषमताओं का नाम ही जीवन है । हम तुम एक हैं, सदा रहेंगे । किन्तु विश्व में बाह्य रूप से नहीं, अन्तरतर में आंतरिक

----

१. रामप्रसाद मिश्र :"कहां या क्यों ?"(१९६०ई०),पृ०सं०७७ ।

ण्य है[१]। और दूसरी तरफ वह राजपती से शादी कर लेता है। एक दिन सुलोचना, हेमचन्द्र के घर बिना बताये चली जाती है। दराज में से झांक कर देखा, दालान में एक चटाई पर लेटा हेमचन्द्र उसी चटाई पर बैठी एक नितान्त सुन्दरी किशोरी से कह रहा है,- तो तुम प्यार करना भी जानती होगी राजू ?

सुलोचना का सिर चकरा गया, वह संज्ञाशून्य हो गई, किन्तु खड़ी-खड़ी सुनती रही। बीच-बीच में इधर-उधर देख भी लेती थी। दरार से झांक कर अन्दर का दृश्य भी देखती जाती थी। राजू ने कई बार पूछे जाने पर इस प्रश्न का उत्तर दिया-- तुम भी जानते होगे[२]।" सुलोचना भी यह देख कर तय कर लेती है कि अब कभी हेमचन्द्र से बात तक न करेगी, उसके विषय में कुछ सोचेगी भी नहीं। फिर भी हेमचन्द्र उसका पीछा नहीं छोड़ता और उससे मिलता रहता है। सुलोचना की नादानी से उसकी जिन्दगी तबाह होती है। अतः हम कह सकते हैं कि मलकौरा, सुलोचना की जिन्दगी बचाने के लिए हर संभव प्रयास करता है,पर वह असफल हो जाता है। मलकौरा नामक हरिजन पात्र को हम सहनायक कह सकते हैं,जो कि उचित भी है। मलकौरा तो हेमचन्द्र की दुष्टता के लिए दण्ड देने का दृढ़ संकल्प रखता ही है,-"चाहे प्राण चले जायं,पर हेमचन्द्र को मैं न जीने दूंगा[३]।" हेमचन्द्र इतना दुष्ट है कि वह विद्यालय के अपने सहयोगियों को मरवाता-पिटवाता है तथा साथ ही साथ मिल में हड़ताल भी कराता है। इससे मलकौरा तथा हेमचन्द्र दोनों के चरित्रों के गुण-अवगुण हमारे सामने स्पष्ट हो जाते हैं।

हेमचन्द्र को दण्ड मिलना चाहिए, पर दंड मिलता है निर्दोष पात्र मलकौरा को। क्या यह समाज में उचित है कि ऐसे व्यक्ति को सम्मानपूर्वक जीने दिया जाये जो कि दो औरतों की जिन्दगी को बर्बाद करता है ? सामाजिक दृष्टि से तो यह उचित है कि ऐसे लोगों को स्वयं समाज के ही

---

१. रामप्रसाद मिश्र : 'कहां या क्यों'(१९६०ई०),पृ०सं०७३।

२. वही, पृ०सं० ९४।

३. वही, पृ०सं० १२५।

द्वारा दण्ड दिया जाये पर चूंकि हरिजनों की स्थिति सवर्ण हिन्दुओं के मुकाबले कमजोर है, अतः इसीलिए 'कहां या क्यों ?' (१९६०ई०) में हेमचन्द्र जैसे दुष्ट व्यक्ति को दण्ड नहीं मिलता है ।

'पानी के प्राचीर' (१९६१ई०) उपन्यास में हरिजनों के ऊपर सामाजिक अत्याचार का चित्रण मिलता है । इस उपन्यास के हरिजन पात्र निरबल तेली के ऊपर सवर्णों द्वारा सामाजिक अत्याचार किया जाता है । मुखिया का लड़का महेश कहता है,-- 'हां, भाइयो, निरबल तेली का गोहरा साफ साफ उड़ा दो । सिर पर काले-काले गोहरे लादे हुए लड़के भाग रहे हैं । खबरदार कोई देखने न पाये ।'[१]

मिश्र जी तेली के ऊपर होने वाले अत्याचार के समर्थक नहीं है । वह हरिजनों के ऊपर होने वाले अत्याचारों का विरोध करते हैं । मिश्र जी चूंकि हरिजनोत्थानवादी लेखक है, अतः उन्होंने अपने हरिजन पात्रों में इतनी जागरूकता दिखाई है कि वे अपने ऊपर होने वाले अत्याचार का विरोध कर सके । निरबल तेली पात्र में भी अत्याचार के प्रतिरोध करने की क्षमता भरी हुई है । निरबल तेली कहता है,--'अरे उल्लुओं, भागते क्यों हो ? तेली-तमोली गांव में इसीलिए होते हैं । हम लोगों का यह हक होता है कि उनकी चीजें होली में डाल दें । कहता हुआ आज की बाल-मंडली का अगुवा महेश निरबल तेली पर पिल पड़ता है । कहा-सुनी हो जाती है । मुखिया का बेटा महेश निरबल तेली पर दो-तीन लाठी जमा भी देता है । निरबल का जी मसोस कर रह जाता है । मुखिया का बेटा न होता तो उसे वहां दबा कर चूरमूर कर देता, किन्तु क्या करे वह ?'[२]

निरबल तेली के ऊपर मुखिया के लड़के ने जो अत्याचार किया है, वह तर्क संगत नहीं लगता । महेश सवर्ण वर्ग का सदस्य है तथा निरबल

---

१. रामदरश मिश्र :'पानी के प्राचीर' (१९६१ई०), पृ०सं० २ ।
२. वही, पृ०सं० २ ।

तेला हरिजन वर्ग का सदस्य है । महेश का निरबल तेली को जबर्दस्ती परेशान करना इस बात को साबित कर देता है कि हरिजन लोग तो दुष्ट चरित्र के नहीं होते, पर सवर्ण लोग दुष्ट चरित्र के होते हैं । निरबल तेली का तो कोई अपराध नहीं है। महेश का उस पर अत्याचार करना सरासर अन्याय है । महेश का चित्रण एक दुष्ट व्यक्ति के रूप में हुआ है । नीरू ब्राह्मण के द्वारा भी लेखक इस घटना पर अपना आक्रोश व्यक्त करता है,--`यह हमारा अन्याय है कि हम निरबल तेली का गोहरा भी उजाड़ें और उसे मारें भी ।`[1] वह आगे भी कहता है,--`भाइयो, होली में हमें पुरानी और सड़ी गली चीजों को डालना चाहिए । होली में हम लोग अपने पुराने गम को, बैरभाव को जलाते हैं और नया जीवन शुरू करते हैं । यह उपला लोगों का जीवन है, इसे होली में डालना गुनाह है ।`[2] इस दुर्घटना का निरबल तेली पर क्या असर होता है, लेखक उसका वर्णन करते हुए कहता है,--` निरबल तेली आहत होकर घर में सरक जाता है ।`[3] सवर्ण हिन्दू लोग अपनी छोटा-सी खुशी के लिए हरिजन के घर का सत्यानाश कर देते हैं । सवर्ण लोगों को तो ऐसे दुष्कर्म करने पर दंड का विधान होना चाहिए ।

भगवती प्रसाद वाजपेयी के `कर्मपथ` (१९६७ई०)उपन्यास में धन्नी चमार की लड़की सुन्दरिया पर सामाजिक अत्याचार का चित्रित किया गया है । ठाकुर लोग किस प्रकार अपने स्वार्थ के लिए हरिजनों का शोषण करते हैं, इसका चित्रण `कर्मपथ` उपन्यास (१९६७ई०) में मिलता है । मदन ठाकुर सुन्दरिया को रात में अपने घर आने के लिए कहता है । सुन्दरिया अपने ऊपर होने वाले अत्याचार की सूचना फगुआ अहीर को देती है,--`सुन्दरिया आंख में आंसू भर कर बोली-- भैया तुम्हारे होते हुए अब गांव की लड़कियों की इज्जत यों ही लूटी जायगी ।` फगुआ बोला --` बात क्या है, साफ-साफ क्यों नहीं कहती ?` `मदन ठाकुर ने रात को बुलाया है । कहा है कि न आओगी तो

१.रामदरश मिश्र : `पानी के प्राचीर`(१९६१ई०),पृष्ठांक २ ।

२.वही, पृष्ठांक ३ ।

३.वही, पृष्ठांक ३ ।

जबरन उठा ले जायेंगे ।'

फगुआ सन्नाटे में आ गया । क्रोध के कारण उसका रक्त खौलने लगा ।

तभी सुन्दरिया फिर बोला--'जरा सोचो तो भैया, तुम्हारी मेहरारू भी तो अपने बाप के घर है । उससे कोई ऐसा कहे तो उस पर क्या बीतेगी । गांव में तुम्हारे सिवा कोई ऐसा वीर नहीं जो मदन ठाकुर से टक्कर ले सके ।'[1]

लेखक 'कर्मपथ' (१९६७ई०) उपन्यास में सुन्दरिया के प्रति जो अत्याचार हुआ है, उससे सहमत नहीं है । बाजपेई जी हरिजनों के उत्थान को चाहते हैं, इसीलिए उन्होंने मदन ठाकुर को पंचों के बीच बुलाया है तथा उस पर चमारिन के प्रति किए गए अत्याचार के दोष से विभूषित किया है, 'गांव भर के बड़े-बूढ़े और पंच जमा थे । भोलू पहलवान ने उसी समय हाथ जोड़कर प्रार्थना की कि सब लोग जमा हैं । अभी फैसला कर दें, नहीं तो एकाध की लाश यहां पड़ी दिखाई देगी । लोगों के समझ में आ गयी ।

उसी जगह पंचायत बैठ गयी और सुन्दरिया को बुलाने के लिए आदमी भेज दिया गया ।

सुन्दरिया ने आकर सब बात कह दी ।'[2]

मदन ठाकुर का धन्नो चमार की लड़की सुन्दरिया के ऊपर अत्याचार का दृष्टिकोण अनुचित है । समाज में हरिजन औरतों को बहुत ही घृणित नजर से देखा जाता है, इसी बात का चित्रण 'कर्मपथ' (१९६७ई०) उपन्यास में मिलता है । वैसे समाज के हर वर्ग में स्त्रियों की दशा गिरी हुई है । पर हरिजन औरतों की दशा तो उससे भी निम्नतर है । हरिजन औरतों को लोग केवल अपनी वासना पूर्ति का साधन मानते हैं । मदन ठाकुर ने सुन्दरिया से अपनी

---

१. भगवतीप्रसाद बाजपेयी : 'कर्मपथ' (१९६७ई०), पृ०सं०१०४ ।

२. वही, पृ०सं० १०६ ।

वासनापूर्ति चाहता है । इसीलिए तो उसे रात में अपने घर बुलाता है । सुन्दरिया अपने ऊपर होने वाले अत्याचार का विरोध करती है । इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि लेखक के हरिजन पात्र में अन्याचार के विरुद्ध विद्रोह करने की भावना है । मदन ठाकुर फतुहा के कहने पर कहता है कि --"सुन्दरिया झूठ बोलती है । वह कुछ मेरे पास रुपया मांगने को आयी थी । मैंने नहीं दिया, इसी कारण वह मुझ पर तोहमत लगा रही है ।"

मगर फतुहा पर भूत सवार था । उसने कहा--" इस तरह काम नहीं चलेगा ठाकुर साहब । सुन्दरिया के सामने यही बात कहो पड़ेगी ।"

सम्भव था कि मदन ठाकुर इसके लिए तैयार भी हो जाते क्योंकि वे समझते थे कि अपने मित्रों की गवाहियां दिलाकर वे उसे झूठा सिद्ध कर देंगे ।

परन्तु फतुहा का कहना था --"इस तरह नहीं, पहले उससे माफी मांगनी होगी और फिर कहना होगा कि वह मेरी बहन है ।"

मदन ठाकुर इसके लिए तैयार न हुए ।[1]

मदन ठाकुर का सुन्दरिया को बहन न मानना यह सिद्ध कर देता है कि उनका सुन्दरिया के प्रति उचित दृष्टि नहीं है । मदन ठाकुर का तो दृष्टिकोण हरिजनों के ऊपर अत्याचार करने का है । वे तो सुंदरिया का सामाजिक शोषण करना चाहते हैं, जो कि इस स्वतंत्र भारत में उचित नहीं मालूम होता । अंग्रेजी शासन में भले ही जमींदार लोग अत्याचार करते रहे हों पर स्वतंत्र भारत में हरिजनों के ऊपर सामाजिक अत्याचार करना तो सामाजिक अपराध करना है, जिसका हर दृष्टि से विरोध किया जाना चाहिए ।

रामदरश मिश्र के 'जल टूटता हुआ' (१९६९ई०) उपन्यास में हरिजनों के ऊपर सामाजिक अत्याचार को चित्रित किया है । बंसी

---

१. भगवतीप्रसाद वाजपेयी : 'कर्मपथ' (१९६६ई०), पृ०सं०२०५ ।

नाम का युवक, मनबोधना, जो कि धोबी का बच्चा है, पर अत्याचार करता है,–'उस दिन मास्टर ने कितना पीटा था, जब बंसा ने राह चलते समय एक बड़ा सा ईंटा लेकर मैले के ढेर पर दे मारा था और मैले के तमाम छोटे-छोटे छींटे उसके साथ चलते हुए उस धोबी के बच्चे के ऊपर फैल गये थे। धोबी के बच्चे मनबोधना ने मास्टर से सवाल दाग दिया। मास्टर बंसा से तंग आ गया था, उठा-उठाकर पटकना शुरू किया और मनबोधना के सारे कपड़े बंसा से धुलवाये, बंसा से मनबोधना को नहलवाया भी। किन्तु बंसा फिर जस का तस। शाम को छुट्टी हुई तो बंसा ने मनबोधना को खदेड़ लिया। मनबोधना भी भागने में बड़ा तेज था। भागा लोमड़ी की तरह मुड़की कटाता हुआ। बंसा दौड़ते-दौड़ते हांफ गया, मनबोधना नहीं पा सका, तो गाली देकर कहा –'अच्छा साले धोबी, जाना कल।'[1] लेखक का मनबोधना के अत्याचार के प्रति विरोधी भाव है। लेखक हरिजन पात्र में इतनी चेतना दिखाता है कि वह अत्याचार का विरोध करता है। मनबोधना मास्टर से बंसा को पिटवाकर दम लेता है। इससे स्पष्ट हो जाता है कि लेखक इस अत्याचार के प्रति विरोध प्रकट करता है।

मनबोधना के ऊपर बंसा का अत्याचार करना तो सामाजिक दृष्टि से अनुचित लगता है। बंसा तो जबर्दस्ती मनबोधना को परेशान करता है। मनबोधना भी अपने ऊपर होने वाले अत्याचार के प्रति सजग है। उसने अपना विरोध प्रकट किया है। यदि हरिजन वर्ग के लोग अत्याचार का डटकर मुकाबला करें तो कोई कारण नहीं हो कि अत्याचार खत्म न हो जाये।

प्रस्तुत उपन्यास में बलात्कार की समस्या को भी उठाया गया है। जब ब्राह्मण लोग किसी चमार की लड़की के साथ बलात्कार करते हैं तो समाज के लोग कुछ नहीं कहते, पर जब कोई चमार किसी ब्राह्मण की लड़की के ऊपर जबर्दस्ती करता है तो समाज उस पर किस प्रकार दंड देता है, इसी का चित्रण 'जल टूटता हुआ' (१९६९ई०) में मिलता है। रुक्मी चमाइन का भाई पारबती के ऊपर अत्याचार करना चाहता है तो समाज के लोग उसे मिलकर पीटते हैं। रामबहादुर हंसिया को पीटते हुए कहते हैं, –'क्यों रे साले तेरी यह हिमाकत कि बाम्हनों की लड़कियों की ओर आंख उठाये।'[2]

१,२ रामदरश मिश्र : 'जल टूटता हुआ' (१९६९ई०), पृ०सं०५१ व ३५२ क्रमशः।

पारबती मां कहता है;--" हरामखोर, सुअर-खोर मेरी इज्जत लेना चाहता था ।"[1] लेखक लिखता है;--" हंसिया लात खा रहा था, जो आता एक बार लात मारता था, लेकिन वह कुछ बोल नहीं रहा था, चुपचाप लात खाता हुआ सारा इल्जाम अपने ऊपर ओढ़ रहा था ।"[2] यह तो अत्याचार का एक पक्ष हुआ । दूसरा पक्ष यह है कि जब हरिजन स्त्री को लोग अपनी काम वासना के शांति के लिए उपयोग करते हैं तो समाज इसका विरोध नहीं करता है । लंवगी नेता जी से कहती है;--" क्यों नेता जी, आप चुप क्यों हो ? कल तक झंडा लिये घूमते रहे और वोट दिलाने के लिए लेक्चर फाड़ते रहे कि अब देश आजाद हो गया है सभी बराबर हैं, सबको खेत मिलेंगे, सबकी इज्जत बराबर होगी और आज आपका लेक्चर आपके मुंह में चला गया है? जब चमरौटी की तमाम लड़कियों पर ये बाबा लोग हाथ साफ करते हैं तो कोई परलय नहीं आती और कोई चमार बाभन की लड़की को छू दे तो परलय आ जाता है ।"[3] लंवगी कहती है," क्या हुआ अगर मेरे भाई ने एक बाभन की लड़की से भला बुरा किया ?.... चमार का खून-खून नहीं है बाभन का ही खून खून है हमारी कोई इज्जत नहीं होती क्या, बाभनों की ही इज्जत होती है ? लवंगी हरिजनों के नेता जग्गू से कहती है;--" हरिजनों के नेता, मैं तुमसे फरियाद करती हूं कि वोट लेने वाले नेताओं से जाकर कहो कि हमारा खून-खून नहीं है, हमारी इज्जत इज्जत नहीं है तो हमारा वोट क्यों है ? ये देखो जग्गू नेता , तुम्हें याद है कि जब मुझे पलसिंगार बाबा ने पकड़ कर बेइज्जत करना चाहा था तो मैं फरियाद के लिए कहां-कहां नहीं रोई, लेकिन सबने मजाक करके टाल दिया था । और तुमने भी कहा था कि जाने दो बाबा लोगों से कौन लड़े ।"[4]

लेखक लंवगी के ऊपर हुए अत्याचार से असन्तुष्ट है । वह लंवगी के ऊपर हुए अत्याचार का विरोध करता है । रामदरश मिश्र का

---

१. रामदरश मिश्र : `जल टूटता हुआ` (१९६९ई०),पृ०सं०३५२।

२. वही, पृ०सं० ३५३ ।

३. वही, पृ०सं०   ।

४. वही, पृ०सं० ३५४ ।

'जल टूटता हुआ' (१९६९ई०) में दृष्टिकोण सुधारवादी रहा है । जब हंसिया चमार के ऊपर सवर्ण हिन्दू वर्ग अत्याचार करता है तो लंवगी के चरित्र द्वारा लेखक ने अपना दृष्टिकोण हमारे सामने रखा है । लंवगी को सामाजिक अत्याचार के विरुद्ध विद्रोह करते हुए चित्रित किया गया है । लंवगी का कहना है कि क्या हमारा खून खून नहीं है, बाभनों का खून खून है । वही बात सवर्ण हिन्दू करे तो साम्य है, पर हरिजनों के लोग वे करें तो अपराध है । मैं हंसिया के कार्यों का समर्थन नहीं करता हूं, फिर भी उसने जो कार्य किया है, गलत नहीं है । इसका कारण है कि सवर्ण लोग यदि लंवगी की इज्जत लूटते हैं तो उसके भाई को अधिकार है कि वह ब्राह्मणों की बेटी भ्रष्ट कर दे । निष्कर्ष रूप से हम कह सकते हैं कि मिश्र जी का हरिजनों के प्रति दृष्टिकोण सहानुभूतिपूर्ण है ।

लंवगी के प्रति अत्याचार से मैं असंतुष्ट हूं । लंवगी की बात में सत्य की शक्ति है, उसके आंसुओं में विद्रोह है, नये जमाने की आवाज है। सचमुच यह भेद कब तक चलता रहेगा ? हंसिया की करतूत उसके संस्कारों को भी धक्के मारती है, उसके ब्राह्मण संस्कार को चमार के लड़के की यह बदतमीजी नहुत अखरती है । लेकिन लंवगी की आवाज उसके न्याय को बल देती है । न्याय ही तो है, दुष्कर्म चाहे, ब्राह्मण करे या चमार करे, क्या फर्क पड़ता है । यदि ब्राह्मण का लड़का ही क्यों सम्मानित वयस्क भी हरिजन की बेटी पर जुल्म करता है और कोई आफत नहीं आती तो हरिजन पुरुष द्वारा ब्राह्मण की लड़की पर किए गए जुल्म पर आफत क्यों आये ? जुल्म.... जुल्म भी इसे क्यों कहा जाये ? पारबती सिसक रही है । यह ब्राह्मण खून है कि स्वयं एक हरिजन बालक को अपनी काम पिपासा के लिए उत्तेजित कर सारा बोझ उसी पर थोपकर नकली ढंग से सिसकती है और दूसरी ओर यह हरिजन खून है हंसिया है जो भरी सभा में लात खा रहा है और सारा अपराध अपने ऊपर ओढ़कर पारबती के सम्मान की रक्षा कर रहा है । हंसिया जो कि भरी सभा में लात खा रहा है । हंसिया सच-झूठ कुछ भी नहीं बोलता और लंवगी एक हरी लपट की तरह ब्राह्मणों के व तमाम चेहरों

पर उड़ती हुई उन पर लिखी पष्ट अक्षरों को उभारता गरज रहा है । काम करता हुई लंबनी का हाथपकड़ लेना... बड़ा आसान है ।

लेखक चूंकि हरिजन लोगों के ऊपर अत्याचार नहीं करने देना चाहता, इसलिए वह अत्याचार का विरोध करता है । रामबहादुर कहता है;--"हरामजादो मुझे तो बदनाम करते हो है मेरे बाप को भी बदनाम करता है ।"[1] इसपर संतोष कहता है--"जाओ व बक फक मत करो और अपने बाप का बदनामी बचाने की कोशिश करो ।"[2] आज का सवर्ण हिन्दु वर्ग हरिजनों के ऊपर अत्याचार करना चाहता तो है ही, वह साथ ही साथ यह भी चाहता है कि कोई हरिजन उसके दुष्कर्मों पर प्रकाश न डालें । आज के जमाने में यह कहां संभव है कि हरिजन लोग अत्याचार का सामना न कर मूक दर्शक बनकर बैठे रहे ।

`आंख की चोरी`(१९७१ई०) में अंग्रेज रार्बट स्मिथ जैसे कुटिल आदमी के कहने पर लक्ष्मी का बाप रार्बट स्मिथ के हाथों में ही उसके आदमी को सौंप देता है । लक्ष्मी कहती है;--"जब मैंने `हां` में सर हिला दिया तो अंग्रेज बोगों ने एक बार फिर मुझे सब बातें समझाईं, और बोला--`अपने बाप को बोल देना, किसी प्रकार उस आदमी को पुलिस को न पकड़ाए, पांच हजार तो कोई रकम नहीं है, उस आदमी के द्वारा तुमको और भी अधिक रुपया मिल जायगा ।"[3] रार्बट स्मिथ बिना अपराध के उस आदमी का शोषण करता है । इस प्रकार लक्ष्मी को सताता है ।

लेखक का अत्याचार के प्रति समर्थक दृष्टिकोण नहीं है । वह नहीं चाहता कि लक्ष्मी या उसके पिता उसके आदमी पर कोई अत्याचार किया जाये । जहां कहीं उपन्यास में इन लोगों पर विपत्तियां आती हैं, लेखक सामाजिक परिस्थितियों को स्पष्ट करके हरिजनों के ऊपर किये जाने वाले अत्याचार का विरोध करता है ।

---

१. रामदरश मिश्र : `जल टूटता हुआ`(१९६९ई०),पृ०सं० ३५५ ।
२. वही, पृ०सं० ३५६ ।
३. कृष्णचन्दर : `आंख की चोरी`(१९७१ई०);पृ०सं० ८७ ।

अंग्रेज लोगों के द्वारा लक्ष्मी हरिजन तथा उसके साथियों को निरपराध दण्ड देना अवश्य सामाजिक दृष्टिकोण को विकसित करने में सहायता नहीं देता । इससे समाज में अराजकता फैलाने में सहायता मिल सकती है ।

'मैंने जेब से सिगरेट की एक डिबिया निकाल कर उसमें से एक सिगरेट निकाल कर मुंह से लटकाया, फिर दूसरी जेब में हाथ डाल कर लाइटर निकाला और उससे सिगरेट सुलगाने वाला ही था कि किसी ने मुझे जोर का धक्का दिया और मैं चट्टान से गिरकर धरती पर आ रहा । मैंने जल्दी से उठने की कोशिश की, मगर अब दो आदमी मेरे सिर पर खड़े थे और मैं अकेला था । मैंने लड़ाई जारी रखने और उन्हें परास्त करने की दो-तीन बार जबर्दस्त कोशिश की, पर धीरे-धीरे मेरी कोशिश कमजोर पड़ती गई, मेरा शरीर ढीला पड़ता गया । और मैंने ऐसा प्रकट किया जैसे मैं आक्रमणकारियों के आगे बेबस हो गया हूं ।'[१]

कृष्णचन्दर के उपन्यास 'आंख की चोरी' (१९७९)में लक्ष्मी की जिन्दगी को समाज के कुछ लोग मोल कर लेते हैं तथा उसकी जिन्दगी बर्बाद करते हैं । लेखक के हरि जन यात्रा लक्ष्मी में सामाजिक चेतना का विकास स्पष्ट देखने को मिलता है । लक्ष्मी समाज के ठेकेदारों में आकर अपने को बेचे जाने पर आक्रोश व्यक्त करती है । लक्ष्मी का आक्रोश प्रकट करना उचित ही लगता है, अनुचित नहीं । लक्ष्मी कहती है,--' इधर हमारे इलाके में रिवाज है, गरीबों और अछूतों की लड़कियां ऐसे ही बिक जाती हैं ।'

'हर कोई ?' मैंने पूछा ।

'हर कोई तो नहीं, पर कोई-कोई जो बहुत गरीब होते हैं, जैसा कि मेरा बाप है । जिसके पास जमीन नहीं होती, वे लड़की बेचकर अपनी इच्छाएं पूरी कर लेते हैं ।'

'तुम इसे ठीक समझती हो ?'

---

१. कृष्णचन्दर : 'आंख की चोरी' (१९७९१९८०), पृ०सं० ८६ ।

"नाक मर्द है तो गलत क्या है ? लगाम के बिना किसान क्या है, और मालिक के बिना औरत क्या है ?"[1]

क्या हमारे समाज में लड़कियों का बेचा जाना उचित है? यह तो समाज के ऊपर कलंक है । इसका डटकर विरोध किया जाना चाहिए । अगर इसी तरह समाज में अनैतिक कार्यों को मान्यता मिलता रहा तो समाज ध्वस्त हो जायेगा । समाज का कुछ मर्यादा होता है । उसका पालन करना प्रत्येक व्यक्ति के लिए जरूरी होता है । अगर कोई व्यक्ति समाज का मर्यादा को तोड़ता है तो उसको दण्ड देना चाहिए । चाहे वह कोई भी हो । ऐसा मेरा मत है । लड़की का दूसरे के हाथ बेचा जाना अपराधपूर्ण कार्य लगता है । लेखक भी अपना विरोध प्रकट किये बिना नहीं रहता है ।

(घ) वेश्या-समस्या

संसार के तथाकथित सभ्य देशों में भी, जहां कि नारी समानाधिकार प्राप्त कर चुकी है तथा जहां नारी को भी जीविकोपार्जन के साधन समान भाव से उपलब्ध हो चुके हैं वहां भी वेश्याओं का होना कम आश्चर्यजनक नहीं । केवल कुछ समाजवादी देश हैं, जहां इस कुत्सित व्यवसाय का उन्मूलन हो सका है । संसार के वे देश जहां कि नारी स्वतन्त्र हो चुकी है, वहां वेश्या-समस्या के मूलभूत कारण हैं-- आर्थिक विषमता, सांस्कृतिक गतिरोध, भौतिकवादी संस्कृति का विकास अथवा नैतिक मूल्यों का विघटन । इन सब का कारण यह हुआ कि वहां का व्यक्ति अधिक भोगवादी बना । वहां की नारी के सम्मुख सतीत्व-धर्म तथा पातिव्रत्य धर्म कभी आदर्श न रहा । लेकिन भारत की स्थिति इससे बिल्कुल बेहतर है तथा भिन्न है । जिस देश में युगों से नारी के लिए सतीत्व तथा पातिव्रत्य-धर्म सर्वोच्च रहे हों तथा जिस देश की आत्मा ही 'अस्मत' सतीत्व पर टिकी हो, वहां भी वेश्या व्यापार का युगों से अबाध गति से चलना कम आश्चर्यजनक नहीं । भारतीय समाज में इस कुत्सित स्वरूप के भिन्न कारण रहे हैं । अनेक सभ्य

---

१. कृष्णचन्दर : 'कांच की चोरी' (१९७१ई०),पृ०सं०७५ ।

देशों में व्यक्ति नारी का इस शारीरिक दोनता भले ही मुख्य कारण मान लिया जाये, लेकिन भारत में आर्थिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक परिस्थितियां ही प्रमुख कारण हैं ।

भारतीयसमाज में विधवा-प्रथा, दहेज-प्रथा, पर्दा-प्रथा, बहुपत्नी विवाह आदि अनेक सामाजिक कुप्रथाओं से त्रस्त निरीह नारी को जीवित रहने के लिए यही एकमात्र आर्थिक स्वावलम्बन शेष था कि वह वेश्या बनकर शरीर बेचे । उचित संरक्षण के अभाव में 'दो बूंद जल' (१९६६ई०) की नायिका रेशमा भंगिन भी वेश्या बनती है । उचित वैवाहिक चुनाव न होने पर अनेक मनोवैज्ञानिक असंगतियां भी इसके कारण हैं । रेशमा भंगिन के सामने भी आर्थिक समस्या प्रमुख है । वह यद्यपि सामाजिक अत्याचार के परिणामस्वरूप वेश्या बनना स्वीकार कर लेती है । यदि कोई नारी वेश्या का पेशा ग्रहण करती है तो इसका दोष सामाजिक अत्याचारों पर ही जाता है । समाज अपने को इस दोष से बरी नहीं रख सकता । साम्पत्तिक-अधिकारों से विहीन नारी के लिए यदि स्वावलम्बी बनना है तो इस बर्बर समाज ने केवल वेश्या-पेशा की व्यवस्था दी । संयुक्त परिवार के विघटन से जो आर्थिक सुरक्षा अबला नारियों को मिलती था वह भी न रही । समाज में एक और निर्धनता है, जिसमें शारीरिक शुद्धता संभव है ही नहीं तथा दूसरी ओर धन सम्पन्न वर्ग जो अपनी विलासिता की पूर्ति के लिए ऐसे कुत्सित व्यापार को संगठित करता है । पैतृक-प्रधान समाज, शिक्षा की उपेक्षा तथा गृहिणी की उपेक्षा तथा गृहिणी पद का सम्मान देकर उसे सदैव घर में बन्द करने से उसे बाह्य जीवन-संघर्ष एवं ज्ञान से बिल्कुल वंचित कर दिया गया, जिसका परिणाम यह हुआ कि नारी वस्तुत: अबला बन गई । घर की देहरी से निकल कर वह अपनी रक्षा करने में भी असमर्थ हो गई । दस वर्ष का बालक भी युवा नारी का संरक्षक बन सकता है । ऐसी स्थिति भारतीय समाज में ही देखने को मिलती है । सांस्कृतिक पतन की ऐसी स्थिति आई कि भारतीय समाज में वेश्या-प्रथा को संगठित करने के लिए धर्म का उपयोग तक किया

गया । दक्षिण में देवदासी - प्रथा ने धर्म का उपयोग किया तथा हिमालय की तराई में नायक समुदाय में लड़की की शादी न करके उसे वेश्या-पेशा के लिए भेजने की प्रथा इसी के परिणाम हैं । नारी का शोषण निरन्तर गति से चलने के लिए यह आवश्यक था कि वह वस्तुतः निरीह बनी रहे, इसके लिए पुरुष जाति ने नारी सौन्दर्य तथा गुण के ऐसे प्रतिमान गढ़ डाले कि वह कभी सबल न बन सके ।कोमलता, लज्जाशीलता,मृदुलता आदि ऐसे ही प्रतिमान रहे हैं,जिन्होंने भारतीय नारी को छुई-मुई पौधे की भांति निरीह बना दिया । जिस समाज तथा संस्कृति ने नारी को इतना निरीह बना दिया वहां वैयक्तिक चारित्रिक-हीनता की दुहाई देकर सब दोष वेश्याओं के सिर मढ़कर तटस्थ रहना घोर असामाजिकता है । ऐसी स्थिति में आक्रोश वेश्या पर नहीं,वरन् समाज पर होना चाहिए । आधुनिक समाजशास्त्रीय अध्ययन से भी यह निष्कर्ष निकलता है कि ६५.६ प्रतिशत वेश्यायें आर्थिक कारणों से इस घृणित पेशे में आयीं तथा २८.८ प्रतिशत सामाजिक कुप्रथाओं से पीड़ित, त्रस्त होकर और केवल ५.६ प्रतिशत मनोवैज्ञानिक तथा अन्य कारणों से । पंजाब के भूतपूर्व गवर्नर सी०पी०एन० सिंह ने भी एक बार अपने भाषण में कुछ इसी से मिलते-जुलते तथ्य पेश किए थे कि ८०प्रतिशत वेश्यायें निर्धनता के कारण तथा १५ प्रतिशत सामाजिक कुप्रथाओं के कारण और केवल ५ प्रतिशत ऐसी वेश्यायें हैं जो मनोवैज्ञानिक असंगतियों के कारण इस पेशे में आईं ।[१]

दयाशंकर मिश्र के 'छोटी बहू' (१९५८ई०) उपन्यास में सिंघाड़ी डोम की बेटी के ऊपर सामाजिक अत्याचार का चित्रण मिलता है । सिंघाड़ी का बाप चूंकि जेल में चला गया है, अतः अबला होने के नाते समाज के लोग उस पर अत्याचार करते हैं । हमारे समाज में अबलाओं की स्थिति हमेशा निम्नस्तरीय ही रही है । हमारी सामाजिक समस्यायें इतनी जटिल हैं कि जिसमें विधवाओं तथा अबलाओं को उचित न्याय नहीं मिल पाता है । सिंघाड़ी भी ऐसी लड़की है जो कि समाज के लोगों के वासना का शिकार बन जाती है ।

---

१. विद्याधर अग्निहोत्री : 'फालेन वीमेन',पृ०सं० ८ ।

सिंघाड़ी राजेन्द्र से कहती है;-- "बाबू । जो लोग हमें अछूत कहकर अपने घर में नहीं आने देते, हमें छूकर स्नान करते हैं-- जहां हमारा पैर पड़ जाता है उस जगह पर पानी छिड़क कर पवित्र कर लेते हैं-- वो यहां वहां आकर मेरे ओठों पर अपने ओठ कैसे रख देते हैं ? तब उनकी जाति क्यों नहीं बिगड़ती ।"[1]

ऐसा लगता है कि जैसे स्वयं लेखक समाज के कुत्सित कार्यों का उद्घाटन कर रहा हो । दयाशंकर मिश्र का 'छोटी बहू' उपन्यास में सिंघाड़ी के अत्याचार के प्रति सहानुभूति दृष्टिकोण है । यदि लेखक का अत्याचार के प्रति सहानुभूति दृष्टिकोण न होता तो वह सिंघाड़ी में सामाजिक अत्याचार के विरोध में पर्याप्त चेतना का विकास न दिखाता । लेखक केवल अत्याचार का ही चित्रण करता, पर लेखक ने समाज की बुराइयों को हरिजन पात्र द्वारा हमारे सामने रखकर अपनी हरिजन-उत्थान की भावना का परिचय दिया है ।

सिंघाड़ी के वेश्यावृत्ति के लिए समाज ही जिम्मेदार है । समाज के निम्न लोगों की वासना-शान्ति के लिए ही वेश्याओं का जन्म हुआ है । सिंघाड़ी कहती है कि एक तरफ हरिजन कहकर हमारा तिरस्कार किया जाता है, वही लोग मेरे ओठों पर अपने ओठ कैसे रख देते हैं ? सिंघाड़ी के इस कथन से हमारे समाज का दो रूप सामने आते हैं-- समाज का एक पक्ष तो वह है, जिसमें समाज को बहुत अच्छा कहा जाता है । वह समाज वर्ण-व्यवस्था का बड़ा पक्षपाती होता है तथा हरिजनों को अपने समाज-व्यवस्था में शामिल नहीं करता है । उनको अलग रखना चाहता है । हरिजनों से परहेज करता है, उनको रसोई में भी नहीं घुसने देता । सिंघाड़ी यह बात जानती है तभी तो वह राजेन्द्र से कहती है;--'डोम की लड़की को अपने चौके में झांकने भी देगा कोई।'[2]

---

१. दयाशंकर मिश्र : 'छोटी बहू',(१९५८ई०),पृ०सं० ७५ ।

२. वही, पृ०सं० ७६ ।

समाज का यह उज्ज्वल रूप है । दूसरी ओर लेखक ने समाज की नग्न कामांधता को उभारते हुए उसके कुत्सित रूप का भी चित्रण किया है । जो लोग हरिजन को अपने आंगन में घुसने नहीं देना चाहते तो वहां कैसे हरिजन स्त्री के साथ भोग-विलास करते हैं । यह कोई झूठी बात नहीं है,वरन् एक सच्चाई लेखक ने हमारे सामने रखी है,जिसको चित्रित करने का साहस बहुत कम लेखक कर पाते हैं । प्रेमचन्द के उपन्यास की वेश्यायें भी इस तरह नहीं चित्रित की गई है ।

`मनुष्यानन्द`(१९३५ई०) उपन्यास में जिस प्रकार राधा हरिजन पात्र पर घनश्याम सवर्ण पात्र द्वारा बलात्कार का चित्रण हुआ है, उसी प्रकार `छोटी बहू`(१९५८ई०) उपन्यास में सिधारी पात्र पर किसी एक व्यक्ति द्वारा नहीं वरन् समाज के सभी लोगों के द्वारा बलात्कार किया जाता है ,जो उचित नहीं कहा जा सकता । अगर इस बात का समर्थन कर दिया जाय तो समाज का ढांचा चरमरा कर टूट पड़ेगा ।

(५) शिक्षा

हरिजनों के साथ शिक्षा में भी भेदभाव का व्यवहार किया गया । जिस तरह अन्य क्षेत्रों में उनकी उपेक्षा की गई थी उसी प्रकार शिक्षा के क्षेत्र में भी उनके प्रति उदासीनता का व्यवहार किया गया । वास्तव में इन हरिजनों की शिक्षा की समस्या प्रमुख थी,उनके लिए कोई व्यवस्था भी न थी । `कायाकल्प`(१९२८ई०) उपन्यास में उनकी अशिक्षा पर प्रकाश डाला गया है । `कर्मभूमि` (१९३२ई०) उपन्यास में अमरकान्त एक बालक से पूछता है कि कहां पढ़ने जाते हो, तो वह उत्तर देता है,--`कहां जायं, हमें कौन पढ़ाए ? मदरसे में कोई जाने तो देता नहीं, एक दिन दादा हम लोगों को लेकर गये थे । पंडित जी ने नाम लिख लिया, पर हमें सबसे अलग बैठाते थे[१] । सब लड़के हमें चमार-चमार कहकर चिढ़ाते थे । दादा ने नाम कटा दिया । अब

---

१. प्रेमचन्द : `कर्मभूमि`(१९३२ई०),पृ०सं०१५० ।

उपन्यासकारों ने इस सामाजिक समस्या को जिस गहनता के साथ प्रस्तुत किया, उसी का परिणाम है कि आज हरिजनों को समाज में प्रत्येक अधिकार तथा सुविधाएं प्राप्त हैं। आज उनमें राजनीतिक चेतना भी है जागरूकता भी।

'मनुष्यानन्द' (१९३५ ई०) उपन्यास में भी जब बुधुआ भंगी के नेतृत्व में अछूतोद्धार आन्दोलन चलता है तब दलित विद्यालय का निर्माण होता है और हस्तकौशल की शिक्षा की व्यवस्था की जाती है। यह उस नवजागरण की चेतना का ही परिणाम है, जो उस युग की देन है।

बैजनाथ केडिया के 'छूत-अछूत' (१९३८ ई०) उपन्यास में मोचों के ऊपर सामाजिक अत्याचार का चित्रण किया गया है। उच्च कहे जाने वाले वर्ग या ब्राह्मण वर्ग किस प्रकार हरिजनों को मूर्ख समझते हैं, इसका चित्रण लेखक ने किया है;--' ब्राह्मण महाराज पढ़े-लिखे न होने पर भी इन गंवारों को संतोष कराने लायक विद्या खूब जानते थे।'[1]

हरिजनों की तो हमारे समाज में बहुत उपयोगिता है। हरिजन तो दूसरे के घर का कूड़ा करकट (गंदगी) को दूर करते हैं। वे अपने घर को भी साफ-सुथरे रखते हैं, पर पता नहीं फिर भी समाज में लोग उन्हें बुरा पसंद नहीं करते। इस सामाजिक अत्याचार को 'छूत अछूत' (१९३८ ई०) उपन्यास में दर्शाया गया है। सुमेरन चमार का नाती घसीटू स्कूल में नाम लिखवाने के लिए जाता है तो मास्टर यह कहकर कि यह डोम-चमारों की पाठशाला नहीं है उसको लेने से इन्कार कर देता है। दुखिया ने उत्तर दिया, महाराजा मैं सुमेरन चमार की लड़की हूं, यह उनका नाती है।

पंडित जी ने कुछ कड़े होकर कहा -- यह डोम-चमारों के पढ़ाने की पाठशाला नहीं है। ऊंची जाति के बालक ही यहां पढ़ा करते हैं।'[2]

---

१. बैजनाथ केडिया : 'छूत-अछूत' (१९३८ ई०), पृ०सं० २।

२. वही, पृ०सं० ८।

लेखक का हरिजनों के अत्याचार के प्रति सहानुभूति है। वह हरिजन पात्र के उत्थान के लिए कार्यशील है । वह हरिजनों का पतन नहीं चाहता । वह हरिजन पात्र में अत्याचार के विरुद्ध चेतना विकसित दिखाता है कि उसके हरिजन पात्र अत्याचार को स्वीकार न कर उसका विरोध करने लगते हैं । सुमिरन चमार का लड़का सुखिया जोरदार ढंग से इस अत्याचार का विरोध करता है । सनातनधर्मी पंडित भी वहां अपने शास्त्रीय ज्ञान को छोड़ने वाले हैं । पंडित बिगड़ता है,--"बहुत शास्त्र बघारने की आवश्यकता नहीं है । हमारा हुक्म हम इस बालक को नहीं पढ़ाते (हाथ से दरवाजा दिखाते हुए बोले) बस अब बहुत हो चुका,तुम सीधी तरह से यहां से चला जाओ ।"[1]

पंडित जी घसीटू मोची को पढ़ाने से इन्कार करना हमें उचित नहीं प्रतीत होता है । इस अत्याचार से मैं असहमत हूं । भगवान् ने सभी को एक समान बनाकर भेजा है तो फिर इस दुनिया में ऊंच-नीच का भेदभाव कैसा ? ऐसा लगता है कि उच्च वर्ग यानी ब्राह्मण वर्ग ने अपनी श्रेष्ठता बनाये रखने के लिये वर्ण-व्यवस्था का सूत्रपात कर उसमें हरिजनों को निम्न स्थान दिया ताकि ये लोग कभी सर न उठा सकें । दयानंद(जो कि आर्य समाज के प्रवर्तक थे) ने इस वर्ण-व्यवस्था का विरोध करते हुए वर्ण जन्मना की जगह वर्ण-कर्मणा के सिद्धांत का प्रतिपादन किया । यह उचित भी है । जन्म से किसी को नीच मानना सामाजिक दृष्टि से अपराध के समान है । कर्म से ही मनुष्य महान बनता है ।

सच्चिदानन्द हीरानंद वात्स्यायन 'अज्ञेय' के 'शेखर : एक जीवनी' (१९४०ई०) उपन्यास में हरिजनों के शोषण को चित्रित किया गया है । सदाशिव,राघवन, देवदास हरिजन है और समाज उनके साथ अन्य लोगों के जैसा व्यवहार नहीं करते हैं । लेखक ने शेखर का चारित्रिक उत्कर्ष दिखाने के लिए

१- बैजनाथ केडिया : 'छूत-अछूत' (१९३८ई०),पृष्ठांक ८ ।

हरिजन-समस्या का चित्रण किया है, लेकिन वैचारिक प्रगति की दृष्टि से यह महत्त्वपूर्ण है। विद्रोही शेखर ब्राह्मण छात्रों का छात्रावास छोड़कर हरिजन छात्रों की सहायता से रहने लगता है।[1] शेखर, सदाशिव, राघवन आदि हरिजन छात्रों की सहायता से अछूतोद्धार समिति का निर्माण करता है तथा हरिजन बालकों के लिए स्कूल खोलकर पढ़ाता है। सवर्ण हिन्दू वर्ग हरिजनों को पढ़ाने के लिए कमरा नहीं देते हैं। बाद में जोर डालने पर इस शर्त पर कमरा दे देते हैं कि वह दरबान को तीन रुपया मासिक दिया करे ताकि मेहतर सब गन्दगी बाहर फेंक दे तथा हरिजन छात्रों की छूत, स्कूल के साधारण विद्यार्थियों को न लगे, "मिडिल स्कूल के हिन्दू-संरक्षकों ने उसे इमारत के दो कमरों में अछूत क्लास बिठाने की अनुमति इस शर्त पर दे दी थी कि वह दरबान को तीन रुपये मासिक दिया करे-- सवेरे उठकर उन कमरों को विशेष रूप से झाड़-बुहार कर और अप पानी छिड़ककर साफ कर देने के लिए,[2] ताकि गंदे बालकों की छूत स स्कूल के साधारण विद्यार्थियों को न लग जाय।"

लेखक का इस शोषण के प्रति विरोधी भाव है। वह यह नहीं चाहता कि हरिजनों का समाज में शोषण किया जाये। वह उनका उत्थान चाहता है। हरिजनों के उत्थान के लिए लेखक स्वयं नायक के द्वारा हरिजनों के लिए एंटोगोनिम क्लब खुलवाता है। यह प्रयत्न लेखक के हरिजनोत्थान की दिशा को निर्देशित करता है। लेखक तो हरिजनों से प्रभावित होने के कारण नायक शेखर को ब्राह्मण छात्रावास छुड़ाकर हरिजन छात्रावास में ले जाता है। यही नहीं शेखर पर लेखक ने इतना प्रभाव दिखलाया है कि वह हरिजनों की सहायता करने में किसी से कम नहीं है, "ट्रेन में उसने अखबार में पढ़ा कि लाश की जांच के बाद यह घोषणा की गई थी कि 'मृत्यु किसी भोंतर औजार की

---

१. 'अज्ञेय' : 'शेखर : एक जीवनी' (१९४०ई०), पृ०सं० २९५।

२. वही, पृ०सं० २९५।

की चोट से हुई है, हत्या के कारण का पता नहीं लग सका है ।' लेकिन साथ साथ ही यह भी समाचार था कि शरीर एक 'वर्जित' सड़क पर पाया गया था और वह अछूत था...
शेखर को याद आया कि किस प्रकार उस स्त्री के रक्त और घाव से उसका शरीर उसके वस्त्र सन गए थे और एक कंपकंपी उसके अंगों में दौड़ गई..... वह थी अछूत और वह था । ब्राह्मण और वह उसके रक्त में सन गया था... और उसके हत्यारे थे ब्राह्मण, जिन्होंने उसके पास आने की छूत से बचने के लिए, स्वयं उसके पास जाकर पत्थरों से मारा होगा .... ब्राह्मण.... वही ब्राह्मण जो शेखर है ..... और अछूत,... वही अछूत जिसे शेखर ने कंधे पर लादा था... और उसका रक्त ....।[1]

हरिजनों के ऊपर जो अत्याचार हिन्दू वर्ग के संरक्षक वर्ग करते हैं, उससे मैं सहमत नहीं हूं । क्या कारण है कि रूढ़िवादी हिन्दू वर्ग हरिजन छात्रों के साथ दुर्व्यवहार करता है ? यदि शेखर कमरों में हरिजन छात्रों को पढ़ाता है तो वह फिर रुपये क्यों दे कि सफाई हो जाये और हरिजन छात्रों के छूत साफ हो जाये । जैसे हरिजन छात्र है, वैसे अन्यवर्ग के लड़के भी उसी समान है तो फिर दोनों में मतभेद कैसा ? हरिजन छात्र अपने साथ छूत लेकर पढ़ने आते हैं ? क्या सवर्ण हिन्दू वर्ग के छात्र छूतहीन होते हैं ? अत: ये प्रश्न गलत है कि दोनों को अलग-अलग पढ़ाया जाय । अब इस दिशा में सुधार भी हुआ है । भारत के स्वतंत्रता के बाद सभी जगह हरिजन तथा सवर्ण वर्ग के छात्र मिलकर पढ़ते हैं, जो उचित भी लगता है ।

'परती : परिकथा' (१९५७ई०) उपन्यास में हरिजनों की शिक्षा- समस्या को चित्रित किया गया है । मलारी कमाइन पढ़कर मास्टरनी बन जाती है । शिक्षित हो होने के कारण वह अपने बाप महीचन रैदास को गांजा पीने से मना करती है :--

----

१. 'अज्ञेय' : 'शेखर : एक जीवनी' (१९४०ई०),पृष्ठ० २१० ।

" भय्या । गाँजा-दारू पीकर रोज मारपीट[1] करते हो ।
-- तू चुप रह । बड़ी मास्टरनी बनी है ।"

हरिजन वर्ग में पढ़ाई के प्रति तो किसी का दिलचस्पी नहीं होती । अगर कोई पढ़ना चाहता भी है तो पारिवारिक,एवं सामाजिक स्थिति कठिनाई डालती है । इसी कारण मलारी चमाइन के मार्ग में बाधा आती है, पर वह पढ़ती जाती है । `परती : परिकथा` (१९५७ई०) में मलारी का चरित्र एक समाज-सुधारक के रूप में मिलता है । यह पहला उपन्यास है कि जिसमें हरिजन पात्र के द्वारा ही हरिजनों में व्याप्त कुसंगतियों का विरोध किया है,जो निश्चय ही प्रशंसाजनक है । अगर हरिजन स्त्रियाँ मलारी जैसी हो जायें तो हरिजन समाज की कुरीतियाँ दूर हो सकती हैं तथा वे भी अन्य वर्गों के मुकाबले में ठहर सकते हैं ।

`सीधा रास्ता` (१९५८ई०) उपन्यास में हरिजनों की शिक्षा- समस्या पर भी चित्रण मिलता है । राम सिंह चमार, विद्यासागर चुलाई से कहता है-" इस सब के बीच में इतना पढ़-लिखकर क्या रखोगे भइया । कहीं काम-काज[2] से लगो । गांव में क्या रखा है ? ठीक से दो टैम रोटी भी नहीं मिलती ।" रामसिंह चमारों का प्रतिनिधित्व करता है-"आज संध्या को विद्यासागर चमारों की मंडइया में जा पहुंचा[3] । रामसिंह चमार की झोपड़ी पर भीड़ देखकर वह उस तरफ घूम गया ।" ~~रामसिंह चमारों का प्रतिनिधित्व करता है--"आज संध्या को विद्यासागर चमारों की मंडइया में जा पहुंचा । रामसिंह चमार की झोपड़ी पर भीड़ देखकर वह उस तरफ घूम गया ।"~~ हरिजनों में शिक्षा के प्रति रूचि नहीं होती, यह बात रामसिंह के चरित्र से स्पष्ट हो जाता है । शिक्षित न होने के कारण ही समाज में उनकी स्थितियाँ निम्न बनी हुई हैं ।

१·फणीश्वरनाथ रेणु : `परती : परिकथा` (१९५७ई०),पृ०सं०१३७ ।
२·यज्ञदत्त शर्मा : `सीधारास्ता` (१९५८ई०),पृ०सं०६ ।
~~३ वहीं, पृ०सं० ८ ।~~

डा० सुरेश सिन्हा का कीर्ति को अक्षुण्ण रखने वाला 'सुबह अंधेरे पथ पर' (१९६७ई०) उपन्यास एक सामाजिक उपन्यास है । इस उपन्यास में भी हरिजनों को निम्नकोटि घृणित पात्र के रूप में चित्रित किया गया है । समाज में हरिजनों के साथ सवर्ण हिन्दू का कैसा मनोभाव रहता है, यह भी 'सुबह अंधेरे पथ पर' (१९६७ई०) उपन्यास से स्पष्ट हो जाता है, 'लोहारों ने काम खत्म कर दिया था, पर उनकी भट्टियां अभी भी धधक रही थीं । अपनी-अपनी नाई पर उन्होंने मोमबत्तियां जलाकर रख दी थीं, जो भरे हुए धुएं में सितारों की तेज चमकती आंखों की भांति लग रही थीं । रोज की तरह रामविलास लोहार रामायण पढ़ रहा था और बहुत से लोहार चारों तरफ बैठे सुन रहे थे ।'[1] लेखक आगे उनकी परिस्थिति पर प्रकाश डालते हुए लिखता है,-- 'कुछ ही दूर ग्राण्ट ट्रंक रोड पर बने कुसमबाग के फाटक के पास कुन्नीलाल तीन चार लड़कों के साथ बैठा, फिल्मी गाने ताल ठोंक-ठोंक कर और चुटकियां बजा-बजाकर गा रहा था । वहां से गुजरते हुए पिता जी बोले,-- 'ये लोग बहुत गन्दे हैं, इनसे कभी मत बोला करो । न पढ़ना, न लिखना, बस दिन-रात आवारागर्दी .....[2] ।'

लेखक की हरिजन पात्र के प्रति कोई सहानुभूति नहीं पाई जाती है । वह हरिजन पक्ष का यथार्थ चित्रण कर देता है । उनमें जो बुराइयां हैं, सिन्हा जी ने उन्हें दर्शाया है । सिन्हा जी ने उपन्यास में हरिजनोत्थान की भावना से कार्य नहीं किया है ।

प्रश्न उठता है कि सनातन परम्परा से प्रभावित होकर किसी वर्ग के बारे में कोई गलत धारणा बनाना उचित कहा जा सकता है । यह बात ठीक है कि हरिजन लोग ज्यादातर निरक्षर होते हैं । उनकी बातें ठीक

---

१. डा० सुरेश सिन्हा : 'सुबह अंधेरे पथ पर' (१९६७ई०), पृष्ठांक ११ ।

२. वही, पृष्ठांक ११ ।

नहीं होतीं । पर सब हरिजन तो एक समान नहीं हो सकते । मनुष्य के हाथ की भी तो पांचों उंगलियां एक समान नहीं होतीं । अगर हरिजन लोग निरक्षर हैं तो भी उनके साथ नीचता का व्यवहार की बात सोचना मुझे हैरान लगता है। मैं एक सवाल सवर्ण हिन्दू वर्ग से करना चाहता हूं कि क्या उनके वर्ग में सभी साक्षर होते हैं कोई निरक्षर नहीं होता ? सवर्ण हिन्दू वर्ग में भी कुछ लोग निम्न प्रवृत्ति के होते हैं, पर हरिजन वर्ग के लोगों के द्वारा वे सताये तो नहीं जाते । आखिरकार हरिजन बेचारा, जिन्हें महात्मा गांधी ने `हरिजन का जन` कहा है, क्यों समाज में पीड़ित किया जाता है? किसी भी हरिजन को सताना समाज के लिए उचित नहीं है । होना तो यह चाहिए कि हरिजन वर्ग को लोग सहायता दें,सहानुभूति दें, तभी तो यह वर्ग भी उच्च समाज की रचना में अपना योगदान दे सकता है, अन्यथा नहीं ।

(ख) छुआछूत की भावना

प्राचीनकाल से ही भारतवर्ष के इतिहास में हरिजनों के साथ छुआछूत की भावना चली आ रही है । हरिजनों की समस्या तो एक मानवीय समस्या है । हरिजन लोग भी अन्य व्यक्ति की तरह होते हैं,फिर उन्हें हम क्यों उनके साथ भेद-भाव का बर्ताव करें , हरिजनों का कोई सम्मानित स्थान समाज में नहीं था । सवर्ण लोग उनकी परछाइयों से बचते थे और उनसे घृणा करते थे । यही छुआछूत की भावना उपन्यासों में प्रतिबिम्बित हुई है ।

गोविन्दबल्लभ पन्त के `जलसमाधि` (१९५५ई०)उपन्यास में बिसुना व डोली का लड़का सिरीराम का सामाजिक शोषण चित्रित किया गया है,` सिरीराम गांव के बिसुवा डोली का लड़का है ।`[1] उच्चवर्ण के व्यक्तियों से हरिजनों के साथ निम्नकोटि का व्यवहार करते हैं । वे उनकी छाया

----

१. गोविन्दबल्लभ पन्त : `जल समाधि`(१९५५ई०),पृ०सं० ३२ ।

तक से बचते हैं । इस उपन्यास में भी [illegible] का चित्रण मिलता है । सिरीराम जानता है कि थोड़ी-सी गलती करने पर उसे प्राणदण्ड भी मिल सकता है, अत: वह उच्च श्रेणी के लोगों की छाया बचाकर चलता है । लेखक लिखता है,--'सिरुवा शिल्पी और कलाकार भाग्य से वह अछूत के घर पैदा होने वाला, कुल उत्तराधिकार में प्राप्त की उसे । समाज का उच्च श्रेणी के लोगों की छाया बचाकर चलने का वादा था । वह और उसका कोई कांटा भी नहीं था, उसके मन० में । दूर से ही किसी को आते हुए देखकर वह एक स्वभाव सिद्ध प्रेरणा से मार्ग के एक ओर अपनी काया और छाया समेट कर हाथ जोड़ कहता--'सेवा मालिक जी ।' 'जीवित रहो सिरुवा ।' -- यह आशीर्वाद मिलता था। कैसे पर कैसे जीवित रहता था वह, यह केवल वही जानता ।'[1]

लेखक हरिजनों के ऊपर अत्याचार का विरोध करता है । वह हरिजनों के शोषण के विरुद्ध है । लेखक आर्य समाज से प्रभावित है । वह सिरीराम पर भी आर्य समाज का प्रभाव दिखाता है,--'लेकिन सिरीराम ने सदियों की यह गुलामी तोड़कर फेंक दी । उसने स्थानीय आर्य समाज में जाकर अपनी शुद्धि करा ली । स्नान करने लगा, जनेऊ पहन ली और ईमानदारी के व्यवहार से उन्नति करने लगा ।'[2]

सिरीराम डोली के ऊपर शोषण के द्वारा लेखक ने प्रकारान्तर से यह उद्घाटित करने की चेष्टा की है कि इसी तरह हरिजनों पर अत्याचार व शोषण किया जाता है । सिरीराम का चरित्र निष्कलंक है, इसीलिए वह सवर्णों की छाया से बचता है। सिरीराम सवर्णों के अत्याचारों से त्रस्त है । वह जानता है कि उसे बेबात पर कड़ा दण्ड दिया जा सकता है । हरिजनों के

१.गोविन्दवल्लभ पंत :'[illegible]'(१९५५ई०),पृ०सं०३२ ।

२.वही, पृ०सं० ३२ ।

साथ अत्याचार करना तो सवर्णों के दिमाग का दिवालियापन ही जाहिर है।

भगवतीचरण वर्मा के 'अपने खिलौने' (१९५७ई०) उपन्यास में हरिजनों के ऊपर सामाजिक अत्याचार का चित्रण मिलता है।[1] कृष्णन् नामक पात्र कहता है,--' मैं ब्राह्मण हूं मिसेज भारती, चमार नहीं हूं।' इस उपन्यास में भारती परिवारों का कुछ अंश कहा गया है। जयदेव भारती चूंकि चमार है, इसलिए कृष्णन नामक ब्राह्मण पात्र उनको अपने से नीचा समझता है, जिसके द्वारा भारती के साथ भी भेदभाव को 'अपने खिलौने' (१९५७ई०) उपन्यास में चित्रित किया गया है,--' आपको जूतों में कोई रुचि नहीं मालूम होती कृष्णन् साहब।'

कृष्णन् ने उत्तर दिया --' मैं ब्राह्मण हूं मिसेज भारती, चमार नहीं[2] हूं। हमारे कुल में आज तक किसी ने जूता नहीं पहना। यह तो स्पष्ट होता है।'

हरिजनों के साथ भेद-भाव का जो रूप हमारे समाज में प्राप्त होता है, उसी को लेखक ने यहां साकार रूप प्रदान किया है। लेखक इस अत्याचारपूर्ण भेद-भाव के विरुद्ध है। वह नहीं चाहता कि सवर्ण लोग हरिजनों को परेशान करें। वह विरोध प्रकट करता है,--'जयदेव भारती को अब अपनी गलती का पता चला। उन्होंने कहा--'अरे कृष्णन् , मैं भूल ही गया था कि तुम ब्राह्मण हो। माफ करना, जो मैंने तुम्हें जूता छुआ दिया[3]। वैसे तुम जूता पहने हुए हो, इसलिए तुम्हें कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए।'

हरिजनों के साथ जो भेद-भाव किया जाता है, वह आज के सभ्य समाज में अनुचित लगता है या इसको हम यों कह भी सकते हैं कि अब तो कानून के द्वारा भेद-भाव का अन्त कर दिया गया है, अतः भेदभाव का सभ्य समाज के बीच कोई स्थान नहीं है। अगर भारती ने उनकी गोद में जूता रख दिया तो

---

१. भगवतीचरण वर्मा : 'अपने खिलौने' (१९५७ई०), पृष्ठांक ९७।

२. वही, पृष्ठांक ९७।

३. वही, पृष्ठांक ९७।

कृष्णानु को गाली देने की क्या आवश्यकता थी ? कृष्णानु का विरोध करना इस बात का परिचायक है कि सवर्ण हिन्दुओं के मन में अभी भी घृणा के भाव विद्यमान हैं । लेखक व्यंग्य करता है,--' जयदेव का इन क्षमा याचना से कृष्णानु और भी कठोर हो गया, पिघलना तो दूर रहा--' हां जूता मैं पहने हूं, लेकिन मैं पैर में पहने हूं और इसे नौकर ने पहना दिया था, मैंने अपने हाथ से इसे नहीं छुआ, तुमने तो जूता मेरी गोद में रख दिया । मुझे स्नान करना पड़ेगा ।'[१] आज का ब्राह्मण वर्ग तो समाज में दिखाने के लिए बहुत-सा कार्य करता है । पर यदि उनके जीवन का यथार्थ चित्रण किया जाय तो बहुत सी इसमें असंगतियां दिखाई देंगी । मेरा तो स्पष्ट मत है कि कोई भी व्यक्ति जन्म से नीच नहीं होता है । कर्म ही उसे ऊंच तथा नीच बनाते हैं । यहां पर मैं कृष्णानु को दुष्कर्मों के कारण चमार तथा भारती को ब्राह्मण वर्ग का मानता हूं । मान लिया कि भारती से गलती हो गई तो वह क्षमा मांग लेता है । किसी भी व्यक्ति को माफी मांगने पर क्षमा मिल जाती है । पर कृष्णानु जैसा नीच प्राणी उसको माफ़ नहीं करता है । सवर्ण लोगों को अब भी जागरूक हो जाना चाहिए । अब पुराना जमाना नहीं रहा । अब तो सब लोग के समान हरिजन वर्ग भी बढ़ रहा है ।

चतुरसेन शास्त्री ने 'बगुला के पंख' (१९५६ई०) उपन्यास के द्वारा यह दिखाने की चेष्टा की है कि किस प्रकार छुआछूत हमारे देश को चौपट कर रहा है । हमारे समाज में आज छुआछूत का इतना प्रचार है कि सवर्ण हिन्दु वर्ग भी अनेक खेमों में बंटे हैं तथा यही नहीं, प्रत्येक जाति कई उपजाति में बंटा है जिनमें आपस में विवाह-सम्बन्ध नहीं हो सकते ।

सामाजिक दुरवस्था के कारण ही जुगनु के साथ भेद-भाव का बर्ताव होता है,--' वह इस बात को लगभग भूल ही चुका था कि वह जन्मजात

----

१. भगवतीचरण वर्मा : 'अपने खिलौने' (१९५७ई०), पृ०सं०३७ ।

भंगी है । साहब के बैरा-खानसामे को अधिकतर ईसाई-मुसलमान थे, जिस तरह उसकी जाति के सम्बन्ध में जान गये थे । वे उसे घृणा करते और उसे तुच्छ समझते थे ।'[1]

जब प्रथम-खण्ड में मेम साहब की मृत्यु हो जाती है तो मुंशी जुगनू को बर्खास्त करना तो उसके ऊपर अत्याचार करना है । और लोगों को तो नहीं बर्खास्त किया गया तो फिर जुगनू के साथ ऐसा कड़ा व्यवहार क्यों किया गया ? शायद हरिजन होने के नाते उसपर यह अत्याचार किया गया हो । भारतीय समाज में दोष किसी का भी हो, पर उसका सारा दण्ड हरिजनों को ही भुगतना पड़ता है । हरिजनों का समाज में हमेशा से उत्पीड़न हुआ है, उसी भावना के कारण जुगनू पर भी अत्याचार किया गया है । अगर जुगनू के साथ और भी नौकर बर्खास्त किये जाते तो ये कहने का प्रश्न ही न उठता कि जुगनू भंगी के ऊपर अत्याचार किया गया है । लेखक अछूतोद्धार करने वाले कांग्रेसियों के ऊपर व्यंग्य कसता है,--'नामवर भंगी के लिए तो अब केवल भंगी के काम को छोड़कर दूसरा काम ही न था । वे अछूतोद्धार करने वाले कांग्रेसी न उन्हें छू सकते थे, न उनका छुआ खा सकते थे । केवल उन्हें हरिजन का खिताब देकर उनके प्रति अपनी सब जिम्मेदारी से पाक साफ हो गए थे ।'[2] लेखक का दृष्टिकोण गलत नहीं है । आज जब सर पर चुनाव आते हैं तो नेता लोग आश्वासन देने लगते हैं, पर जब चुनाव का समय बीत जाता है, तो उनपर कोई असर नहीं पड़ता, चाहे हरिजनों के ऊपर कितना ही कोई अत्याचार कर रहा हो । जुगनू भंगी, हरिजनों के ऊपर होने वाले अत्याचारों का विरोध करता हुआ कहता है,--'शहर की सफाई का दारोमदार किन पर है ? उनपर जिन्हें आप भंगी और मेहतर कहते हैं, जिनकी बहू बेटियां और के लड़के ही उठकर मैले के टोकरे सिरों पर लादे आपके घरों को

१· चतुरसेन शास्त्री : `बगुला के पंख` (१९५९ई०), पृ०सं० ७ ।

२· वही, पृ०सं० ६ ।

सफाई करता है । उन्हें पीढ़ियों से आपके ये नरक ढोने पड़े हैं और आपने कभी उनको और हमदर्दी की नज़र से नहीं देखा । कभी आपने उन्हें अपना साथी, न नागरिक नहीं समझा । कभी आपने इन्सान नहीं समझा, मानवीय सब अधिकारों से वे वंचित हैं । हिन्दू समाज का वह गला-सड़ा अंग है । महात्मा गांधी ने उन्हें हिन्दुओं में मिलाए रखने के लिए जान की बाज़ी लगा दी थी । मैं यह जानना चाहता हूं कि आपने उनके लिए क्या किया है ?'[1] आगे जुगनू कहता है,--' मैं यह पूछना चाहता हूं कि आप अब उनके लिए क्या करना चाहते हैं ? वे अब हमारे समाज से पृथक् गन्दे सुअरों की भांति नहीं रह सकते । हमें उनकी तनख्वाहें बढ़ानी होंगी । उनके लिए अच्छे हवादार मकान, रोगी होने पर चिकित्सा और दूसरी सब सुविधाएं देनी होंगी । महात्मा गांधी ने उन्हें हरिजन कहा है । हरिजनों को प्रेम से गले लगाना भगवान को प्रसन्न करना है ।'[2]

जुगनू के इस कथन से हरिजनों का निम्नस्तरीय सामाजिक स्थिति का विश्लेषण हो जाता है । इससे यह भी स्पष्ट हो जाता है कि समाज उन पर कैसा अत्याचार करता है । लेखक का हरिजनों के प्रति दृष्टिकोण सहानुभूतिपूर्ण है । लेखक हरिजनों के ऊपर अत्याचार होने देने के पक्ष में नहीं है । जुगनू भंगी में शास्त्री जी ने इसीलिए पर्याप्त सामाजिक चेतना का विकास दिखाया है । शास्त्री जी हरिजनों के उत्थान की ओर ध्यान दिया है । जुगनू भंगी के द्वारा हरिजनों के ऊपर होने वाले अत्याचार के विरुद्ध लेखक ने अपनी मनोभावना प्रकट की है । जुगनू भंगी का कहना ठीक ही है कि हमारा समाज उन्हें इंसान नहीं समझता है । समाज ने हरिजनों को मानव अधिकारों से वंचित कर दिया है । आज भी समाज में थोड़ी सी गलती करने के लिए पर्याप्त दण्ड दिया जाता है । वे हिन्दू समाज के सड़े गले अंग के समान हैं । यदि ऐसा

---

१. चतुरसेन शास्त्री : 'बगुला के पंख' (१९५६ई०X,पृ०सं०८३ ।

२. वही, पृ०सं० ८४ ।

न होता तो समाज उन्हें क्यों अस्पृश्य की कोटि में रखता ?

सुरेश सिनहा के `पत्थरों का शहर`(१९७१ई०) उपन्यास में हरिजन वर्ग के शोषण की ओर अवश्य ही संकेत किया गया है और उनके राजनीतिक दुरुपयोग को भी स्पष्ट किया गया है,--` डा० अम्बेदकर आपके लिए जिए और मरे । उन्होंने देश में कानून बनाया । पुवा हमारी सरकार ने क्या किया । जानते हैं क्यों ? इसलिए कि ये लोग हमें अछूत समझते हैं । हमें हरिजन कहकर हमारे साथ धोखा करते हैं । हमको बेवकूफ बनाते हैं । आज आबादी का अस्सी परसेण्ट लोग हम सब बिरादरी वाले हैं । बाकी तीस परसेण्ट लोग बराहमन और ऊंचे हिन्दू कहलाते हैं । मैं कहता हूं, हमारा इम्तहान बहुत हो चुका । अब हम कुछ बरदाश्त नहीं कर सकते भाइयो ।`[1] लेकिन कुल मिलाकर यह खेदजनक है कि सुरेश सिनहा ने इस दिशा में कोई ध्यान नहीं दिया और न ही उसकी ओर चित्रण करने का कोई प्रयत्न ही किया है । सुरेश सिनहा एक ऐसे उपन्यासकार है, जिन्होंने हरिजन समस्याओं की ओर कम ध्यान दिया है । सुरेश सिनहा ने यद्यपि हरिजनों का यथार्थ चित्रण करने का प्रयत्न किया है,फिर भी हरिजनों के प्रति सिनहा जी का दृष्टिकोण रूढ़िवादी है ।

(ड) मनुष्यत्व की भावना

यद्यपि हरिजनों के ऊपर सवर्णों ने अनेक अत्याचार किया है, फिर भी हरिजन वर्ग में बदले की भावना नहीं मिलती ।अगर एक हरिजन और एक सवर्ण के दृष्टिकोण का अध्ययन किया जाय तो पता चलता है कि हरिजनों में मनुष्यत्व की भावना शेष है । इसी मनुष्यत्व की भावना को उपन्यास-कार ने हरिजन पात्र के माध्यम से व्यक्त किया है ।

`गबन` (१९३१ई०) की रचना के समय भारतीय समाज में अनेक विषमताएं थीं । समाज की अनेक विषमताओं का प्रभाव `गबन` (१९३१ई०)

---

१. डा० सुरेश सिनहा : `पत्थरों का शहर`(१९७१ई०),पृ०सं० १८५ ।

उपन्यास पर भी पड़ा है । उपन्यास में हरिजन पात्रों के चित्रण के दो पक्ष हैं--पहली स्थिति यह है कि उनके ऊपर अत्याचार को दिखाया जाय तथा दूसरी स्थिति है कि हरिजन पात्रों द्वारा सुधारपूर्ण दृष्टिकोण रखा जाय । 'गबन' (१९३१ई०) उपन्यास में दूसरी स्थिति ही प्रधान है तथा इसी का चित्रण उपन्यास में मुख्य रूप से किया गया है । देवीदीन खटिक पात्र में मनुष्यत्व की भावना मिलती है ।

देवीदीन व्यक्तिगत जीवन में निकम्मा,दुर्व्यसनी और धार्मिक पाखण्डों का पुजारी है, परन्तु सामाजिक जीवन में वह सरल, परोपकारी,उदार,दयालु तथा देश प्रेमी है । वह रमानाथ को झूठी गवाही देने से रोकता है । वह यह नहीं चाहता कि रमानाथ की झूठी गवाही से अनेक निरपराध व्यक्ति अपने प्राण गंवाएं । वह अपने स्वार्थ के लिए दूसरों का गला काटने वालों को विष देकर मार देने में भी पाप नहीं समझता है । वह रमानाथ से इसी कारण खिंच जाता है तथा जालपा के प्रति इसी कारण श्रद्धा आदर का भाव प्रकट करता है, क्योंकि वह सामाजिक हित का कार्य करती है । प्रेमचन्द ने देवीदीन के चरित्र के माध्यम से एक ऐसे व्यक्ति की तस्वीर खींची है, जो अच्छा वातावरण पाकर अपने में भी सुधार कर लेता है ।

-0-

पंचम अध्याय

-0-

राजनीतिक स्थिति और हरिजन

(क) शासक वर्ग ।

(ख) जमींदार वर्ग ।

(ग) एकमात्र जनतांत्रिक प्रणाली- म्युनिसिपैलिटी ।

(घ) पुलिस का अत्याचार ।

(ङ) राष्ट्रीय आन्दोलन ।

(च) शासन सम्बन्धी भ्रष्टाचार ।

(छ) भाषा की समस्या ।

(ज) पूंजीपति वर्ग का उदय ।

(झ) पुनरुत्थानवादी दृष्टिकोण ।

(ट) देशी रियासतें ।

(ठ) महाजनी शोषण ।

(ड) देशभक्त वर्ग ।

(ढ) ब्रिटिश सरकार की न्याय-व्यवस्था ।

(ण) ब्रिटिश शासन-नीति ।

पंचम अध्याय

-0-

राजनीतिक स्थिति और हरिजन

प्राचीनकाल से ही समाज के द्वारा हरिजनों का शोषण होता आया है। भारतीय राजनीति के इतिहास में जब मुगल साम्राज्य का पतन हुआ तो यूरोप वालों की दृष्टि भारत के ऊपर उठने लगी। पहले फ्रांस के लोग आये, फिर पुर्तगाल और स्पेन वाले भारत में अपने ठिकानों को मजबूत करने लगे। अंग्रेजों ने अपनी कूटनीतिज्ञता के कारण सम्पूर्ण भारत पर कब्जा कर लिया और भारतीय राजनीतिक इतिहास में अंग्रेजों का बोलबाला हो गया।

अंग्रेजों ने भारत पर अनन्तकाल तक राज्य करने के उद्देश्य से भेद-नीति को अपनाया। यदि एक तरफ अंग्रेजों ने हिन्दू और मुसलमानों में भेदभाव बरता तो दूसरी तरफ हिन्दुओं में भी भेद-भाव पैदा करने की चेष्टा की। उन्होंने तो ऐसी राजनीतिक चाल चली कि हिन्दू धर्म दो भागों में बंट जब जाये, परन्तु गांधी जी की कृपा के कारण हिन्दू धर्म में एकता बनी रही और इस प्रकार हिन्दू धर्म पतन के गर्त में जाने से बच गया।

अंग्रेजों ने जमींदार,रईस,राजे-महाराजे और सर-उपाधिधारियों आदि का वर्ग बनाकर हरिजनों का राजनीतिक क्षेत्र में शोषण प्रारम्भ कर दिया । अंग्रेजों ने हरिजनों का राजनीतिक उत्पीड़न करने के लिए जातियों को कागज में लिखा जाना अनिवार्य कर दिया । ताकि सवर्ण हिन्दू और हरिजनों जातियों के बीच भेद-भाव किया जा सके ।

अंग्रेजों ने हिन्दुओं में फूट डालने के लिए हरिजनों को अपनी ओर मिलाना चाहा । डा० अम्बेडकर के नेतृत्व में हरिजनों को राष्ट्रीय कांग्रेस के विरुद्ध करने की चेष्टा की गई । अंग्रेजों की भेद-नीति से प्रेरित होकर हरिजन-नेता डा० अम्बेडकर तथा श्रीनिवासन ने हरिजन समस्या को राजनीतिक प्रश्न का रूप दे दिया । अंग्रेज चाहते थे कि कांग्रेस की शक्ति कमजोर करने के लिए मुसलमानों की तरह हरिजनों को भी स्वतन्त्र प्रतिनिधित्व देकर उन्हें उसका विरोधी बना दिया जाये । अंग्रेजों की कूटनीति यहां तक पहुंची कि उन्होंने यह प्रचार करना आरम्भ कर दिया कि हरिजन हिन्दू नहीं है । अत: हरिजन वर्ग के नेता डा० अम्बेडकर और श्रीनिवासन ने गोलमेज परिषद् में बुनियादी अधिकार,वालिग मताधिकार और स्वतन्त्र प्रतिनिधित्व की मांग रखी,परन्तु कांग्रेस ने तीसरी मांग स्वीकार न की । कांग्रेस ने मुस्लिम लीग के साथ जो गलती किया था, उसे वह दुहराना नहीं चाहती थी । गोलमेज परिषद् का असफल होना स्वाभाविक था, क्योंकि फूट डालने के लिए ही इस बैठक का आयोजन हुआ था । रैमजे मैक्डानेल्ड के 'कम्यूनल अवार्ड' ने हरिजनों के स्वतन्त्र प्रतिनिधित्व की मांग स्वीकार कर ली । इसके विरोध में गांधी जी के आमरण अनशन के बाद १९३२ई० में 'पूना-पैक्ट' समझौता हुआ, जिसमें कांग्रेस ने हरिजनों को १४८ सीटें देना स्वीकार कर लिया, जब कि अंग्रेजी सरकार उन्हें केवल ९१ सीटें दे रही थी । गांधी जी इस बात को जानते थे कि यदि भारत के राजनीतिक इतिहास में दो वर्ग बन जायेंगे तो विदेशी शक्तियों को सिर उठाने का फिर मौका मिल जायेगा ।

आधुनिक काल में हरिजनों को राजनैतिक अधिकार प्राप्त है । उनके लिए कुछ सीटें निर्धारित की गई हैं । शासकों ने हरिजनों पर अंग्रेजी शासन काल में अनेक अत्याचार किये । अंग्रेजों की शह पाकर जमींदारों ने अनेक दुष्कर्म हरिजनों के ऊपर किए । लार्ड रिपन की कृपा से म्युनिसिपैलिटी का गठन हुआ, पर वहां भी उच्च लोगों के द्वारा हरिजनों का शोषण किया गया । ब्रिटिश राज के समय पुलिस अत्याचार का प्रतीक समझी जाती थी । समाज में पुलिस ही एकमात्र संस्था है, जिसके द्वारा समाज की सुख-शांति भंग नहीं हो पाती । भारतीय स्वतन्त्रता के बाद भी पुलिस हरिजनों को सताती थी, परन्तु जब से आपात स्थिति की घोषणा हुई है, तब से हरिजनों की दशा में पुलिस वर्ग के द्वारा सुधार हुआ है । पुलिस का कार्य है कि वह यह देखे कि कहीं हरिजनों के ऊपर पुलिस के द्वारा जो (जो कि समाज के रक्षक हैं) अत्याचार तो नहीं किया जा रहा है । भाषा के प्रश्न को लेकर भी हरिजनों का शोषण करने से लोग चूकते नहीं । पूंजीपतियों ने भी हरिजनों का शोषण किया है । उपन्यासकारों ने पूंजीपतियों के अत्याचार का विशद चित्रण किया है । महाजनों का शोषण भी राजनीतिक क्षेत्र में महत्वपूर्ण है । विभिन्न उपन्यासकारों ने हरिजनों की राजनीतिक दशा को ध्यान में रखकर चित्रण किया है ।

(क) <u>शासक वर्ग</u>

प्राचीन समय से ही शासक वर्ग शोषितों पर अत्याचार करता आया है । ब्रिटिश सरकार के कार्यकालमें भी शोषितों पर अनेक अत्याचार किए गए । शासक वर्ग के लोग अपने को उच्च समझते हैं तथा शोषितों को निम्न । इसी कारण वे उनके ऊपर अत्याचार करते हैं । शासक वर्ग के होने के नाते शोषित लोग उनके अत्याचारों का विरोध भी नहीं करता तो उसके फलस्वरूप शासक वर्ग के लोग मनमाना ढंग से शोषित लोगों का शोषण करते हैं ।

मेहता लज्जाराम शर्मा ने 'आदर्श हिन्दू' (१९१४ई०) उपन्यास में राजभक्ति का आदर्श उपस्थित किया है । 'आदर्श हिन्दू' उपन्यास में तहसीलदार पुरुषोत्तमदास के द्वारा भिकला चमार नामक पात्र पर राजनीतिक अत्याचार का वर्णन किया गया है,--" उसका खून । मैंने उस भिकला चमार को बहका कर मुझ पर नालिश ठुकवा दी ।"[1] राजनीतिक दृष्टि से लज्जाराम शर्मा जी को महत्वपूर्ण सफलता नहीं मिली है । सामंतवाद का क्या स्वरूप पूर्व समय में था, इसका चित्रण 'आदर्श हिन्दू' (१९१४ई०) उपन्यास में मिलता है । लज्जाराम शर्मा पुरातनवादी परम्परा के लेखक हैं, अतः इसीलिए उन्होंने हरिजन पात्र के साथ दुर्व्यवहार दिखाया है, जो कि वर्तमान समय में उचित नहीं जान पड़ता ।

विश्वम्भरनाथ शर्मा 'कौशिक' प्रेमचन्द की परम्परा के लेखक हैं । अतः इसी शैली में वह 'संघर्ष' (१९४५ई०) उपन्यास में राजा साहब के शोषण का पूरा ब्यौरा देते हैं । राजा साहब को," जब हाथी खरीदना होता है, घोड़ा खरीदना होता है या मोटर, तब चन्दा लिया जाता है ।"[2] राजा साहब इसके लिए हरिजनों का शोषण करते हैं, जो कि सामाजिक तथा मानवतावादी दृष्टिकोण से अनुकूल नहीं प्रतीत होता है । यहाँ राजा साहब कलक्टर की खुशामद करने के लिए व्यग्र है । 'कौशिक' जी कहते हैं कि अनेक रियासतें राज्याधिकारियों को दावत देने के कारण ऋणग्रस्त हैं । जिलेदार पासियों से नजराना लेते हैं और इस राजसी ऐश्वर्य का भार निर्धन हरिजनों को सहना पड़ता है । उनपर जो मार पड़ती है, सो अलग । 'कौशिक' जी युगद्रष्टा हैं । उन्होंने सामन्ती व्यवस्था को एक सूत्र में स्पष्ट कर दिया है कि जिस रियासत की राजधानी जितनी ही अधिक सुख-सुविधाओं से सम्पन्न होगी, उस

---

१ लज्जाराम शर्मा :'आदर्श हिन्दू' (१९१४ई०),भाग१,पृ०सं० १४६।
२ विश्वम्भरनाथ 'कौशिक' :'संघर्ष' (१९४५ई०),पृ०सं० ६७ ।

रियासत के हरिजन कहीं उतने ही अधिक पिछड़े तथा निर्धन होंगे । लेखक ने हरिजनों के शोषक तथा राजा साहब के विलासी चरित्र का भी पूरा चित्र दिया है । दो रानियां हैं, अनेक रखैलियां, फिर भी रियासत की कोई सुन्दर युवती राजा के विलास से नहीं बचती । शोषण का इतना सुन्दर विवेचन देने पर भी अन्त में 'कौशिक' जी राजा साहब के लिए एक सुयोग्य सेक्रेटरी का प्रबन्ध करके सामन्ती व्यवस्था की स्थापना करते हैं । उनका चिन्तन इसी सीमा पर आकर अवरुद्ध हो जाता है ।

वृन्दावनलाल वर्मा के 'मृगनयनी' (१९५०ई०) उपन्यास में हरिजनों के ऊपर राजाओं के अत्याचार का वर्णन किया गया है । राजा लोग किस प्रकार अपने राज्य-नीति की पूर्ति के लिए हरिजनों का शोषण करते हैं, इसी का चित्रण 'मृगनयनी' (१९५०ई०) में मिलता है । 'मृगनयनी' (१९५०ई०) एक ऐतिहासिक उपन्यास है, जिसमें विभिन्न राजाओं की कूटनीतियों का चित्रण मिलता है । पोटा तथा पिरली नामक नटों का उत्पीड़न गुजरात के शासक बघर्रा के द्वारा किया जाता है,--'गुजरात के बघर्रा के शरीर को जितनी भूख अन्न, फल, मांस इत्यादि के लिए थी, उससे कहीं अधिक भूख और प्यास उसकी आत्मा को लड़ाइयां लड़ने और खून बहाने की लगी रहती थी । यदि उसको मनुष्य लड़ने को न मिलते तो वह हवा, पहाड़, पेड़ और पत्थर किसी से भी लड़ता भिड़ता रहता । शरीर की कराल जठराग्नि को बनाये रखने के लिए आत्मा का यह पाचनचूर्ण वह अपने लिए अत्यन्त अनिवार्य समझता था ।'[1] अपनी इसी नीति के कारण वह नटों को अपनी राजनीति में समेटना चाहता है । मांडू पर बघर्रा आक्रमण करने के लिए जा रहा है । एक जगह मार्ग लुप्तप्राय हो गया था । मार्ग-दर्शक भ्रम में पड़ गये । सन्ध्या होने में विलम्ब था, परन्तु घोड़ों की टुंगों पर बाद में बह जाती हुई एक चौड़ी नदी भी पार करने को पड़ी थी । मार्ग खोजने वाला दल सेना के सामने से इधर-उधर फैल गया।

---

१. वृन्दावनलाल वर्मा : 'मृगनयनी' (१९५०ई०), पृ०सं० ९० ।

थोड़ी दूर जंगल में उनको धुआं दिखलाई पड़ा । खोजने वाले धुएं के पास सतर्कता पहुंचे । वहां नट-बेड़ियों का एक छोटा-सा डेरा था । मार्ग-प्रदर्शक का अगुआ नटों का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट करने के लिए चिल्लाता है । नट लोगों के चेहरे पर भय से नहीं आश्चर्य से रेखायें खिंच जाती हैं । नटों का मुखिया अगुआ से पूछता है, ' क्या है ?'

अगुआ ने कहा, --'गुजरात के सुल्तान की फौज यहां पास आ गई है और तुमको खबर नहीं ।'

'हमको नहीं मालूम ।'

'मांडू का रास्ता बतलाओ और नदी का घाट ।'

'हमको नहीं मालूम ।'

'फौज को अभी घड़ी उस पार उतरना है ।

'काहे के लिए ?'

'काहे के लिये । तुम्हारे पुरखों को तारने के लिए । निकलता है इस बाड़े में से या हम रण-सिंगा बजाकर फौज के हाथियों को तुम्हें कुचल डालने के लिए बुलायें ?'[1] बघर्रा के सरदार इस प्रकार नटों को बिना अपराध कुचल देना चाहते हैं।

अगुआ ने मुखिया से पूछा--' तुम्हारा नाम ?'

'पोटा ।'

'और इस लड़की का नाम ।'

'पिल्लो ।'

'स्त्रियों को साथ लाने की जरूरत नहीं है ।'[2]

आखिरकार अगुआ नटों को जबर्दस्ती पकड़कर राजा के पास ले जाता है ।' नट कांप गये । पिल्लो की सिट्टी भुलाई । वह अदब के साथ

---

१. वृन्दावनलाल वर्मा : 'मृगनयनी' (१९५०ई०), पृष्ठांक ९३ ।

२. वही, पृष्ठांक ९३ ।

खड़ा होकर नाचने से ही सुल्तान को भांपने लगे । उस शरीर, दाढ़ी और मुंह को देखकर उनके रोंगटे खड़े हो गये । सुल्तान ने पाव-पाव भर के ग्रासों से भोजन करना जारी कर दिया ।

एक ग्रास को चबाते - चबाते बघर्रा बोला --'कहां रहते हो ?' पिल्ला के कानों को प्रतीत हुआ जैसे किसी बड़े भरे हुए ढोल में मैंसा घुसा हो ।

आतंक स्वर में बोला --'सरकार मांडू के पास के जंगल के रहने वाले हैं हम लोग ।'

कहां जा रहे हो तुम लोग ? जैसे कोई चट्टान फटी हो ।

'सरकार मेवाड़ की तरफ ।'

'क्यों ?' जैसे लोहे के दो गोले आपस में टकरा गये हों ।

'वहां के राणा जी और सरदारों को अपना खेल तमाशे दिखलाने के लिए ।'

'यहां से कब चल दोगे तुम लोग ?'

'दो-तीन दिन में । बादल, साफ हुआ नहीं कि चल पड़े ।'

'कौन लोग हो ?'

'हिन्दू और मुसलमान दोनों ।'

'यह कैसे ?'

'सरकार, हम खुदा और भगवान दोनों को मानते हैं और सब जानवरों का मांस खाते हैं ।'

'तोबा ! तोबा !!'

'मेवाड़ का राणा जी कहां है ?'

'चीतौड़ में होंगे महाराज ।'

`सिपाही, मैं नहीं हूं । मुझको जुझने-मारने को आ रहा है । यहां चालीस पचास कोस की दूरी पर है । मांडू के सुलतान को खतम करके आता हूं उस पर भी । अह देखा कि बच्चा नेरा का जो हाल किया वही उसका भी करूंगा ।`

`जो हुकुम सरकार ।`

`कसम खाओ ।`

`खुदा की कसम ।`

`भगवान की भी खाओ ।`

`कसम भगवान और खुदा की ।`[1]

नट लोग अपना इनाम न लेकर किसी तरह जान छुड़ाकर भागते हैं । इस प्रकार नटों के ऊपर अत्याचार किया जाता है ।

लेखक का, हरिजनों के प्रति जो अत्याचार हुआ है, सम्यक दृष्टिकोण है ।वर्मा जी ने इस उपन्यास में नटों की कथा को प्रासंगिक घटनाओं में प्रमुख स्थान दिया है । वर्मा जी ने सिवा तथा पोटा नटों में अत्याचार के विरुद्ध विद्रोह की भावना नहीं दिखाई है । नट के ऊपर अत्याचार करना तो राजाओं की अत्याचार की नीति को स्पष्टत: हमारे सामने रखता है । यद्यपि वर्मा जी ने नटों में इतनी शक्ति नहीं दिखाई है कि वह अधर्मी जैसे शासक का डटकर मुकाबला कर सकें । पोटा के वर्ग के नट मांडू के जंगल में अपनी जान बचाने के लिए छिप जाते हैं, --`पोटो के वर्ग के नट मांडू के जंगल में आ छिपे । वर्षा के अन्त तक वहीं बने रहे । उस डरावने सुलतान और प्रचण्ड `राणा जी` के झंझट में वे नहीं पड़ना चाहते थे । शंका करते थे सुलतान अब आया और तब आया । परन्तु न सुलतान आया और न राणाजी आये ।`[2]

हरिजनों के ऊपर जो अत्याचार शासक वर्ग के द्वारा किया गया है, वह मानवता की दृष्टि से उचित नहीं लगता । इसका कारण

---

१. वृन्दावनलाल वर्मा : `मृगनयनी` (१९५०ई०), पृ०सं०३६ ।

२. वही, पृ०सं० ९७ ।

स्वयं स्पष्ट है । भारतों के तीन पहले नटों को इनाम देने की कहकर रास्ता सुझाते हैं तथा बाद में उनको बगैर इनाम दिये भगा देते हैं । यहां नहीं से उन्हें वहां से भी भगा देते हैं जहां पर वे रहते थे । यह ठीक है कि राजा लोगों के मन में अनेक राज्य को जीतने का इच्छा रहता है, पर हरिजनों का शोषण वे क्यों अपना नीति के पूर्ति हेतु करें ? एक तो पोटा लगा पिछला नट अत्याचारियों को रास्ता दिखाते हैं तो दूसरा और उन्हें इनाम के रूप में उत्पीड़न प्राप्त होता है। हरिजनों के ऊपर अत्याचार व का समर्थन तो किसी को भी मान्य न होगा और न यह किसी भी दृष्टिकोण से उचित कहा जा सकता है ।

चतुरसेन शास्त्री का `गोली` (१९५८ ई०) उपन्यास एक ऐतिहासिक उपन्यास है । `गोली` (१९५८ ई०) उपन्यास में चम्पा हरिजन के ऊपर हुए अत्याचारों को चित्रित किया गया है । इस उपन्यास में राजाओं के काले कारनामों को उद्घाटित किया गया है साथ ही साथ चम्पा गोली के ऊपर हुए अत्याचार को भी उजागर करता है । अंग्रेजों का सदा से यह दृष्टिकोण रहा कि पहले वे रहने के लिए जगह मांगते थे । जगह मिलने पर अपनी टांगें फैलाते थे यानी काम काज में दखल देते थे तथा फिर किसी बात को लेकर रियासत को अपने अधिकार में ले लेते थे । सुहागरात के दिन राजा तथा रानी में लड़ाई हो जाती है । राजा, रानी कुंवरी के महल में न जाकर चम्पा के महल की ओर चले जाते हैं तो राजवर्गों के लोग चम्पा की शिकायत रेजिडेण्ट साहब से करते हैं । कुंवरी, रेजीडेण्ट साहब से राजा साहब के विरुद्ध कहती है कि महाराज मेरी मर्जी के विपरीत मेरे निकट न आने पायें । रेजीडेण्ट साहब कुंवरी की सहायता का वचन देते हैं तथा चम्पा को रंगमहल से हटाने की सिफारिश भी करते हैं,--`रेजिडेण्ट साहब बहादुर ने उन्हें सहायता का वचन दिया और राजा से भी लिखवा लिया । इतना ही नहीं, उन्होंने ए०जी०जी० और वायसराय को भी बहुत सख्त नोट लिखा और इस बात पर भी जोर दिया कि चम्पा को रंगमहल से हटा दिया जाए ।`[१]

---

१. चतुरसेन शास्त्री : `गोली` (१९५८ ई०), पृष्ठ० १३१ ।

चम्पा के प्रति रेजिडेण्ट के द्वारा जो अत्याचार किया जाता है, लेखक उससे सहमत नहीं है, क्योंकि कुंवरा भी इस बात का विरोध करता है। अगर कुंवरा विरोध न करता तो यह स्पष्ट हो जाता कि लेखक की सहानुभूति चम्पा के अत्याचार के प्रति नहीं है। चतुरसेन जी ने चम्पा के ऊपर हुए अत्याचार को पूर्णरूप से चित्रित किया है। पर जहां कहीं भी चम्पा के ऊपर अत्याचार होता है, लेखक की सहानुभूति चम्पा के अत्याचार के प्रति रहती है। लेखक उपन्यास के अन्त में गोली के जीवन से छुटकारा दिला देता है। इससे स्पष्ट है कि लेखक चम्पा हरिजन का उत्थान चाहता है, पतन नहीं।

रेजिडेण्ट साहब, चम्पा के ऊपर जो अत्याचार करते हैं, वह मानवतावादी दृष्टिकोण से उचित नहीं है। चम्पा तो बेचारी निर्दोष है, उसका दोष नहीं है। वह तो गोली है। उसका कार्य है राजा के हुक्म को मानना। अगर वह राजा के आदेश को न मानती तो भी उसके ऊपर अत्याचार किया जाता। अगर उसने राजा के आदेश का पालन किया तो रेजिडेण्ट साहब उसपर अत्याचार करना चाहते हैं। इस प्रकार चम्पा को दोनों तरफ से परेशानी है। चम्पा ने तो राजा से तो यह कहा नहीं था कि वे कुंवरा के महल की ओर न जायें। चम्पा तो एक सच्चरित्र युवती का चरित्र पेश करती है। जब रानी कुंवरा उसे राजा को लिवा लाने के लिए भेजना चाहती है तो वह विरोध करती है, पर रानी के आदेश को मानकर रह जाती है। इससे स्पष्ट हो जाता है कि राजा को बहकाने में चम्पा का दोष नहीं है।

भारत में तो अंग्रेज मौके की ताक में रहते थे कि कब मौका मिले तथा कब हस्तक्षेप करें। जब राजा और रानी के बीच संघर्ष होता है तो रेजिडेण्टसाहब हस्तक्षेप करते हैं। यह अंग्रेजी कूटनीति का ही परिणाम थी। किशुना, चम्पा से कहता है,--"हुजूर रेजिडेण्ट साहब बहादुर नई रानी से मिलकर बहुत खुश हुए हैं। उन्हें उस रात की सारी बात मालूम हो गई है। इससे उन्होंने अन्नदाता को खूब फटकारा है और कहा है कि सब बातें वह जनाब [illegible] गवर्नर जनरल बहादुर को लिख देंगे और यदि वह अपना चाल चलन ठीक न

रहेंगे तो वह ए०जी० को रिपोर्ट देंगे कि रियासत जलसा कर दी जाए और अन्नदाता को गद्दी से उतार दिया जाए।[१] अंग्रेज लोग अपना कूटनीति के ही अनुसार दीवान को नियुक्त कर देते हैं। चम्पा कहती है,--"महाराज राज-काज में बहुत दखल नहीं दे पाते थे। सब काम राज्य के दीवान करते थे। दीवान उस समय एक मद्रासी सज्जन थे, जिन्हें सरकार बर्तानिया ने अपने यहां से भेजा था।"[२] हम कह सकते हैं कि 'गोली' (१९५८ई०) उपन्यास में अंग्रेजों का राज-नीतिक दांव-पेंच का चित्रण हुआ है। पहले अंग्रेज लोग तो भारत में व्यापार करने आये थे, पर बाद में वे स्वतंत्र राज्य में हस्तक्षेप करने लगे। यही नहीं वे राजा के लोगों का दमन करने लगे। चम्पा भी अंग्रेजों की इसी कूटनीति का शिकार बनती है।

(ग) जमींदार वर्ग

जमींदार वर्ग अंग्रेजी राज्य के प्रारम्भिक दिनों का उपज है। इस विशाल देश पर शासन करने के लिए अंग्रेजों को समर्थकों की भी आवश्यकता थी, अत: अंग्रेजों ने जमींदार वर्ग को जन्म दिया। जमींदार वर्ग अंग्रेजी सरकार पर आश्रित होने के नाते राष्ट्रीय आन्दोलन का विरोध करता तथा अंग्रेजों का समर्थक बना रहता। समान शत्रु से संघर्ष लेने के लिए जमींदार वर्ग तथा अंग्रेजी सरकार एकता स्थापित करता है। सारांशत: जमींदार वर्ग का हित ब्रिटिश सरकार के समर्थन करने में ही था।

विश्वम्भरनाथ शर्मा 'कौशिक' ने 'भिखारिणी' (१९२९ई०) उपन्यास में हरिजनों के ऊपर अत्याचार का वर्णन किया है। जमींदार ठाकुर अर्जुन सिंह, रामनाथ के शिकार खेलने की इच्छा प्रकट करने पर अंगनुवां पासी से कहते हैं,--"सबेरे ई बाबू सिकार खेलै जैहैं। तड़िसे सबेरे चार बजे आठ आदमी लैके हाजिर रहो-- समझे औ रचि मां फरक न पड़े,नाहीं

१. चतुरसेन शास्त्री : 'गोली' (१९५८ई०), पृ०सं० १२५।

२. वही, पृ०सं० १३०।

चरित्र उदात्त बना देते हैं ।[1] जब कोई व्यक्ति या शोषण तथा अप्राकृतिक आधार पर अवलम्बित रहती है तो व्यक्तियों में उदात्त गुणों का अभाव रहता है तथा पतनशील अवगुणों का बाहुल्य हो जाता है ।शोषक-शोषित का सम्बन्ध ही दमन तथा भय पर आश्रित है । `भिखारिणी`(१९२९ई०) उपन्यास के बूढ़े जमींदार अर्जुन सिंह अपने वर्ग के सम्पर्क में सौजन्य तथा शान्ति की मूर्ति बने रहते हैं । आतिथ्य सत्कार अब भी उनका धर्म है । लेकिन बूढ़े अर्जुन सिंह के चरित्र के दो पहलू हैं । आतिथ्य सत्कार में तो सरल तथा सज्जन व्यक्ति के रूप में उनका चित्र हमारी आँखों के सम्मुख आता है, लेकिन वही जब पासियों को पीटने के लिए कोड़ा मंगवाते हैं,तो उनके चरित्र का दूसरा रूप देखने को मिलता है । उनके व्यक्तित्व के ये दो भिन्न स्वरूप क्यों हैं ? क्योंकि समाज में कई वर्ग हैं । इससे पता चल जाता है कि जमींदार लोग किस प्रकार अपने से निम्न तथा आश्रित लोगों पर अत्याचार करते हैं । भारतीय राजनीति में जमींदार वर्ग का महत्त्वपूर्ण स्थानहै । साम्राज्यवाद जैसे गिने चुने, कुछ भी अंग्रेजों का समूह नहीं था, बल्कि वह एक व्यवस्था है । उस व्यवस्था को पुष्ट करने वाले ये जमींदार वर्ग के ही लोग तत्कालीन समय में थे । पर उपन्यासकारों ने इस तथ्य की ओर ध्यान न दिया । वे अंग्रेजी सरकार से तो लड़ना चाहते हैं, लेकिन उनके भारतीय समर्थकों से नहीं । `कौशिक` जी ने`भिखारिणी`(१९२९ई०) में जमींदारों के अत्याचार को उभार कर हमारे सामने रखा है ।`भिखारिणी`(१९२९ई०) के जमींदार अर्जुन सिंह इसी कारण हरिजनों पर अत्याचार करने से नहीं चूकते, क्योंकि वे तो अपने को शासक वर्ग का समर्थक समझते हैं । फिर हरिजन तो शोषित है,उसपर अत्याचार होना ही चाहिए ।अर्जुन सिंह को पासियों के ऊपर अत्याचार करना शोभा नहीं देता तथा यह सामाजिक दृष्टि से अनुकूल नहीं बल्कि प्रतिकूल है ।

`गोदान`(१९३६ई०) उपन्यास के नायक होरी का जमींदार वर्ग के द्वारा शोषण भी चित्रित किया गया है ।जमींदारी बढ़ने का

---

१. विश्वम्भरनाथ शर्मा `कौशिक` : `भिखारिणी`(१९२९ई०,पृ०सं० १२९ ।

कारण वस्तुतः यह है कि अंग्रेज़ी सरकार की आर्थिक नीति के कारण भूमि पर अतिरिक्त भार बढ़ गया है । भूमि का मूल्य बढ़ गया है, भूमि के अनुपात से किसानों की संख्या कई गुना बढ़ गई है । नया ही जमींदार वर्ग विलासिता के गर्त में डूबता गया । आधुनिक मंहगाई, सुख-सुविधाओं की आवश्यकता भी बढ़ी । इन सब का परिणाम यह हुआ कि जमींदार मानवीय सम्बन्ध भुलाकर किसानों का मनमाना शोषण करने लगा । राय अमरपाल सिंह के ऊपर लगाये गये दण्ड में शोषक है । 'गोदान' (१९३६ई०) के राय साहब अमरपाल सिंह कौंसिल की मेम्बरी छोड़कर जेल जाने वाले देश-भक्तों में अपना नाम लिखा लेते हैं । वे मानवतावादी विचारक के रूप में सामने आते हैं, जो स्वयं अपने वर्ग की कमजोरियों का पर्दाफाश करते हैं । ऐसा लगता है कि वह जमींदार वर्ग से उत्कट घृणा करते हैं, वह जाल से छूटना चाहते हैं, लेकिन छूट नहीं पा रहे हैं । प्रेमचन्द लिखते हैं कि इसका अर्थ नहीं कि, --' उनके इलाके में असामियों के साथ कोई खास रियायत की जाती हो, या डांड़ और बेगार की कड़ाई कुछ कम हो, मगर यह सारी बदनामी मुख्तारों के सिर जाती थी । असामियों से हंसकर बोल लेते थे । यही क्या कम है ? सिंह का काम तो शिकार करना है, अगर वह गरजने और गुर्राने के बदले मीठी बोली बोल सकता, तो उसे घर बैठे मनमाना शिकार मिल जाता । शिकार की खोज में उसे जंगल में न भटकना पड़ता।'[1] देशकाल की परिवर्तित स्थिति में शोषण की प्रक्रिया भी बदल जाती है । जनवादी विचारों के युग में जनता से मातृत्व का सम्बन्ध रखना आवश्यक हो गया । राष्ट्रमुक्ति आन्दोलन के युग में यश-लाभ के लिए जेल जाना सबसे सरल साधन था । लेकिन शोषण कम नहीं हुआ । वर्तमान युग में राय साहब की दोनों चरित्रों का क्षमा नहीं । उनकी कथनी-करनी में अन्तर है । होरी से कहे गये लम्बे प्रवचन के तुरन्त बाद ही बेगारों पर बिगड़ते हैं । क्योंकि बेगार बिना भोजन के काम करने

---

१. प्रेमचन्द : 'गोदान' (१९३६ई०), पृष्ठ० १२ ।

को तैयार नहीं होकर होते।

यह महत्त्वपूर्ण तथ्य है कि जमींदार वर्ग न केवल आर्थिक शोषण करता है, वरन् सामाजिक क्षेत्र में भी वह प्रतिक्रियावादी तथा शोषक होता है। झुनिया को बहू के रूप में स्वीकार करने के कारण पंचायत होरी से डांड लेता है। जिसमें झिंगुरी सिंह भी हिस्सा बटाना चाहते हैं। वह कानून को डांटते हैं, --"इस डांड-बांध के सिवा गांव में कौन सी आमदनी है। बकाया सरकार के घर गई। बकाया असामियों ने दबा लिया। तब मैं कहां जाऊं। क्या खाऊं, तुम्हारा सिर? यह लाखों रुपये गांव का खर्च कहां से आये?"[1]

हिन्दी उपन्यासों में किसानों का संघर्ष ब्रिटिश सरकार से न होकर मुख्यतः जमींदार वर्ग से होता है, क्योंकि हिन्दी भाषा-भाषी प्रदेश, विशेषकर: उत्तरप्रदेश में रैयतवारी प्रथा न होकर जमींदारी-व्यवस्था ही मुख्य थी। लेकिन जमींदारी-व्यवस्था का मुख्य कारण सरकार के संरक्षण में पाली पोसी गई थी, अतः यदा कदा किसानों का संघर्ष ब्रिटिश सरकार से भी होता है।

(ग) स्थानीय एकमात्र जनतांत्रिक प्रणाली-- म्युनिसिपैलिटी

लार्ड रिपन ही एकमात्र ऐसे वायसराय थे, जो भारत के हितचिन्तक कहे जा सकते हैं। उन्होंने भारतीयों को आधुनिक शासन-प्रबन्ध की शिक्षा देने के उद्देश्य से स्वायत्त शासन का अधिकार दिया, जिसके आधार पर बाद में म्युनिसिपैलिटी तथा जिला बोर्ड का संगठन हुआ। लेकिन ब्रिटिश सरकार की छत्र-छाया में किसी भी संस्था का जनतांत्रिक आधार पर संगठित होना सम्भव ही नहीं था। यही कारण है कि १९२०ई० के लगभग जवाहरलाल नेहरू, डा० राजेन्द्र प्रसाद तथा सरदार वल्लभभाई पटेल जैसे योग्य व्यक्तियों को

---

१. प्रेमचन्द : 'गोदान' (१९३६ई०), पृ०सं० ९६।

२. वही, पृ०सं० १७७।

भी इलाहाबाद,पटना तथा बम्बई की म्युनिसिपैलिटियों से इस्तीफा देना
पड़ा था । `रंगभूमि`(१९२५ ई०) उपन्यास का प्रकाशन भी इसी समय हो
रहा था, अत: प्रेमचन्द म्युनिसिपैलिटी तथा सरकार के परस्पर सम्बन्ध पर
पूरा प्रकाश डालते हैं ।`रंगभूमि`(१९२५ ई०) में जमीन को लेकर म्युनिसिपलबोर्ड
तथा जनसाधारण वर्ग का संघर्ष होता है । चूँकि उपन्यास सम्राट प्रेमचन्द
जागरूक कलाकार थे, अत: उन्होंने तत्कालीन जनतांत्रिक संस्था-म्युनिसिपैलिटी
पर जिन व्यक्तियों का आधिपत्य है, उस बात को भी परखा । यों निर्वाचन
पद्धति से चुने हुए व्यक्ति जनता के प्रतिनिधि होने चाहिए, लेकिन प्रेमचन्द
अपने उपन्यासों में इस तथ्य को स्पष्ट करते हैं कि जनता के द्वारा निर्वाचित
ये सदस्य वस्तुत: सर्वसाधारण जनता की उपेक्षा करते हैं, क्योंकि ये उच्च वर्ग
के व्यक्ति हैं जो धन के बल पर चुनाव लड़ते हैं । `रंगभूमि`(१९२५ ई०)में मि०
जानसेवक सिगरेट का कारखाना खोलने के लिए सूरदास का जमीन छीनना चाहते
हैं, जिसपर पाण्डेपुर व मुहल्ले के लोग बसते हैं ।मुहल्ले वाले तथा सूरदास उस
जमीन को नहीं देना चाहते । लेकिन व म्युनिसिपैलिटी औद्योगिक विकास में
देश का हित देखकर उस जमीन को छीन लेती है । शहर में कई सेठ-राजा-
महाराजाओं के बंगले हैं,जिनके पास इससे कहीं अधिक अनुपयोगी जमीन पड़ी हैं ।
इनमें म्युनिसिपैलिटी के चेयरमैन राजा महेन्द्र तथा उद्योगपति मि० जानसेवक भी
हैं । लेकिन देश-हित के नाम पर सूर की जमीन छीना जाता है तथा सूर के
ऊपर अत्याचार होता है । इसमें एक निर्धन हरिजन का जमीन छीना जाता है,
जिसमें समस्त मुहल्ले का लाभ है । सूर के नेतृत्व में पाण्डेपुर मुहल्ला संघर्ष करता
है,लेकिन सरकार म्युनिसिपिल बोर्ड तथा उच्च वर्गों का संगठित शक्ति के सामने
विफल रहता है । जमीन को लेकर `कर्मभूमि`(१९३२ ई०) में सुखदा तथा नैना
के नेतृत्व में हरिजन वर्ग तथा म्युनिसिपैलिटी में संघर्ष होता है । हरिजन वर्ग के
लिए सुखदा, डा० शांतिकुमार तथा अमरकान्त पक्के मकान बनाना चाहते हैं,

जिसके लिए म्युनिसिपैलिटी से जमीन की मांग की जाती है । लेकिन म्युनिसिपैलिटी के धनी सदस्य वैयक्तिक लाभ के लिए जमीन स्वयं हथियाना चाहते हैं । फलत: हरिजन वर्ग के मकानों के लिए जमीन नहीं मिल पाती, जिसके लिए संघर्ष होता है । `रंगभूमि` (१९२५ई०) में सूर के नेतृत्व में पाण्डेपुर मुहल्ले की हार `कर्मभूमि` (१९३२ई०) हरिजन वर्ग की विजय में क्यों बदल जाती है ? पाण्डेपुर मुहल्ला संगठित नहीं है और न उन्हें योग्य नेतृत्व ही प्राप्त है । जब कि `कर्मभूमि` (१९३२ई०) का हरिजन वर्ग अधिकतर संगठित है । संघर्ष पद्धति का विकास हो चुका है । `रंगभूमि` (१९२५ई०) में संघर्ष की कोई पद्धति है ही नहीं, एकमात्र सूरदास का अदम्य धैर्य, आत्मबल उनकी शक्ति है । लेकिन `कर्मभूमि` (१९३२ई०) के विभिन्न पेशेवर वर्ग(हरिजन वर्ग) हड़ताल करते हैं । मध्यम वर्ग का समर्थन भी उन्हें प्राप्त है, जब कि सूर के नेतृत्व में पाण्डेपुर मुहल्ला स्वयं लड़ते हुए मिट जाता है, लेकिन अन्य लोगों का सक्रिय सहयोग प्राप्त नहीं कर पाता ।

देश की तत्कालीन परतन्त्र अवस्था में म्युनिसिपैलिटी ही एकमात्र जनतांत्रिक संस्था थी । लेकिन फिर भी राष्ट्रीय विचारधारा के अग्रदूत लेखक प्रेमचन्द `उग्र` जी की भांति म्युनिसिपैलिटी के खलनायक के रूप में चित्रित करते हैं । प्रश्न उठता है कि क्या ये लेखक जनतंत्र के विरोधी हैं ? उनकी रचनाओं की सम्पूर्ण भावधारा पर विचार करने के बाद ऐसी आशंका सम्भवत: कोई भी आलोचक नहीं करेगा । वास्तविकता तो यह थी कि निर्वाचन पद्धति का लाभ उच्चवर्ग के व्यक्ति ही प्राप्त कर सकते हैं, क्योंकि उनके पास धन है, अत: म्युनिसिपैलिटी में उनका ही आधिपत्य है । दूसरा निष्कर्ष यह है कि तत्कालीन ब्रिटिश सरकार तथा म्युनिसिपैलिटी के शोषण में कोई अन्तर नहीं । दोनों ही हरिजन वर्ग की उपेक्षा करते हैं । ब्रिटिश सरकार इंगलैण्ड का हित देखती है तो उच्च वर्ग का नेतृत्व स्वयं वैयक्तिक लाभ तथा महत्वाकांक्षाओं को प्रमुखता देता है। जनवादी तथा राष्ट्रीय विचारधारा का उनके सम्मुख कोई महत्व नहीं है । अंग्रेज अफसरों से भी उनका घनिष्ट सम्पर्क रहता है । हां, यदि राष्ट्र प्रेम तथा जनता के नेतृत्व से यश तथा वैयक्तिक लाभ मिलता हो तो राष्ट्र सेवक तथा जनसेवी बनने का ढोंग रच सकते हैं । तीसरा निष्कर्ष यह निकलता है कि हरिजन वर्ग अधिक

संगठित तथा उनकी शक्ति उभर कर अधिक प्रखर होती जा रही है । राष्ट्रीय आन्दोलन में भी यह विकास स्पष्ट प्रकट होता है । राष्ट्रीय कांग्रेस का नेतृत्व उच्च वर्गीय राजनीतिज्ञ भाडरेट तथा विचारक के हाथों में न रहकर गांधी जी के साथ डा० अम्बेडकर जैसे हरिजन नेता भी करते हैं, जिन्होंने हरिजनों के जनसमूह को राष्ट्रीय आन्दोलन का आधार बनाया ।

पाण्डेय बेचन शर्मा `उग्र` ने `मनुष्यानन्द` (१९३५ ई०) में हरिजनों के ऊपर राजनीतिक अत्याचार का वर्णन किया है । `मनुष्यानन्द` (१९३५ ई०) उपन्यास में बुधुआ भंगी के नेतृत्व में हरिजनों का आन्दोलन चलता है । म्युनिसिपैल्टी से सुविधाओं की मांग के लिए भंगी हड़ताल करते हैं और अन्तत: म्युनिसिपैल्टी सवर्ण हिन्दू तथा सरकार की संगठन शक्ति सभी बात स्वीकार करते हैं । हरिजनों को सभी सुविधायें मिलती हैं । पाण्डेय बेचन शर्मा `उग्र` जागरूक कलाकार थे, अत: उन्होंने एकमात्र जनतांत्रिक संस्था म्युनिसिपैल्टी पर जिन व्यक्तियों का आधिपत्य है, उस बात को भी देखा । यों निर्वाचन पद्धति से चुने गये व्यक्ति जनता के प्रतिनिधि होने चाहिए , लेकिन `उग्र` `मनुष्यानन्द` (१९३५ ई०) उपन्यास में इस तथ्य को स्पष्ट करते हैं कि जनता द्वारा निर्वाचित ये सदस्य वस्तुत: सर्वसाधारण जनता की उपेक्षा करते हैं, क्योंकि ये उच्च वर्ग के व्यक्ति हैं, जो धन के बल पर चुनाव लड़ते हैं । इसीलिए उन्होंने बुधुआ भंगी के नेतृत्व में आन्दोलन का सूत्रपात किया है । `उग्र` जी म्युनिसिपैल्टी को खलनायक के रूप में चित्रित करते हैं । `मनुष्यानन्द` (१९३५ ई०) उग्र जी के `बुधुआ की बेटी` (१९२८ ई०) का रूपान्तर है ।

`उग्र` राजनीतिक धरातल पर गांधी जी के प्रभाव से प्रभावित है । `मनुष्यानन्द` (१९३५ ई०) उपन्यास में अछूतोद्धार-आन्दोलन चलता है। गांधी जी के जितने भी मुख्य रचनात्मक कार्यक्रम थे, `उग्र` जी ने उन्हें अपने उपन्यासों का विषय बनाया । गांधी जी यदा-कदा राजनीति से सन्यास लेकर इस रचनात्मक कार्यक्रमों को संगठित करते थे । जिनका महत्व सामाजिक तथा

राजनीतिक दोनों ही दृष्टियों से था । 'उग्र' गांधी जी के रचनात्मक कार्यक्रमों पर ध्यान केन्द्रित करते हैं । 'मनुष्यानन्द' (१९३५ई०) में अछूतोद्धार के प्रसंग में लेखक निश्चित रूप से गांधी जी से आगे बढ़ गया है । वस्तुतः सामाजिक-राजनीतिक समस्याओं के प्रति लेखक नया दृष्टिकोण उपस्थित करता है । हिन्दी का यह प्रथम उपन्यास है, जिसमें मेहतर संगठन बनते हैं[1] । अन्ततः अघोड़ा बाबा तथा गुड्डन भंगी के नेतृत्व में ट्रेड यूनियन की विजय होती है । औद्योगिक केन्द्रों में मजदूरों के संगठन बन चुके थे, जो कटौती तथा अन्य अत्याचारों के लिए मिल-मालिकों से संघर्ष लेने लगे थे । 'उग्र' जी पर स्वभावतः इन ट्रेड यूनियनों का प्रभाव पड़ा । 'उग्र' जी द्वारा इतना संकेत किया गया है कि अब सामाजिक - राजनीतिक संगठनों का आधार बदल गया है ।

'सागर, लहरें और मनुष्य' (१९५५ई०) में यशवंत कोली के नेतृत्व में बरसोवा के कोली लोग आन्दोलन करते हैं । कारपोरेशन से सुविधाओं की मांग के लिए कोली आन्दोलन करते हैं, पर इस उपन्यास में कोली लोग हार स्वीकार कर लेते हैं । उनकी मांगें पूरी नहीं हो पाती हैं । हरिजनों को सुविधायें नहीं मिल पाती हैं । जब यशवंत कारपोरेशन में अपील करता है तो उसे जवाब मिलता है,--" कारपोरेशन के सामने अकेले बरसोवा का ही सवाल नहीं है। पचासों ऐसी जगहें हैं, जहां कि सुधार की जरूरत है ।" जब गांव के लोग सदस्य से कहते हैं कि तुम तो हमारे बीच से चुने गये हो," पर हमने आपको वोट दिया है तो आपका काम है हमारे गांव की सड़कें पक्की हों, वहां नालियां बनें[2] ।" जब यशवंत सदस्य से कहता है कि बरसोवा सड़क के किनारे के बंगलों को छोड़कर कितना गन्दा है । सदस्य कारपोरेशन में फैले भ्रष्टाचार की ओर संकेत करता है, --" मैं जानता हूं । मेरी तुम्हारे साथ पूरी सहानुभूति है । पर बात केवल मेरे हाथ की ही तो है नहीं । सब लोग जब तक साथ न दें तब

---

१. पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' : 'मनुष्यानन्द' (१९३५ई०), पृष्ठांक १३८

२. उदयशंकर भट्ट : 'सागर लहरें और मनुष्य' (१९५५ई०), पृष्ठांक २३९ ।

३. वही, पृष्ठांक २३९।

तक कैसे होगा । क्या सदस्य चाहते हैं कि उनका अपना चुनाव को कोई रोक रखें, पर होती नहीं है ।' उधर यशवंत डेपुटेशन लेकर चले ।'

'कोई बुराई नहीं है, पर होगा कुछ नहीं, मैं जानता हूं ।'

'फिर क्या करें ?'

'मैं क्या बताऊं । एक बात पूछता हूं।'

'कहिए ।'

'आज ही आप लोगों को सफाई की जरूरत हुई, अब तक क्यों न हुई ?'

'यह तो कोई बात नहीं है । कारपोरेशन पहले भी था, सदस्य पहले भी चुने जाते थे, आप क्या पहले भी मेम्बर थे ?'

पटवर्धन ने देखा, नीची जाति के लोग अब जवाब भी देने लगे हैं ।[१,२] कारपोरेशन के सदस्य के ऊपर तो धनियों का प्रभाव रहता है । वे गरीबों का क्या जानें ? इस उपन्यास का पटवर्धन हरिजनों का उत्थान नहीं, वरन् उनमें संघर्ष ही भी उत्पन्न करा देता है ।

कारपोरेशन के सदस्य कितने पतित तथा हरिजन विरोधी हैं, यह बात भट्ट जी स्पष्ट ही कर देते हैं । जब भी कारपोरेशन के सदस्य सुधार के लिए कहते हैं तो सदस्य कुछ न कुछ परेशानी खड़ा कर देता है,

''मुझे कोई एतराज नहीं है । यदि आप सब लोग अपने घर तुड़वाने को तैयार हों तो मैं सड़कें-नालियां बनवा दूंगा ।'

यशवंत के साथियों ने पूछा--

'मकान कौन बनवाएगा ?

पटवर्धन के पास जवाब हाजिर था --

'आप लोग, कारपोरेशन नहीं बनवाएगा, सोच लीजिए ।'

लोगों ने इसका विरोध किया और आपस में ही फूट के कारण यशवंत उदास

---

१. उदयशंकर भट्ट : 'सागर लहरें और मनुष्य' (१९५५ ई०), पृ०सं० २३६ ।

२ वही, पृ०सं० २३८ ।

लौट आया । साथियों ने कहा -- 'हम कोई मालदार तो हैं नहीं जो कुछ सरकार बनवाए और हम मकान बनायें । मैंने कहा ठीक है कामरेड ।' यशवंत के प्रयत्न से जो चेतना की लहर बरसोवा के लोगों में उठी वह और कहीं से बल न पाकर वहीं समाप्त हो गई ।[1] भट्ट जी ने यशवंत को सहनायक के रूप में चित्रित किया है । इसी से निष्कर्ष निकलता है कि निर्वाचन पद्धति का लाभ हरिजन वर्ग नहीं, बल्कि उच्च वर्ग के लोग प्राप्त कर सकते हैं, क्योंकि उनके पास धन है । अतः कारपोरेशन पर उनका ही आधिपत्य है । देखा जाता है कि संगठित शक्ति न होने के कारण आन्दोलन बिखर जाता है । प्रेमचन्द के 'कर्मभूमि' (१९३२ई०) तथा 'उग्र' के 'मनुष्यानन्द' (१९३५ई०) में हरिजन को संगठित शक्ति के द्वारा ही सफल होता है । 'कर्मभूमि' (१९३२ई०) तथा 'मनुष्यानन्द' (१९३५ई०) के हरिजन वर्ग 'सागर, लहरें और मनुष्य' (१९५५ई०) के हरिजन वर्ग से अधिक संगठित है ।

(घ) पुलिस का अत्याचार

पुलिस ब्रिटिश शासन-व्यवस्था का प्रतीक है । प्रत्येक राजनीतिक व्यवस्था के लिए पुलिस अत्यावश्यक है । पुलिस विभाग की नैतिकता तथा चरित्र से राज्य-व्यवस्था का मूल्यांकन किया जाता है । पुलिस राज्य-व्यवस्था का वह विभाग है, जिसका जनता से सीधा संपर्क होता है । उसकी कार्यप्रणाली दो दिशाओं की ओर होती है । सरकार तथा जनता दोनों के प्रति उसके कर्तव्य निश्चित होते हैं । लेकिन बहुधा राज्य-व्यवस्था तथा जनता में विरोध की स्थिति रहती है और उसी विरोध के फलस्वरूप राजनीतिक प्रणालियों का विकास होता है । सरकार पुलिस द्वारा जनता का दमन करती है और जनता को भी व्यावहारिक रूप से सरकार से संघर्ष लेने के लिए पुलिस

---

1. उदयशंकर भट्ट : 'सागर, लहरें और मनुष्य', (१९५५ई०), पृ०सं० २४० ।

से ही लड़ना पड़ता है । यह अन्तर्विरोधी स्थिति है, जो विदेशी शासन में उत्कट रूप से प्रकट होता है । क्योंकि शासक विदेशी होते थे तथा शोषित देश के नागरिक । पुलिस विभाग का दूसरा प्रमुख कर्तव्य यह है कि अपराध वृत्ति का दमन तथा जनता की सुरक्षा करे । मनोवैज्ञानिक धरातल पर ये दो भिन्न मानसिक प्रवृत्तियां हैं । अत: पुलिस विभाग का सम्बन्ध एक ओर सरकार से तथा दूसरी ओर जनता से होता है । एक ओर चरित्रहीन अपराधी समूह से उसका सम्बन्ध रहता है तथा दूसरी ओर चरित्रवान जनता से । ऐसी महत्वपूर्ण स्थिति में यदि पुलिस विभाग को शासन-व्यवस्था का प्रतीक माना जाय तो अत्युक्ति न होगी । पुलिस शासन-प्रबन्ध का ही एक अंग है,अत: वह प्रधानत: सरकाराभिमुख होती है । शासकों की नीति तथा नैतिकता ही उसके मानदण्ड बन जाते हैं । अंग्रेजों ने साम्राज्यवादी हित की रक्षा के लिए भारतीय जनता का दमन करना आवश्यक समझा । अत: पुलिस विभाग क्रूरता,अत्याचार का प्रतीक बन गया । समाज में विलासी जमींदार तथा भ्रष्टाचारी नौकरशाही का प्रभाव है, अत: पुलिस विभाग भी व्यभिचार,भ्रष्टाचार का केन्द्र बनता गया ।

हिन्दी उपन्यासकारों ने यदि पुलिस को केवल उत्पीड़क के रूप में देखा तो इसका कारण यह है कि पुलिस विभाग वस्तुत: जनता की सुरक्षा न करके उसपर अत्याचार ही करता था ।

प्रेमचन्द के `गोदान`(१६३६ई०) उपन्यास में हरिजनों के ऊपर राजनीतिक अत्याचार को चित्रित किया गया है । इस उपन्यास का प्रमुख पात्र यानी नायक होरी शूद्र है, --`तुम शूद्र हुए तो क्या, हम ब्राह्मण हुए तो क्या, हैं तो सब एक ही घर के ।`[१] होरी भारतीय किसान का प्रतिनिधित्व करता है । भारतीय किसान पर शासक वर्ग किस प्रकार अत्याचार करता है,इसका भी चित्रण प्रेमचन्द ने `गोदान`(१६३६ई०) उपन्यास में किया है ।भारतीय किसान

----

१ प्रेमचन्द : `गोदान` (१६३६ई०),पृष्ठांक २०६ ।

अज्ञेय है । होरी गंवार किसान है । वह निर्भीक तथा बलशाली है, लेकिन पुलिस के सामने उसकी घिग्घी बंध जाती है । क्योंकि किसी व्यक्ति से लड़ना दूसरी बात है, लेकिन किसी व्यवस्था से लोहा लेना सहज नहीं । पुलिस के अत्याचारों का 'गोदान' (१९३६ई०) उपन्यास में चित्रण मिलता है । 'गोदान' (१९३६ई०) में प्रेमचन्द पुलिस के दमन, घूसखोरी और उसके द्वारा किए जाने वाले भ्रष्ट आचरणों का उद्घाटन करते हैं । पुलिस व्यक्ति नहीं एक संस्था है, जिसका न्याय-व्यवस्था तथा सरकार से है । व्यवस्था का इस लम्बी कड़ी में निर्धन को न्याय नहीं मिलता । होरी पुलिस को व्यवस्था का ही एक अंग मानता है... ब्रिटिश शासन-व्यवस्था का । जिसका सम्बन्ध सीधे सरकार तथा न्याय-व्यवस्था से है । जिस पठान के सामने शिष्ट सभ्य पुरुषों की घिग्घी बंध जाती है, उसे होरी एक ही पटकनी में पटक देता है, लेकिन वही होरी गांव में दरोगा के बुलाने पर भय से कांप उठता है । प्रेमचन्द उसके सम्बन्ध में लिखते हैं,--' ऐसा डर रहा था, जैसे फांसी हो जायेगी । धनिया को पीटते समय उसका एक-एक अंग फड़क रहा था । दारोगा के सामने के सामने कछुए की भांति भीतर सिमटा जाता था ।[1] निरपराध होने पर भी वह पेट काट कर्ज लेकर दरोगा को घूस देता है, लेकिन इस अन्याय का विरोध करने का साहस उसमें नहीं है । एक अज्ञेय, निर्भीक किसान इतना अन्याय, अपमान इसलिये सह जाता है, क्योंकि पुलिस तथा न्याय की व्यवस्था इतनी जटिल है कि उसमें निर्धन व्यक्ति को न्याय नहीं मिलता, बल्कि वह तो शोषण के चक्र में फंस जाता है ।

प्रेमचन्द का होरी के प्रति पुलिस के अत्याचार के प्रति समर्थक दृष्टिकोण नहीं है । प्रेमचन्द ने दरोगा के इस अत्याचार के प्रति विरोध प्रकट किया है । 'गोदान' (१९३६ई०) के प्रमुख सभी पात्र इस अत्याचार का विरोध करते हैं,' सहसा दातादीन बोले-- मेरा शराप न पड़े, तो मुंह न दिखाऊं ।
नोखेराम ने समर्थन किया-- ऐसा धन कभी फलते नहीं देखा ।
पटेश्वरी ने भविष्यवाणी की--हराम की कमाई हराम में जायेगी ।
झिंगुरी सिंह को आज ईश्वर की न्यायपरता में सन्देह हो गया था ।भगवान

---

१. प्रेमचन्द : 'गोदान',(१९३६ई०), पृष्ठसं० ६५ ।

न जाने कहां है कि यह अन्धेर देखकर भी पापियों को दराड नहीं देते।[१]
इससे स्पष्ट हो जाता है कि प्रेमचन्द होरी के ऊपर अत्याचार के पक्ष में नहीं है।

होरी के ऊपर हुए पुलिस के अत्याचार को सामाजिक दृष्टि से अनुकूल नहीं कहा जा सकता है। अगर कोई अपराध करता है, तो पुलिस उसको दण्ड दे तो उचित लगता है। पर यदि कोई निरपराध हो तथा पुलिस उसके ऊपर दंड लगाये तो यह बात अनुचित मालूम होती है। `गोदान`(१९३६ई०) उपन्यास में होरी के ऊपर दरोगा बगैर कोई अपराध के दण्ड देता है। होरी तो निर्दोष है। होरी अपने पैसे से गाय खरीद कर लाता है। अगर हीरा उसकी गाय को जहर देकर मार डालता है तो इसमें तो हमें हीरा का दोष स्पष्ट दिखाई देता है होरी का नहीं। होरी का तो गाय मरने से नुकसान नहीं होता है तथा उसके ऊपर ही दण्ड लगाया जाता है। यह दण्ड तो उसी प्रकार प्रतीत होता है कि जैसे `कटे घाव पर नमक छिड़कना`। अतः यह स्पष्ट हो जाता है कि होरी पर पुलिस का अत्याचार संतोषजनक नहीं है। संतोषनारायण नोटियाल के`हरिजन` (१९५६) उपन्यास में हरिजनों के ऊपर राजनीतिक अत्याचार को चित्रित किया गया है।`हरिजन` (१९५६ई०) उपन्यास में शंकर चमार के ऊपर पुलिस के अत्याचारों का चित्रण मिलता है। प्रत्येक राज्य के लिए पुलिस की व्यवस्था आवश्यक होती है, अन्यथा शासन सुचारू रूप से चल नहीं सकता है।पुलिस के माध्यम से ही सरकार अपनी नीतियों के कार्यान्वियन में सफल होती है। यहीं पुलिस के आचरणों का भी प्रश्न उठता है, जो नैतिकता के साथ अनिवार्यतः जुड़ा हुआ है। पुलिस विभाग की नैतिकता व तथा चरित्र से राज्य-व्यवस्था की नैतिकता तथा चरित्र का मूल्यांकन किया जा सकता है। पुलिस का सम्बन्ध सीधे जनता से होता है। उसकी कार्य प्रणाली दुहरी होती है, जिसके एक छोर पर जनता होती है तथा दूसरे पर सरकार। सरकार तथा जनता दोनों के प्रति उसके कर्तव्य निश्चित

----

१ प्रेमचन्द : `गोदान`(१९३६ई०),पृ०सं० ७५।

होते हैं । लेकिन प्राय: शासन-व्यवस्था तथा जनता में विरोध की स्थिति होती है, उसके परिणामस्वरूप विभिन्न राजनैतिक आन्दोलनों का जन्म होता है । सरकार पुलिस से इन राजनैतिक आन्दोलनकारियों या शक्तियों के दमन में मदद लेती है और उन्हें नियंत्रित करके उनपर पुलिस के जोर से शासन करती है । इस प्रकार आम जनता को सरकार के प्रतिनिधि के रूप में पुलिस के साथ मोर्चा लेना पड़ता है । एक गुलाम देश में पुलिस की स्थिति और भी जटिल होती है, क्योंकि शासक विदेशी होता है, जिसके प्रति उसे वफ़ादार रहना है तथा शोषित, देश के नागरिक होते हैं, जो पुलिस के भाई-बन्धु के रूप में उसकी सहानुभूति के हकदार होते हैं । ऐसी दशा में पुलिस के लिए यह काम मुश्किल नहीं कि वह तय कर सके कि उसे किसका साथ देना । स्वतन्त्रता आन्दोलन के दौरान भारतीय पुलिस की लगभग यही स्थिति थी, जब अनेक पुलिस के अधिकारियों ने अपनी-अपनी नौकरियां छोड़कर अपने देशीय-बन्धुओं का साथ राष्ट्रीय आन्दोलन में दिया । लेकिन उसके साथ ही बहुत सारे पुलिस अधिकारी ऐसे भी थे, जो अपनी पदोन्नति के लाभ में देशवासियों पर जुल्म ढाये जा रहे थे और आन्दोलनकारियों पर लाठी बरसाने में भी ज़रा हिचकते न थे । `हरिजन` (१९४६ई०) उपन्यास के पुलिस दारोगा रूपसे ऐसे ही पुलिस अधिकारी का प्रमाण पेश करते हैं ।

`हरिजन` (१९४६ई०) उपन्यास पर महात्मा गांधी के १९४२ई० के राजनीतिक आन्दोलन की छाप मिलती है । १९४२ई० में भारतवासियों ने महात्मा गांधी के नेतृत्व में `भारत छोड़ो` का नारा बुलन्द किया था, उसी आन्दोलन की छाप `हरिजन` (१९४६ई०) उपन्यास पर है तथा इसी आन्दोलन के कारण पुलिस को निरपराध जनता पर अत्याचार करने की छूट मिल जाती है । शंकर चमार भी इस अत्याचार का शिकार होता है ।

जब आन्दोलनकारी ट्रेन उड़ा देते हैं तो पुलिस जनता पर अत्याचार करती है तथा गांव वालों पर जुर्माना लगा देती है । शंकर चमार के ऊपर भी बीस रुपया जुर्माना होता है, हालांकि वह निर्दोष है । वह

शंकर जो कि कजरी के थोड़ा भी गलती करने पर बुरी तरह डांट डपट देता है, पुलिस के सामने थर-थर कांपने लगता है । जब पुलिस शंकर के घर जाता है तो वह बाहर निकल जाता है, उसपर सिपाही कहता है,--'साले हरामजादे[2] । दीवान जा खड़े हुए हैं और तुमको बाहर आने तक नहीं आती जाती ?' रूपये के न देने पर पुलिस शंकर को खूब पिटाई भी करता है । इसके विपरीत पुलिस गांव के सवर्ण हिन्दू पात्रों को छोड़ देता है, पर निरपराध शंकर के ऊपर अत्याचार करने से नहीं चूकता है । सिपाही कहता है, --' क्यों रे, रूपये दाखिल कर दिये ?'

....

'अबे बोलता क्यों नहीं ?' एक पिट्ठू ने पूछा ।

'अभी नहीं सरकार', उसने पिट्ठू के मुंह चिढ़ाकर कहा,

'अबे सरकार क्या तेरे बाप के नौकर हैं जो तेरे घर रूपये वसूल करने आयेंगे ?'

चूंकि पुलिस शासन का ही अंग है, अतः शंकर चमार पुलिस के अत्याचार का विरोध नहीं कर पाता है, क्योंकि पुलिस तथा न्याय विभाग में जटिल समस्यायें इतनी होती है कि उसमें शंकर चमार जैसा निर्धन गंवार व्यक्ति को न्याय नहीं मिल सकता है, बल्कि वह तो शोषण के चक्र में फंस जाता है ।

लेखक का शंकर चमार के ऊपर पुलिस के अत्याचार का समर्थक नहीं है । वह उसका विरोध करता है । जब कजरी भी रूपये देने से इन्कार कर देती है तो वह पुलिस उसे घसीट कर पास के खेत में ले जाता है तथा उसे मारता पीटता है तो उसी समय रमेश नामक युवक उसपर लाठी से वार करता है, जिससे उसकी मृत्यु हो जाती है । इससे स्पष्ट हो जाता है कि संतोष-नारायण 'हरिजन' (१६५६ई०) उपन्यास में पुलिस के अत्याचार का चित्रण करते हैं और समय पाते ही पुलिस के अत्याचार का विरोध भी करते हैं ।

---

१. संतोषनारायण नौटियाल : 'हरिजन'(१६५६ई०),पृ०सं० ११९ ।

२. वही, पृ०सं० ११९ ।

शंकर चमार के ऊपर हुए पुलिस की अत्याचार को किसी भी दृष्टि से उचित नहीं कहा जा सकता है । शंकर निरपराध है । फिर निरपराध शंकर चमार के ऊपर पुलिस का अत्याचार न सामाजिक दृष्टि से अनुकूल कहा जा सकता है और न मानवता की दृष्टि से अनुकूल कहा जा सकता है । पुलिस विभाग का महत्वपूर्ण कर्तव्य है, अपराध वृत्ति का दमन तथा जनता की सुरक्षा का ध्यान । मनोवैज्ञानिक धरातल पर ये दोनों भिन्न प्रवृत्तियां हैं, एक ओर तो पुलिस का सम्बन्ध अपराधियों के दलों से होता है तो दूसरी तरफ चरित्रवान जनता से । ऐसी महत्वपूर्ण स्थिति में पुलिस शासन का प्रतिनिधित्व करने लगे तो इसमें भला क्या आश्चर्य हो सकता है ? वस्तुत: पुलिस प्रशासन का है । एक अंग होती है, अत: वह मुख्यत: सरकार की ओर विशेष ध्यान देता है तथा जनता की ओर कम । शासकों की नीति तथा नैतिकता ही उसके मानदण्ड बन जाते हैं । अंग्रेजों के साम्राज्यवादी हितों की रक्षा के लिए भारतीय जनता का दमन आवश्यक था । अत: पुलिस विभाग क्रूरता तथा अत्याचार के प्रतिरूप बन गया । संतोष नारायण नौटियाल जी ने पुलिस के इसी रूप को ग्रहण किया । क्योंकि तत्कालीन पुलिस विभाग जनता की सुरक्षा न करके उस पर अत्याचार ही कर रहा था । 'हरिजन' (१९५६ई०) उपन्यास में भी पुलिस हरिजनों के ऊपर अत्याचार करती है, पर सवर्ण हिन्दू पात्रों को पैसे के कारण छोड़ देता है । इस प्रकार पुलिस विभाग का निकम्मापन भी हमारे सामने आ जाता है ।

उदयशंकर भट्ट के 'सागर, लहरें और मनुष्य' (१९५५ई०) में हरिजनों के ऊपर पुलिस के अत्याचार का चित्रण मिलता है । इस उपन्यास में उदयशंकर भट्ट कलात्मक ढंग से पुलिस के दमन और भ्रष्टाचार को उद्घाटित करते हैं । दुर्गा, माणिक, सागी सब एक साथ रहते हैं । एक दिन सागी सो जाती है तो दुर्गा उसे ढूंढ लाने को कहती है तो माणिक इंकार देता है तो वह अकेले ही साथी को खोजने निकल पड़ती है । इतने में माणिक का दोस्त कान्तिलाल, जो कि बम्बई सम्पलाल कम्पनी में काम करता है, उसे मिल जाता है । दुर्गा उससे सब घटना

बता देता है तथा मानो को खोजने का अनुरोध करता है तो इस पर कान्तिलाल कहता है कि वह बम्बई में न जाने कहां होगा ? सुबह पुलिस में पता करायेगा, 'दुर्गा की आंखों में आंसू छलछला आए । वह जमीन पर बैठ गई । लोग तमाशा जानकर इकट्ठे हो गए । लो पूछने क्या बात है ? कोई कहता-- उड़ाकर लाया है साला । किसी ने व्यंग्य किया, मियां-बीबी का खट-पट है ।
'साला इससे बदमाशी करना चाहता है और वह नहीं जाना चाहती ।'
कान्तिलाल चुप था । किस-किसको जवाब देता । स्वयं दुर्गा को नहीं मालूम हुआ कि यह क्या हो रहा है, लोग क्या कह रहे हैं । वह उठी और कान्ति का हाथ पकड़ कर चल दी । तभी एक ने आवाज कसी --'गुजराती छोकरा एक कोलिन कू भगाताय ।'
यह सुनते ही लोग चिल्लाए और पुलिस आ गई । उसने ले जाकर पास के थाने में दोनों को बन्द कर दिया । पुलिस ने कान्ति और दुर्गा के बयानों पर भरोसा न करके उन्हें सवेरे तक के लिए थाने की कोठरी में डाल दिया ।

दुर्गा बड़ी को तो जैसे काठ मार गया । उसकी बोलती बन्द हो गई । वह सोच रही थी कि माणिक सुनेगा तो क्या कहेगा । कान्तिलाल बहुत परेशान था । क्या करे, क्या न करे । उसके पास फूलों का एक गजरा था, वह पुलिस ने छीन लिया और दोनों को अलग-अलग कोठरियों में बन्द कर दिया ।'[१]

उदयशंकर भट्ट का अत्याचार के प्रति दृष्टिकोण सहानुभूति पूर्ण नहीं है । वह कहीं भी पुलिस के अत्याचार का विरोध अपने हरिजन पात्र के द्वारा भी नहीं करवाता । दुर्गा चुपचाप पुलिस के सब अत्याचार को सह लेती है, पर बोलती नहीं है । पुलिस के खिलाफ दुर्गा का विरोध न करना इस बात का सूचक है कि लेखक पुलिस के द्वारा हरिजन के ऊपर किए गए अत्याचार से असहमत नहीं है

---

१ उदयशंकर भट्ट : 'सागर, लहरें और मनुष्य' (१९५५ई०), पृ०सं० १५५ ।

पुलिस ने दुर्गा कोलिन के ऊपर जो अत्याचार किया है, क्या वह उचित है ? पुलिस का हरिजनों के ऊपर अत्याचार करना उचित नहीं लगता है । आज हरिजन वर्ग के लिए सम्पूर्ण क्रान्ति के नारे लगाये जाते हैं तथा दूसरी ओर हरिजन वर्ग का उत्पीड़न भी किया जाता है । वास्तव में हरिजन वर्ग के लिए सम्पूर्ण क्रांति के नारे का क्या अर्थ है ? यदि सम्पूर्ण क्रांति हमारी जनता के दृष्टिकोण में बुनियादी परिवर्तन नहीं लाता और हमारे समाज के हरिजन वर्ग की स्थिति में महत्वपूर्ण सुधार नहीं होता तो यह निरर्थक है । इसमें कोई सन्देह नहीं कि हरिजन वर्ग ही सर्वाधिक पीड़ित है । हरिजन लोग हमारी कुल जनसंख्या का १४.६० प्रतिशत है । इस प्रकार के ये भारत की जनसंख्या के पांचवे हिस्से से कम है । आजादी के २६ वर्षों में इनके रहन-सहन की हालत में कोई सुधार नहीं हुआ है और न समाज में उनकी स्थिति में ही कोई सुधार हो सका ।

इन्द्र विद्यावाचस्पति के 'अपराधी कौन' (१६५४ई०) उपन्यास में पुलिस के अत्याचारों का चित्रण हुआ है । रोशन कुम्हार के ऊपर पुलिस किस प्रकार ज्यादती करती है तथा रोशन कुम्हार से गलत बयान थानेदार के सामने दिलवाती है, इसी का चित्रण इन्द्र विद्यावाचस्पति के 'अपराधी कौन' (१६५४ई०) उपन्यास में मिलता है । चार लड़के बशीर, उम्मेद, गेंदा और सिद्दू एक बूढ़े का नारंगी लूटने की सोचते हैं । वह अभागा बूढ़ा रोशन कुम्हार की दुकान के सामने नारंगी की फल्ली रखकर बैठा है । लड़के व्यूह रचना कर बूढ़े की फल्ली की नारंगियों को लूटने का ढंग बना लेते हैं । बूढ़े से कुछ दूरी पर सिद्दू और गेंदा आपस में में लड़ने लगते हैं । गेंदा ने सिद्दू की बहिन को गाली दी तो सिद्दू गेंदा की मां को गाली देता है । इसपर सिद्दू के मुंह पर गेंदा चांटा रसीद कर देता है । दोनों के चिल्लाने से फल्लीवाले का ध्यान खिंच जाता है। गेंदा भाग कर फल्ली उलट देता है । इतने में नारंगी उठाने के लिए बशीर तथा उम्मेद भी आ जाते हैं तो वे रोशन कुम्हार की दुकान से हंडिया उठा लाते हैं ।

जब रोशन चोर चोर चिल्लाता है तो वे दोनों हंडिया फेंक कर भाग जाते हैं तथा पुलिस को रोशन कुम्हार के ऊपर अत्याचार करने का मसाला(साधन) मिल जाता है । जब याकूब सिपाही उम्मेद जो कि वास्तविक अपराधी नहीं है, पकड़ लेता है तथा उसकी पिटाई करता है । सिपाही रोशन कुम्हार को भी धमकाता है कि जैसा वह कहे, वह वैसा ही थानेदार के सामने बयान दे वर्ना खैर नहीं है । रोशन कुम्हार भी बेचारा परिस्थितिवश सिपाही के कहे के अनुसार बयान देता है । याकूब सिपाही ने जो रपट लिखवाई, उसका सारांश निम्नलिखित था, `लड़का जो घायल पड़ा है सब्जी मण्डी की ओर से भागा आ रहा था । उसके पीछे चोर-चोर चिल्लाते हुए बहुत से लोग आ रहे थे । मैंने उसे दूर से देखा । बेतहाशा जोर से भाग रहा था । भागते -भागते उसके पांव में ठोकर लग गई और यह गिर पड़ा, जिससे उसके सिर में चोट आ गई । इतने में पीछे से भागते हुए लोग आ गये, जिनमें यह आदमी भी था, जो अपना नाम रोशन और पेशा कुम्हार बतलाता है । इसने मुझसे कहा कि इस लड़के ने मेरी दुकान के सामने एक बूढ़े की नारंगियों की फल्ली उलट दी थी और दुकान से एक हंडिया लेकर भागा था । मैंने देखा तो इसकी जेब में उस वक्त भी नारंगियां भरी हुई थीं । तब मैं इसे तांगे में डालकर थाने में ले आया हूं । रोशन कुम्हार भी मेरे साथ ही आया है वह अलग बयान देगा ।`[1]

इसके बाद रोशन कुम्हार का भी बयान होता है । रोशन कुम्हार सिपाही के कहे के अनुसार बयान देता है, --`रोशन कुम्हार का भी बयान हुआ । सिपाही ने रास्ते में ही उसे खूब सिखा-पढ़ा दिया था । चोर, गेन्दा और तिहूं कहानी में से बिल्कुल निकाल दिये गये, क्योंकि वह हाथ से निकल चुके थे । जो आसामी हाथ में था, उसी के गले में रस्सी ठीक बंध सकती थी । रोशन ने भी सिपाही के अनुकरण में फल्ली उलटने, हंडिया लेकर भागने और ठोकर

---

१ इन्द्र विद्यावाचस्पति : `अपराधी कौन` (१९५९ई०), पृ०सं० २९ ।

लाकर गिरने आदि के सब गुनाहों की माला उम्मेद के गले में ही पहिना दो[1]।"

वैसे तो पुलिस का आतंक समाज के सभी वर्गों पर रहता है, पर पुलिस भी अपने से बलवानों के साथ नहीं लड़ती। वह तो हरिजनों को ही सता कर अपने कर्तव्य की इतिश्री समझ लेती है। इन्द्र विद्यावाचस्पति का 'अपराधी कौन' (१९५५ई०) में रोशन के ऊपर हुए पुलिस के अत्याचार के प्रति समर्थक दृष्टिकोण नहीं है। यह तो पुलिस का सरासर अन्याय है कि स्वतंत्र भारत में भी हरिजन अपने स्वतंत्र विचार सामने न रख सके। लेखक ने पुलिस को इसीलिए यमराज से भी अधिक भयंकर निरूपित किया है, --"पुलिस का सिपाही भगवान से अधिक बलवान और यमराज से अधिक भयंकर है[2]।" लेखक ने रोशन हरिजन पात्र को पुरातन-परम्परा के ही रूप में चित्रित किया है। लेखक ने रोशन कुम्हार के अन्दर विद्रोह की भावना नहीं दिखाई है। लेखक सवर्ण हिन्दू पात्र के द्वारा तो पुलिस के अत्याचार का विरोध करता है, पर हरिजन पात्र में कोई हलचल नहीं दिखाता। रोशन का पुलिस का कहना मान लेना तो ठीक है, लेकिन रोशन कुम्हार पुलिस के अत्याचारों का शिकार होकर भी कुछ पुलिस विभाग से विरुद्ध नहीं कहता है। अत: हम कह सकते हैं कि रोशन हरिजन एक निर्जीव पात्र है, जिसे कठपुतली की तरह पुलिस जिस तरफ घुमाना चाहती है, वह उसी ओर घूम जाता है।

रोशन कुम्हार के ऊपर हुए पुलिस के अत्याचार को हम न्याययुक्त तथा तर्कसंगत नहीं ठहरा सकते हैं। एक तरफ उसकी (हंडिया फूटने से) आर्थिक हानि होती है तो दूसरी तरफ पुलिस भी उसे परेशान करती है तथा मारपीट की धमकाती है। यह कहां तक उचित है कि एक मरे हुए आदमी को और भी मारा जाये? रोशन कुम्हार तो परेशान है ही, उसपर से यमदूत

---

१. इन्द्र विद्या वाचस्पति : 'अपराधी कौन' (१९५५ई०), पृ०सं० २६।

२. वही, पृ०सं० ३६।

लोगों का परेशान करना मानवतावादी दृष्टि से उचित नहीं कहा जा सकता है।

इन्द्र विद्यावाचस्पति ने पुलिस को उत्पीड़क के रूप में देखा है, क्योंकि पुलिस विभाग हरिजनों का सुरक्षा न करके उनपर अत्याचार ही करता है।

रांगेय राघव के `कब तक पुकारूँ' (१९५७ई०) में हरिजनों के ऊपर अत्याचार का चित्रण मिलता है। इस उपन्यास का नायक सुखराम नट है। नट जाति पर किस प्रकार अत्याचार किया जाता, इसका चित्रण हुआ है। `कब तक पुकारूँ' (१९५७ई०) में पुलिस के अत्याचार का खुलकर चित्रण हुआ है।
दरोगा कहता है,--`साले नट हैं ?'
कारिन्दा ने कहा : हां हुजूर।'
इशारा हुआ इसीला आगे आया। झुककर सलाम किया।
दारोगा ने कहा : `क्यों बे, यहां तुम लोग चोरी -चोरी तो नहीं करते ?'[1]

दरोगा के इस तर्क का इसीला नट विरोध करता है वह विद्रोहपूर्वक कहता है,--`नहीं हुजूर। हम तो मेहनत करके पेट पालते हैं। और कमीन लोग हैं, माई-बाप दरबार की से अपना हक-पानी मांगते हैं। हम चोरी क्यों करने लगे ?' जबर्दस्ती दरोगा नट को पिटवाता है। बिना कारण, बिना अपराध के। वह नट पर झूठा दोषारोपण भी करता है। कारिन्दा दारोगा से कहता है,--`साला चोरी करने आया था, बछिया खोल ही ली थी। पकड़ लिया गया। हुजूर इसे जरा अच्छा सबक दे दें, ताकि इसे याद आ जाये कि यह है कौन, इसकी हैसियत क्या है ? इसने पंडित बनवारी को गाली दी है हुजूर। अभी तो महाराज का राज है, नटों का तो नहीं हो गया ?'[2] लेखक नट के ऊपर होने वाले अत्याचार से असहमत है। वह विरोध हरिजन पात्रों के ही द्वारा

---

१. रांगेय राघव : `कब तक पुकारूँ' (१९५७ई०), पृ०सं० ४० ।
२. वही, पृ०सं० ४४ ।

करवाता है । प्यारी नटनी पुलिस के अत्याचार से डरती नहीं है । वह गोमों से कहती है, "तू बनिया बामन बन, ठाकुर बन पर मैं तो नटिनी की नटिनी हूं ।"[1]

नट के ऊपर झूठमूठ के आरोप लगाकर उनपर अत्याचार अनुचित लगता है । पुलिस भी नटों के ऊपर इतना अत्याचार करती है कि जबरन नट लोगों के द्वारा बड़े बनियों के यहां चोरी करवाती है, तथा बादमें बड़ नटों को फंसा कर उनको पीटती है, --" मेरे पड़ोसी करनट खूब मस्त रहते । क्योंकि वे मेरे साथ थे और लखमनां की दया थी, उनसे कोई कुछ न कहता। बल्कि दरोगा जी को जरूरत पड़ती तो इनमें से किसी को बुला लेते और सिपाहियों के जरिये समझा -बुझाकर बनियों की चोरी करवा देते । माल बंट जाता । गांव बाहर बामड़ के पीछे कुएं का भी एक अड्डा पुलिस ने बनवा दिया था, जिसका माल का तीन चौथाई दरोगा जी के हाथ में आ जाता था ।"[2]

पुलिस के अत्याचार जो नटों के ऊपर किये जाते हैं, उससे मैं असहमत हूं । पुलिस इनको नीच जाति का समझकर इनके साथ नीचता का जो व्यवहार करती है, वह गैर कानूनी है । किसी भी कानून में यह नहीं लिखा है कि इनको सताया जाये । बल्कि सरकार ने तो स्वतंत्रता बाद अत्याचार करने वाले को अपराधी घोषित किया है । पर ये कानून अपनी जगह है । आज भी पुलिस के सिपाही बिना कारण हरिजनों को नुकसान पहुंचाते रहते हैं । दरोगा के द्वारा नट पर चोरी करने के लिए दबाव डालना इस बात को साबित कर देता है कि चोरी में पुलिस का भी हाथ होता है । यह यह भी सिद्ध करता है कि कानून ही कानून का भक्षक बन गया है । साथ ही साथ यह पुलिस विभाग के निष्क्रियता का प्रतीक है ।

---

१. रांगेय राघव : `कब तक पुकारूं` (१९५७ई०), पृष्ठ० ५७ ।

२. वही, पृष्ठ० ६६ ।

दयाशंकर मिश्र के `छोटी बहू`(१९५८ई०) उपन्यास में सिंघाड़ी डोम की बेटा के ऊपर पुलिस के अत्याचार को चित्रित किया गया है। पुलिस किस प्रकार हरिजनों को परेशान करता है, `छोटी बहू`(१९५८ई०) उपन्यास में इसका चित्रण मिलता है । सिंघाड़ी डोम का बेटा है । सिंघाड़ी, राजेन्द्र से कहता है, --`बाबू । मेरे बापू जाति के डोम थे ।`[1] सिंघाड़ी पुलिस के सिपाहियों से बहुत डरता है,--`देखो बाबू । कैसा हाल किया है मेरा पुलिस के इन कसाइयों ने ।`[2] सिंघाड़ी का बाप चोरी करते समय पकड़ा जाता है तो वह जेल में बंद हो जाता है । डोम का बेटा सिंघाड़ी बाजार में पुराने कपड़े बेचना शुरू कर देता है । एक दिन उसे वही सिपाही दिखाई दे जाता है जो उसके बापू को पकड़ कर लाया था । दोनों सिपाही उसका पीछा करने लगता है । सिंघाड़ी राजेन्द्र से कहता है,--`हाय बाबू न जाने कब से ये दोनों सिपाही मेरा पीछा कर रहे थे । एक बारु उनमें से एक सिपाही सामने आ खड़ा हुआ । बोला--`कहां चलेगा ?` सुनकर मेरा मुंह सूख गया ।
तभी दूसरा बोला --`फोपड़ी तो जानता है फिर यहां क्यों पीछे पड़ा है ? चल आ ।` सुनकर वह कसाई मुझे घूरता-घूरता अपने साथी के साथ चला गया ।`[3]
रात को वही सिपाही आते हैं तथा सिंघाड़ी को पकड़ कर ले जाते हैं । जब वह चिल्लाता है कि `बचाओ बचाओ ।` यह सुनकर जब गांव वाले आते हैं तो पुलिस के लोग उन सब को समझा देते हैं कि,`छोकरा चोरी करके भागा है । कोतवाली में बुलाया है । चोरी के कपड़े पकड़े गए हैं । रात को छिपकर बकुड़ा चलाता है ।`[4] सिंघाड़ी कहता है यह सब झूठ है व पर उसकी बात कोई नहीं

---

१. दयाशंकर मिश्र : `छोटी बहू `(१९५८ई०),पृ०सं० ७४ ।

२. वही, पृ०सं० ७६ ।

३. वही, पृ०सं० ८१ ।

४. वही, पृ० सं० ८२ ।

सुनता । दयाशंकर मिश्र जी ने 'छोटी बहू' (१९५८ई०) उपन्यास में पुलिस के शोषण का यथार्थ स्वरूप हमारे सामने रखा है ।

लेखक का 'छोटी बहू' (१९५८ई०) उपन्यास में हरिजनों के प्रति दृष्टिकोण सुधारपूर्ण रहा है । पुलिसों के अत्याचार के विरुद्ध लेखक ने सिंघाड़ी पात्र में पर्याप्त चेतना दिखाई । दयाशंकर मिश्र ने सिंघाड़ी पात्र में विद्रोह की भावना को उजागर किया है । हम कह सकते हैं कि दयाशंकर मिश्र जी का 'छोटी बहू' (१९५८ई०) उपन्यास मे दृष्टिकोण हरिजनों के उत्थान का रहा है, पतन का नहीं ।

पुलिस ने सिंघाड़ी के ऊपर जो अत्याचार व किया है, उसको हम किसी प्रकार युक्तिसंगत नहीं कह सकते । पुलिस तो जनता के अधिकारों की सुरक्षा के लिए होती है न कि उनका शोषण करने के लिए । 'छोटी बहू' (१९५८ई०) उपन्यास से पुलिस के दो रूप का चित्रण मिलता है, पहला रूप तो सुधारवादी है । यह ठीक ही है कि वेश्यावृत्ति का समाज में प्रचलन न होना चाहिए । वेश्यावृत्ति के प्रचलन से समाज के नैतिक मूल्यों का विघटन होता है तथा समाज का पतन होताहै । अतः पुलिस का कर्तव्य है कि वह ऐसे विघटनकारी तत्वों को रोके । 'छोटी बहू' (१९५८ई०) उपन्यास में पुलिस सिंघाड़ी को वेश्यावृत्ति करने से रोकती है, पर दूसरी तरफ पुलिस के जवान उस पर बलात्कार करने के लिए चोरी का झूठा इल्जाम लगाकर उसे अंधेरी कोठरी में ले जाते हैं । यह पुलिस के चित्रण का दूसरा पक्ष है, जो पुलिस विभाग के अत्याचार पक्ष को उद्घाटित करता है तथा पुलिस विभाग के प्रति घृणा की भावना को उभारता है । सिंघाड़ी, राजेन्द्र से कहती है,--'मैंने न तो चोरी की थी न झगड़ा चलाया था जो कोतवाली क्यों ले जाते ?'

'फिर कहां ले गए ?'

'टैक्सी में डालकर न जाने कहां कैसे खण्डहर में ले गए । उस दिन अमावस की काली रात थी । अपनी आंखों से अपना हाथ तक न सूझता था । जब मैं किसी तरह नहीं मानी तब इतना पीटा कि बेहोश हो गई फिर... फिर... बाबू ।' कहती-कहती वह रो पड़ी ।[१] समाज में क्या सिंघाड़ी के प्रति पुलिस जो अत्याचा

१. दयाशंकर मिश्र : 'छोटी बहू' (१९५८ई०), पृष्ठ०८३।

करती है, वह उचित है ? निश्चय ही इस प्रश्न का उत्तर नकारात्मक दिया जा सकता है । अगर पुलिस कुछ सिपाही पर बलात्कार न करती तथा वेश्यावृत्ति को खत्म करने के लिए जोर डालती तो हम निश्चय ही पुलिस के कदमों की प्रशंसा करते । पर पुलिस के अत्याचार को देखकर ऐसा लगता है कि निर्बलों को सताना पुलिस का आजन्म अधिकार है । पुलिस भी जब बड़े लोगों का कुछ बिगाड़ नहीं पाती तो वह छोटी जाति पर ही अपना प्रभाव दिखाती है । जिस प्रकार `गोदान` (१९३६ई०) में होरी के ऊपर थानेदार अत्याचार करता है उसी समान `छोटी बहू` (१९५७ई०) उपन्यास में भी पुलिस सिपाही पर अत्याचार करती है ।

कमल शुक्ल के `पराजित`(१९५८ई०) उपन्यास में बलवन्ती चमारिन के प्रति चोखू के ऊपर राजनीतिक अत्याचार को चित्रित किया गया है । पुलिस का अत्याचार भी तो उसी का एक अंग है ।`पराजित` (१९५८ई०) उपन्यास में पुलिस किस तरह हरिजनों को परेशान करती है,उसका चित्रण मिलता है । गर्मी के कारण चोखू अपने निकटवर्ती पार्क में अपनी बच्चों के साथ सो रहा था,"सहसा उसके कन्धे पर एक डंडा पड़ा और वह चौंक कर उठ बैठा । उसने देखा एक तीन फिते का चीफ और तीन कांस्टेबिल उसको घेरे खड़े हैं । उनमें से एक कह रहा था--`क्यों बच्चू । इस तरह क्या बच जाओगे ? अभी-अभी टाट-पट्टी मुहल्ले में बैठे मजा उड़ा रहे थे हम लोगों के गश्त की सीटी सुनी तो दरिया,मोमबत्ती और माचिस वहीं छोड़कर भाग खड़े हुए, और यहां आकर ऐसे पड़ रहे, जैसे बहुत देर से सो रहे हो ?` पुलिस का आतंक तो सभी वर्गों पर कुछ न कुछ होता है, पर हरिजनों के ऊपर उनकी विशेष कृपादृष्टि रहती है ।

---

१. कमल शुक्ल : `पराजित`(१९५८ई०),पृ०सं० २०१ ।

पुलिस जोखू से कहती है,--" बड़ साले, अभी बंद करता हूं , हवालात में फिर यह जब लाल लाल की हवेली में पहुंचोगे तो मालूम पड़ जायेगा कि सेंध कैसे लगाई जाती है ?"[1] 'पराजित' (१६५८ई०) उपन्यास में पुलिस के कठोर रूप का खुलकर चित्रण किया गया है । पुलिस वाले जोखू हरिजन की इतनी पिटाई कर देते हैं कि उसकी मृत्यु तक हो जाती है,--" जोखू का मृत शरीर चुर्दाखाने में रख दिया गया था । वह एक सफेद चादर से ढंका था ,जिसपर मैल की कतील हुई मक्खियां भिन भिना रही थीं ।"[2]

लेखक का हरिजनों के ऊपर पुलिस के अत्याचार के प्रति सहानुभूतिपूर्ण दृष्टिकोण नहीं है । वह हरिजन के ऊपर हुए अत्याचार का कहीं भी विरोध नहीं करता है । ऐसा लगता है कि हरिजनों के उत्थान का वह विरोधी है । अगर कमल शुक्ल हरिजनोत्थानवादी लेखक होते तो वे अवश्य जोखू हरिजन के ऊपर हुए पुलिस के नृशंसतापूर्ण अत्याचार का विरोध अन्य पात्रों के द्वारा कराते । कमल शुक्ल ने हरिजन पात्र का चित्रण पुरातन लेखकों की ही तरह किया है । लज्जाराम शर्मा ने जैसे हरिजन पात्र को बेजनादान बनाकर चित्रित किया है, वैसे कमल शुक्ल ने जोखू का 'पराजित' (१६५८ई०) उपन्यास में चित्रण किया है ।

जोखू के ऊपर पुलिस ने जो अत्याचार किया है, वह तर्कसंगत नहीं मालूम होता । जोखू तो निरपराध है । जबर्दस्ती पुलिस ने उसको सताकर अपने विभाग के निष्क्रियता का ही परिचय दिया है । समाज में अपराध कोई करता है पर पुलिस दंड हरिजनों को ही देती है । जोखू भी पुलिस की इसी भावना का शिकार बनता है । पुलिस तो असली अपराधी का पता नहीं लगा पाती तो वह हरिजनों को ही जेल में बन्द कर समाज में यश लूटती है । 'पराजित' (१६५८ई०) उपन्यास में चोरी कोई दूसरा व्यक्ति

---

१. कमल शुक्ल : 'पराजित' (१६५८ई०), पृ०सं० १०१ ।

२. वही, पृ०सं० ११६ ।

करता है, पर पुलिस जोखू को पकड़ कर समाज में अपना धर्म प्रकट करने की कोशिश करती है तथा उसकी पिटाई अपराध में करता है । जोखू को पीटना बिल्कुल गैर कानूनी है । आजकल पुलिस तो रिपोर्ट लिखाने वाले को ही बंद कर देती है । पुलिस वाले अक्सर हरिजनों के ऊपर अत्याचार करने वाले के विरुद्ध रिपोर्ट नहीं दर्ज करते हैं । रिपोर्ट दर्ज भी कर लेते हैं तो उनसे घूस मांगते हैं और घूस न देने पर उन्हें ठोंक पीटकर अपराध स्वीकार कराने के लिए फांसी और इस तरह चालान कर देने की धमकी देकर अपना उल्लू मतलब गांठते हैं । पुलिस के सब अफसर भी व्याप्त तथा रिश्वती होते हैं । आज की पुलिस समाज में व्याप्त भ्रष्टाचार तथा अपराध का उन्मूलन करने में सफल नहीं हो पाई है ।

जोखू की मृत्यु यह प्रकट करती है कि हरिजनों के प्रति सवर्णों में कैसी भावना है ? यदि चोरी या अन्य अपराध तक में कोई ऊंची जाति का हिन्दू पकड़ा जाता है तो पुलिस उसके साथ शायद ही कभी इस प्रकार का अमानवीय व्यवहार करता है । ऊंची जाति के हिन्दू पुलिस अधिकारी और कान्स्टेबल केवल गरीब और नीची जाति के लोगों को कुचल कर ही अपने दम्भ,क्रोध और पूर्वाग्रहों को प्रकट करते हैं । इस प्रकार की स्थिति में हरिजन सर्वथा निस्सहाय है । जब तक सवर्ण के दिल की सफाई नहीं की जाती, तब तक केवल बदली करके या निलंबित करके कानून के इन प्रहरियों के विकृत मस्तिष्क को ठीक नहीं किया जा सकता । यहां भी युवा वर्ग को ही नया नैतिक वातावरण पैदा करना होगा, उन्हें पददलित जनता को इतनी शक्ति देनी होगी कि वे अन्याय का प्रतिरोध कर सकें । उन्हें ऊंची जाति के हिन्दू पापियों को यह अनुभव कराना होगा कि वे दोषी हैं, वे अपराधी हैं ।

जयप्रकाश आन्दोलन ने हजारों युवकों को आकृष्ट किया है । इस आन्दोलन को इन युवकों में असमानता के विरुद्ध घृणा कूट कूट कर भर देनी होगी । जिन लोगों को इन हजारों वर्षों से पददलित करते

आये हैं, उनके प्रति इन युवकों में सच्ची हमदर्दी की भावना पैदा करनी होगी। बिना इसके सामान्य जनता के दृष्टिकोण में बदलाव कैसे आ सकता है ?

यज्ञदत्त शर्मा के 'चौथा रास्ता' (१९५८ई०) उपन्यास में पुलिस के अत्याचार को चित्रित किया है। प्रस्तुत उपन्यास में पुलिस कनकू तथा रामसिंह चमार के ऊपर अत्याचार करती है। हरिजन को निर्बल समझ कर पुलिस उनपर अकारण अत्याचार करता है। दरोगा जी कनकू से कहते हैं,--'अबे कनकू। वह दिन भूल गया जब तुझ पर सप्ताह में बार बार पुलिस की बेंतें फ़क़त० पड़ती थीं। खेत कोई काटता था[1] और पकड़ कर तुझे बुलाया जाता था और दीवान जी का पूजा भी करता था।'

शर्मा जी का कनकू के ऊपर हुए पुलिस के अत्याचार के प्रति सहानुभूति पूर्ण दृष्टिकोण है। वह हरिजनों के ऊपर पुलिस के द्वारा किए जाने वाले अत्याचार का विरोध करते हैं। कनकू चमार को लेखक ने अत्याचार के विरुद्ध विद्रोह करते दिखाया है। कनकू चमार, दरोगा जी से कहता है,--'दरोगा जी। आपने पुत्र[2] की पढ़ाई से जा समय मेरी जान बचाई थी लाखों में आपका एहसान मानता हूँ।'

भारतीय शासन-व्यवस्था में पुलिस का बहुत महत्वपूर्ण तथा विशिष्ट स्थान है। पुलिस ही तो एकमात्र विभाग है कि जहाँ पर लोग अपने अपने ऊपर होने वाले अत्याचार की रिपोर्ट लिखवाते हैं तथा पुलिस विभाग जनता की सहायता करता है। वर्तमान पुलिस पर अंग्रेजी राज की पुलिस की छाप है। आज पुलिस पर धनी लोगों का रौब छाया हुआ है। वे धनियों की ही बात सुनते हैं तथा उनके कहने पर हरिजनों को थाने में बिना अपराध बन्द करके मारते हैं। हरिजन वर्ग गरीब हैं, अशिक्षित हैं। इसीलिए पुलिस विभाग

---

१. यज्ञदत्त शर्मा : 'चौथा रास्ता' (१९५८ई०), पृ०सं० ३६ ।

२. वही, पृ०सं० ३७ ।

इनके कार्यों के प्रति सदा लापरवाही दिखाता है । किसी हरिजन को कोई जिन्दा जला भी देता है तो पुलिस वाले कुछ नहीं बोलते । पुलिस वाले उल्टे हरिजनों को परेशान करते हैं । गांव या शहर में कोई चोरी हुई कि नहीं कि पुलिस वाले बस हरिजनों को बंद कर देते हैं, चाहे वह अपराधी हो या न हो । ब्रिटिश समय भी यही होता था और आज भी यही होता है । आज भारत स्वाधीन है, पर हरिजन वर्ग अभी तक पुलिस के अत्याचार से मुक्त नहीं हो पाया है । पुलिस वाले हरिजनों को शायद इसलिए भी परेशान करते हैं कि ये नीचे वर्ण के हैं तथा अशक्त हैं । जब तक हरिजन वर्ग संगठित होकर पुलिस के अत्याचार का विरोध नहीं करता, वह तरक्की नहीं कर सकता और शोषण को समाप्त कर सकता है ।

रामदरश मिश्र के 'पानी के प्राचीर' (१९६१ई०) उपन्यास में हरिजनों के ऊपर राजनीतिक अत्याचारों का चित्रण मिलता है। वर्तमान प्रजातन्त्र युग में भी पुलिस हरिजनों के ऊपर किस प्रकार कठोर अत्याचार करती है, उनका शोषण करती है, इसका चित्रण 'पानी के प्राचीर' (१९६१ई०) उपन्यास में रामदरश मिश्र ने चित्रित किया है । चिंदिया चमाइन है, "तीन चार सिपाहियों के साथ दारोगा जी बैजनाथ को घेरे हुए हैं और बैजनाथ हक्का-बक्का सा अपने सिंहासन पर बैठा है । उसी के बगल में चिंदिया चमाइन सहमी सकुची-सी मुंह गड़ाए बैठी है ।"[1]

इस चिंदिया चमाइन के ऊपर दरोगा अत्याचार करता है,--"दरोगा चुन-चुन कर गालियां दे रहे हैं । कभी बैजनाथ को, कभी चिंदिया को । वैसी गालियां केवल दारोगा लोगों के ही शब्दकोष में होती है । कभी एकाधधौल बैजनाथ को जमा देते हैं, कभी अमनाधौल चिंदिया की छाती में कोंच कर पीछे ढकेल देते हैं ।"[2] 'पानी के प्राचीर' (१९६१ई०) उपन्यास में

---

१. रामदरश मिश्र : 'पानी के प्राचीर' (१९६१ई०), पृ०सं०५९ ।
२. वही, पृ०सं० ५९ ।

रामदरश मिश्र पुलिस के अत्याचार व घूसखोरी को कलात्मक ढंग से उद्घाटित करते हैं,--'दारोगा सिंदिया का चोर पकड़ा, एक लात जमा कर उसे टांग पर सुला दिया, फिर दोनों हाथों से उसका गला दाब कर झकझोरने का अभिनय करता[1] हुआ अपनी अंगुलियों को ऊपर उठाकर उसके गालों को थपक करता रहा ।' दरोगा की दृष्टि[2] में भी बमाइन नाम है,--'क्यों भाई बेबुआ सम्पन्न होकर बमाइन रखता है ।' पुलिस का दरोगा घूस भी लेना चाहता है । वह मुखिया को बुलाकर डांटता है । मुखिया के विनती करने पर,-'सरकार उसके पास रुपये हैं हुजूर[3], पचास,सत्तर ले लीजिए । उसका भी इन्तजाम यह मुश्किल से कर पायेगा ।' दरोगा कहता है,--' अरे भाई जो भी हो, ले आओ मैं क्या कहूं[4] ।' दरोगा आखिर घूस लेकर ही मानता है, 'मुखिया ने दारोगा के पास जाकर उसके हाथ में पचास रुपये चुपके थमा दिये । दरोगा ने एक प्रश्नसूचक दृष्टि से उसे[5] देखा । मुखिया ने मुस्करा कर कहा --'हुजूर यह भी बड़ा मशक्कत से निकला है ।'

(३०) राष्ट्रीय आन्दोलन

एक बात महत्वपूर्ण है कि हिन्दी उपन्यासों में राष्ट्रीय आन्दोलन का चित्रण ब्रिटिश सरकार तथा राष्ट्रीय कांग्रेस के संघर्ष के यथातथ्य रूप में चित्रित नहीं किया गया, वरन् विभिन्न माध्यमों से लेखकों ने राष्ट्रीय विचार तथा आन्दोलन को अभिव्यक्ति दी है । उसे प्रतीकात्मक

---

१. रामदरश मिश्र : 'पानी के प्राचीर',(१९६१ई०),पृ०सं०५० ।

२. वही, पृ०सं० ५० ।

३. वही, पृ०सं० ५३ ।

४. वही, पृ०सं० ५३ ।

५. वही, पृ०सं० ५३ ।

योजना भी करते हैं । `रंगभूमि`(१९२५ई०) में मि० जानसेवक का मिल ब्रिटिश सरकार का प्रतीक है । ब्रिटिश सरकार से कहीं भी सीधा संघर्ष नहीं होता है, परन्तु उसके संरक्षण में चलने वाली संस्थाओं तथा व्यवस्था से होता है । लेकिन संघर्ष की उत्कट स्थिति में ब्रिटिश सरकार की पुलिस तथा फौज यथा-कथाकथित संस्थाओं तथा व्यवस्था की सहायता के लिए पहुंच जाती है । प्रेमचन्द ने बहुधा इस टेकनीक को अपनाया है । इससे न केवल राष्ट्रीय मुक्ति आन्दोलन का विकास समुचित ढंग से चित्रित हो जाता है,वरन् ब्रिटिश सरकार की समर्थक व्यवस्थाओं तथा संस्थाओं का भी पर्दाफाश हो जाता है ।

ब्रिटिश सरकार की अनैतिकता, पुलिस के दमन चक्र तथा पंजाब हत्याकांड से क्षुब्ध होकर १९१९ई० में गांधी जी राजनीतिक रंगमंच पर उतरते हैं तथा अन्त तक स्वाधीनता संग्राम का नेतृत्व वहां करते हैं । अत: राष्ट्रीय रंगमंच राष्ट्रीय आन्दोलन पर उनके व्यक्तित्व,विचारधारा की विशेष छाप है, जिसका प्रभाव हिन्दी के उपन्यासकारों पर भी पड़ा है ।

`रंगभूमि`(१९२५ई०) में गांधीवादी सूरदास के नेतृत्व में जानसेवक के मिल की स्थापना के विरुद्ध पाण्डेपुर निवासियों का चलता है । जानसेवक की मिल ब्रिटिश साम्राज्य का प्रतीक है, क्योंकि सरकार, पुलिस फौज के संरक्षण में उसकी स्थापना होती है । अन्तत: गोली चलती है सूरदास शहीद होता है, आन्दोलन असफल रहता है, पाण्डेपुर निवासियों को जमीन, घर छोड़ने पड़ते हैं और जानसेवक का उस सम्पत्ति पर आधिपत्य हो जाता है । इस आन्दोलन पर १९२०ई० के असहयोग आन्दोलन की असफलता की छाप है । लेकिन मृत्यु-शय्या पर सूरदास भावी आन्दोलन की सूचना देता है,--`फिर खेलेंगे, जरा दम ले लेने दो, हार-हारकर तुम्हीं[1] से खेलना सीखेंगे, और एक न एक दिन हमारी जीत होगी, जरूर होगी ।` सन् १९३०ई० के राष्ट्रीय आन्दोलन की यह पूर्व सूचना है ।

१.प्रेमचन्द : `रंगभूमि`(१९२५ई०), पृ०सं० ३७६ ।

प्रेमचन्द का 'कर्मभूमि' (१९३२ई०) उपन्यास राजनैतिक चेतना को अभिव्यक्त करने वाला सशक्त उपन्यास है। मंजुलता सिंह के अनुसार 'कर्मभूमि स्वतंत्रता संग्राम के विभिन्न आन्दोलनों का इतिहास है।'[1] 'कर्मभूमि' (१९३२ई०) की मूल भावना संघर्ष है-- व्यक्तिगत धरातल पर एवं सार्वजनिक धरातल पर जीवन संघर्ष की भावना से विकसित है। आन्दोलन की भावना सम्पूर्ण उपन्यास में परिव्याप्त है। राष्ट्रीय राजनीति जिन आन्दोलनों के रूप में अभिव्यक्ति पा रही थी, उसका बड़ा सच्चा चित्र प्रेमचन्द ने खींचा है।'[2] तत्कालीन राजनीति ने हरिजन वर्ग को कितना प्रभावित किया था तथा हरिजन वर्ग कितनी सक्रियता के साथ राजनीति में भाग ले रहा था, इसका उदाहरण 'कर्मभूमि' (१९३२ई०)उपन्यास है।

अंग्रेजों ने भारत में फूट डालकर शासन करने की नीति अपनाई। विभिन्न जातियों तथा विभिन्न राजनीतिक प्रणालियों के देश में यह नीति भली भांति सफल हो सकती थी। बाद को लिबरल दल तथा राष्ट्रीय कांग्रेस के साथ भी अंग्रेज इस नीति का शिकार करते हैं। अंग्रेजों की नीति यह थी कि उग्र तथा क्रांतिकारी विचारों का दमन करके उदारवादी दल का सहयोग लिया जाय। 'कर्मभूमि' (१९३२ई०) का गवर्नर रैदास चमारों के लगानबंदी आन्दोलन का दमन करने के लिए इसी नीति का आश्रय लेता है। जमीन को लेकर सुखदा तथा नैना के नेतृत्व में निम्नवर्ग तथा म्युनिसिपैलिटी में संघर्ष होता है।

'कर्मभूमि' (१९३२ई०) उपन्यास में बनारस तथा हिमालय की तलहटी में कुल तीन आन्दोलन चलते हैं। उपन्यास का मूल विषय हरिजनों

---

१. मंजुलता सिंह : 'हिन्दी उपन्यासों में मध्यवर्ग', पृ०सं० १९४।
२. महेन्द्र चतुर्वेदी : 'हिन्दी उपन्यास एक सर्वेक्षण', पृ०सं० ७४।

का उद्धार है, अत: लेखक ने हरिजन आन्दोलन के माध्यम से राष्ट्रीय आन्दोलन का विकास दिखाया है। तत्कालीन राजनीतिक दांव-पेंच में अंग्रेजों ने अपनी कूटनीति से हरिजनों के नेता डा० अम्बेडकर को कांग्रेस के विरुद्ध करके अपनी ओर मिला लिया था। गांधी जी हरिजनों को भी राष्ट्रीय झण्डे के नीचे खींचना चाहते थे। गांधी जी के इस उद्देश्य की पूर्ति प्रेमचन्द 'कर्मभूमि' (१९३२ई०) में करते हैं। यह महत्वपूर्ण तथ्य है कि उपेक्षित हरिजन वर्ग इतना जागरूक एवं सशक्त हो गया था कि राष्ट्रीय आन्दोलन को आगे बढ़ा सके। राष्ट्रीय आंदोलन के विकास में दूसरा महत्वपूर्ण चरण यह था कि युगों से गृहिणी पद से विभूषित भारतीय नारी भी पारिवारिक मर्यादा का बन्धन तोड़कर राष्ट्रीय आन्दोलन में भाग ही नहीं लेती, वरन् उसका सफल नेतृत्व भी करती है। सलोनी चमारिन, सकीना जुलाहे की बेटी सभी आन्दोलन का नेतृत्व करती है।

इस उपन्यास पर १९३०ई० के सविनय अवज्ञा आन्दोलन की छाप पड़ती है तथा उसका अंत भी १९३१ई० के 'गांधी-इर्विन पैक्ट' से निर्देशित है।

बनारस-केन्द्र में चलने वाला दूसरा आन्दोलन हरिजन निम्नतर पेशेवर वर्गों का है। निम्न पेशेवर लोगों के लिए पक्के मकान की व्यवस्था के लिए म्युनिसिपैलिटी से जमीन पाने के लिए संघर्ष होता है। संघर्ष की स्थिति में सरकार आन्दोलन का दमन करती है।

हिमालय की तलहटी में रैदास चमारों का लगान-बंदी आन्दोलन चलता है। राष्ट्रीय कांग्रेस ने भी लगानबंदी आन्दोलन चलाया था। महन्त जमींदार के विरुद्ध चलने वाला यह आन्दोलन अन्तत: ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध हो जाता है, क्योंकि प्रान्तीय सरकार की दाब पर इसका प्रभाव पड़ता है। अत: ब्रिटिश सरकार पूरी शक्ति से इसका दमन करती है। बुढ़िया सलोनी भी खून से लथपथ हो जाती है। १९३०-३२ई० के सविनय

अवधा आन्दोलन का जितना उग्रता से ब्रिटिश सरकार ने दमन किया था, डिप्टी साहब ज्ञानशंकर तथा मि० घोष का दमन चक्र उसी नीति का पालन करता है, अंत में समझौता होता है। यह समझौता १९३१ई० के गांधी-इर्विन पैक्ट के अनुसरण पर किया गया है। अतः हम कह सकते हैं कि 'कर्मभूमि' (१९३२ई०) में राष्ट्रीय आन्दोलन के विकास का पूर्ण चित्रण मिलता है। लेखक ने तूफान राजनीतिक वातावरण के मध्य में ही धार्मिक, सामाजिक तथा आर्थिक सभी समस्याओं को प्रस्तुत करने का सफल प्रयत्न किया है। लेखक की दृष्टि बराबर ही राजनीतिक परिवर्तनों में होने वाले नव जागरण की ओर रही है।

'भूले बिसरे चित्र' (१९५९ई०) प्रमुख रूप से मध्यवर्गीय समाज से सम्बन्धित उपन्यास है। आंशिक रूप से हरिजनों की समस्या का भी चित्रण मिलता है। मंजुलता सिंह के अनुसार — 'भारत के विगत लगभग पचास वर्षों के मध्यवर्ग का सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक, आर्थिक, धार्मिक समस्याओं का अंकन प्रस्तुत उपन्यास का लक्ष्य है।'[1]

८ जुलाई १९२१ई० को करांची में खिलाफत परिषद् की जो कान्फ्रेंस हुई था। उससे सारे देश में एक जबर्दस्त हलचल मच गई। लोगों को जेल में ठूसा जाने लगा। विदेशी कपड़ों का बहिष्कार किया जाने लगा। एक तरफ तो ज्ञान प्रकाश तथा गंगाप्रसाद अपने राजनीतिक आन्दोलन में हरिजनों का सहयोग चाहते हैं तो दूसरी ओर उनकी बेइज्जती भी करते हैं। 'भूले बिसरे-चित्र' (१९५९ई०) उपन्यास में इसी बात का चित्रण मिलता है। हरिजन गेंदालाल दल का सहयोग सवर्ण हिन्दू वर्ग चाहता है। ज्ञान प्रकाश गेंदालाल से कहता है,— 'गेंदालाल जी, इस आन्दोलन के बारे में आपका क्या ख्याल है?

---

१. मंजुलता सिंह : 'हिन्दी उपन्यासों में मध्यवर्ग', पृ०सं० २७९।

"जी, यह आन्दोलन ! इसके बारे में भला मेरा क्या ख्याल हो सकता है ? ये सब तो आप लोगों की बातें हैं । हम अछूतों को भला इन सबसे क्या करना ? हमें तो जनम-जनम तक आप लोगों की गुलामी ही करना है ।[1]" गेंदालाल आंदोलन के बारे में कहता है,--"कैसा आन्दोलन और कैसा योग ?" गेंदालाल ने पूछा,--"कुछ हो रहा है, ऐसा तो हम लोगों को दिखता है । लेकिन यह कुछ क्या है, न कभी हमें यह समझाया गया है और न हमने कभी समझा है । और शायद हमारी समझ में यह आएगा भी नहीं और भला हमारी समझ में यह आएगा भी नहीं और भला हमारी समझ में आए भी कैसे ? पढ़े-लिखे हम लोग हैं नहीं । और मुझे तो ऐसा लगता है कि हमारे पढ़ने-लिखने से भी क्या होता है? मैं ही पढ़-लिख गया हूं, लेकिन कहीं नौकरी नहीं मिलती । जब लोग मुझे छूने ही को तैयार नहीं हैं तब भला वे मुझे दफ्तर में अपने साथ बैठने क्यों देंगे ? वह तो कहिए मिशन-स्कूल था, इसलिए किसी की चली नहीं,नहीं तो लोग मुझे पढ़ने भी न देते ।[2]" दूसरी तरफ गंगाप्रसाद, गेंदालाल को चमार कहकर तिरस्कार करता है,--"एकाएक गंगाप्रसाद भड़क उठा,--"चमार ! तुम यहां इस कमरे में कैसे घुस आए ? निकलो यहां से, निकलो ।" ज्ञानप्रकाश ने यह कल्पना भी न की थी कि गंगाप्रसाद पर इस प्रकार की प्रतिक्रिया होगी । उसने गंगाप्रसाद का हाथ पकड़कर कहा,--"यह क्या बक रहे हो गंगा ? मैंने इनको बुलाया है, इनसे बात करने के लिए । इस आन्दोलन में हमारे देश के अछूतों का कोई योग नहीं है और देश में अछूतों की कुल संख्या छः करोड़ की है । इन लोगों का सहयोग हमें चाहिए ही ।"

ज्ञानप्रकाश की बात गेंदालाल ने काटी, जो उठकर खड़ा हो गया था," जी अभी सहयोग लीजिए,और फिर हम लोगों को खत्म करके रख दीजिए । जहां बैठने का अधिकार भी लोग हमें न दें,वहां बातचीत ही क्या होगी ? आन्दोलन कीजिए, स्वराज्य लीजिए, लेकिन हम लोगों को जिन्दा रहने

१. भगवतीचरण वर्मा : 'भूले बिसरे चित्र' (१९५९ ई०),पृ०सं० ५०९ ।

२. वही, पृ०सं० ५१० ।

दीजिए । हम लोग तो आप लोगों की गुलामी करने के लिए ही पैदा हुए हैं[1]।'

'भूले बिसरे चित्र' (१९५९ई०) उपन्यास महात्मा गांधी के आन्दोलन से प्रभावित उपन्यास है । गांधी जी राजनीतिक आन्दोलन में हरिजनों का योग चाहते थे, अत: इस उपन्यास में भी सवर्ण लोग हरिजनों का सहयोग चाहते हैं । ज्ञानप्रकाश कहता है,--'गेंदालाल जी,देश में इतना बड़ा आन्दोलन चल रहा[2] है, यह तो आप जानते ही हैं । इस आन्दोलन में आप योग क्यों नहीं देते ?'

गेंदालाल के ऊपर जो अत्याचार सवर्ण हिन्दुओं के द्वारा किया जाता है, लेखक उससे सहमत नहीं है । वर्मा जी इन अत्याचारों का विरोध करवाते हैं । वर्मा जी ने अपने हरिजन पात्र में पर्याप्त राजनीतिक चेतना का विकास दिखाया है । वर्मा जी गांधीवाद से प्रभावित दिखाई देते हैं,अत: उनका हरिजन पात्र भी गांधीवादी नीति का समर्थक है । गेंदालाल का कहना ठीक ही है कि अपने काम पर सहयोग ले ले फिर हरिजनों को नाली का कीड़ा समझकर उनसे बुरा बर्ताव करे और उनको खत्म कर दे । प्रकारान्तर से यह लेखक का ही दृष्टिकोण स्पष्ट करता है ।

'प्रतिक्रिया' (१९६१ई०) उपन्यास के मुरलीधर पात्र पर अम्बेदकर की समस्याओं का असर दिखाई पड़ता है ।मुरलीधर हरिजन कहता है, ' यह झूठ है कि अछूत हिन्दू समाज के अंग हैं, असल में हम लोग एक अलग नेशन हैं। इतिहास भी इसका समर्थन करता है कि हम अछूत असल में भारत के आदिम आदिवासी हैं । भारत हम लोगों का देश है, आर्य डाकू थे, शक,हूण ,पठान, मुगल सब डाकू[3] थे ।अब शताब्दियों के बाद सारा हिसाब साफ करने का मौका आया है ।' मुरलीधर अपने वर्ग के ऊपर होने वाले राजनीतिक अत्याचार का

---

१. भगवतीचरण वर्मा : 'भूले बिसरे चित्र '(१९५९ई०),पृ०सं०५११ ।

२. वही,पृ०सं० ५०६।

३. मन्मथनाथ गुप्त : 'प्रतिक्रिया',(१९६१ई०),पृ०सं०४१ ।

विरोध करता है । मुरलीधर डॉ०अम्बेदकर के पृथक् निर्वाचन पर बल देता है । `प्रतिक्रिया`(१९६१९६०) उपन्यास में हरिजनों के पृथक् निर्वाचन की समस्या उठाई गई है । मुरलीधर पात्र में लेखक इतनी राजनीतिक चेतना का विकास दिखाता है कि वह गांधी जी को ही अपना शत्रु समझने लगता है,--`गांधी हमारा सबसे बड़ा शत्रु है,क्योंकि वह लोगों के मन में यह भ्रान्ति पैदा करता है,जैसे वह हम लोगों के लिए कुछ करने जा रहा है । उसके ढोंगों का कोई अन्त नहीं है । पहले रेल से चलता था, अब पैदल चलता है । एक उलटा सीधा बयान दे मारा कि बिहार का भूकम्प छुआछूत के कारण हुआ, अब यह पदयात्रा का ढोंग रचा है ।नाम के लिए अछूतों का उद्धार हो रहा है, पर हो सिर्फ इतना ही रहा है कि हम लोगों की संख्या का राजनीतिक लाभ सवर्ण हिन्दू उठाना चाहते हैं[१]। नहीं तो मैकडोनल्ड के साम्प्रदायिक बंटवारे का इतना विरोध क्यों कियागया ?` राजनीतिक प्रभाव का हरिजनों के ऊपर कैसा असर होता है? इसको चित्रित किया गया है ।

हरिजन पात्र मुरलीधर तथा अन्य पृथक् निर्वाचन का स्वागत करते हैं । लेखक का पृथक् निर्वाचन के प्रति समर्थक दृष्टिकोण नहीं है । वह उन्हें हिन्दू समाज का ही एक अंग मानता है । मुरलीधर पात्र कहता है,-- `यह हरिजन शब्द आपके ढोंग का द्योतक है । यह एक अफीम का गोला है,जिससे आप हमें सुला देना चाहते हैं । यदि धार्मिक दृष्टि से भी देखा जाय तो यह शब्द बहुत ही उलझन भरा है । हम हरिजन, हरि के जन हैं, और आप क्या हैं ? क्या सवर्ण हिन्दू शैतान के जन हैं ? या तो मनुष्य मात्र हरिजन है या कोई नहीं[२]। विशेष रूप से हमें हरिजन कहने का कोई अर्थ नहीं होता ।` लेखक उनके

---

१. मन्मथनाथ गुप्त : `प्रतिक्रिया`(१९६१९६०),पृ०सं० १५६ ।

२. वही ,पृ०सं० ५२ ।

गांधीजी के विरोध करने की बात की भी समर्थक नहीं है, इसलिए वह हरिजनों के गांधी जी के विरोध करने पर उनकी पिटाई भी करवा देता है, --'जब बन-बास चुके, थप्पड़ पड़ चुके तो मुरलीधर ने चिल्लाकर अछूतों को सम्बोधित करते हुए अंग्रेजी में कहा -- अरे भाई हम तो अछूत हैं। पर या तो लोगों ने उसे सुना ही नहीं, या अंग्रेजी में होने के कारण वह किसी के पल्ले कुछ नहीं पड़ा है।'[1]

'प्रतिक्रिया' (१९६१ई०) उपन्यास में हरिजनों के राजनीतिक दृष्टिकोण को हमारे सामने रखने के लिए केशव तथा मुरलीधर हरिजन पात्रों की सृष्टि हुई है। मुरलीधर, जो डा० अम्बेडकर के मत का अनुयायी है, का दृष्टिकोण उचित नहीं कहा जा सकता है। ब्रिटिश प्रधानमंत्री ने तो भारत पर शासन करने के लिए फूट डालने के लिए यह योजना की। अगर अपने ही देश के वासी, देश के खिलाफ काम करें तो उसे हम किसी प्रकार युक्तिसंगत नहीं कह सकते हैं। मुरलीधर अपने ऊपर हुए अत्याचारों का बदला लेना चाहता है। यह बात ठीक है, पर यह भी देखना चाहिए कि उसकी योजना देश के हित में है या नहीं। अगर कल्पना की जाय कि हरिजन को पृथक् निर्वाचन का अधिकार मिल जाता तो आज देश के टुकड़े-टुकड़े हो जाते तथा देश १९ वीं शती के निकट पहुंच जाता। लेखक ने मुरलीधर तथा केशव आदि हरिजन नेताओं को पिटवाकर अच्छा ही काम किया है। केशव तथा मुरलीधर का गांधी जी का विरोध करना तो एक राजनीतिक अपराध लगता है। हरिजन नेताओं को हरिजनों के ही हाथ पिटवा कर लेखक ने उन्हें अपराध का दण्ड भी दे दिया है जो ठीक भी है। इस उपन्यास पर सन् १९३२-३२ई० की घटनाओं का प्रभाव है। इसी प्रभाव के कारण केशव माधव हरिजन के पृथक् निर्वाचन की बात करते हैं। ऐसा लगता है कि लेखक ने 'प्रतिक्रिया' (१९६१ई०) उपन्यास में हरिजनों के राजनीतिक पक्ष से सम्बन्धित समस्याओं को उठाकर 'पूना समझौते' की भांति समस्या का समाधान भी प्रस्तुत कर दिया है।

---

१. मन्मथनाथ गुप्त : 'प्रतिक्रिया' (१९६१ई०), पृ०सं० २५६।

(च) शासन सम्बन्धी भ्रष्टाचार

शासन में भ्रष्टाचार हमेशा व्याप्त रहा है, चाहे अंग्रेजी
युग रहा हो या वर्तमान युग । अनेक लेखकों ने इस भ्रष्टाचार का विरोध किया है।
लेखक लोग कहीं इसके लिए प्रत्यक्ष और कहीं अप्रत्यक्ष प्रणाली अपनाते हैं । `टूटा
हुआ आदमी` (१९६९ई०) में शासन सम्बन्धी भ्रष्टाचार को दर्शाया गया है । किस
प्रकार ऊंचे वर्ग वाले दलितों का शोषण करते हैं ? इसका भी अच्छा दिग्दर्शन
मिल जाता है ।

रामप्रकाश कपूर के `टूटा हुआ आदमी` (१९६९ई०) में
अंसारी जुलाहा के ऊपर शासन सम्बन्धी सवर्ण हिन्दू वर्ग के द्वारा अत्याचार का
चित्रण मिलता है । `टूटा हुआ आदमी` (१९६९ई०) उपन्यास में शासन संबंधी
भ्रष्टाचार का चित्रण मिलता है । अंसारी जुनियर वकील है तथा रामनारायण
सीनियर वकील है । सीनियर वकील, जुनियर वकील का किस प्रकार शोषण करते
हैं, इसका चित्रण `टूटा हुआ आदमी` (१९६९ई०) में मिलता है । इन्हीं शासन
सम्बन्धी भ्रष्टाचारों से जुनियर वकील विक्षुब्ध हो उठता है । अंसारी अदालतों
में फैले भ्रष्टाचार के बारे में कहता है,--` बड़ी मछली शुरू से ही छोटी मछली
निगलती चली आई है । यहां भी बड़े वकील जुनियरों का शोषण कर रकम पैदा
करते हैं ।`[1] अंसारी भी वकालत करता है पर बदमाश व दूसरे सीनियर लोग
उसको आगे बढ़ना देना नहीं चाहते हैं, उसको सताते हैं । एडवोकेट रामनारायण
राव मेहरा से कहता है,--` स्वतंत्र भारत का संविधान बनाने वालों ने स्वतंत्रताओं
की लम्बी सूची को चार्टर बना दी, मगर उनको प्राप्त करने के साधन भी सबूत
व पेचीदे बना दिए । गांव में एक अपढ़ निर्दोष कृषक को थानेदार किसी कारण
से या डुश्मनी से उठाकर हवालात में बन्द कर देता है । कानूनन वह चौबीस घण्टे

---

१. रामप्रकाश कपूर : `टूटा हुआ आदमी` (१९६९ई०), पृ०सं० २०२ ।

से अधिक उसे कैद नहीं रख सकता । गांव में भला थानेदार को मजिस्ट्रेट का क्या डर ? वह तीन-चार दिन तक उसे बिना किसी कारण हवालात में बन्द रखता है । यह व्यक्तिगत स्वतंत्रता का हनन हुआ या नहीं ? अब उस कृषक से यह अपेक्षा करना कि वह उधार रुपया लेकर हाईकोर्ट जाए, वहां लम्बी फीस देकर बड़े एडवोकेट द्वारा 'रिट' दाखिल करे, कितना हास्यास्पद है ? पहले तो उस गरीब को संविधान द्वारा प्रदत्त मूलभूत अधिकारों का प्रारम्भिक ज्ञान ही नहीं है, फिर उसकी आवाज, टूटी-फूटी हिन्दी को उच्च न्यायालय के जजसाहबान भी सुनने को तैयार नहीं.... न्यायधीशों की तो बात ही न करो। डा० लोहिया को जब उच्च न्यायालय में हिन्दी में बहस करने या बयान देने की अनुमति न मिली तो एक साधारण नागरिक वहां भला कैसे बोलने का साहस कर सकता है । .... इस प्रकार संविधान द्वारा प्रदत्त नागरिकों के मूलभूत अधिकारों तथा व्यक्तिगत स्वतंत्रता का, रोज देश के हर कोने में निर्दयतापूर्वक हनन होता रहता है.... सब तमाशा देखते रहते हैं । अब तो हाईकोर्ट में 'रिट' भी दाखिल करने के लिए फीस ली जाती है....[1] । इससे स्पष्ट हो जाता है कि सरकारी न्यायालयों में किस प्रकार भ्रष्टाचार पलता है । रामप्रकाश कपूर का 'टूटा हुआ आदमी' (१९६९ ई०) उपन्यास राजनीतिक अत्याचारों का पर्दाफाश करता है । लेखक का (अंसारी जुलाहे के ऊपर जो अत्याचार किया जा रहा है) अत्याचार के प्रति समर्थक दृष्टि नहीं है । लेखक हरिजन पात्र पर अत्याचार करने के पक्ष में नहीं है । राजमेहरा, जो कि स्वयं हरिजन पात्र है, इस अत्याचार का विरोध करता है । राज मेहरा, सीनियर वकील से कहता है,— 'कचहरियां भ्रष्टाचार व अनाचार का सबसे बड़ा व प्रसिद्ध तीर्थ बन गई है ।'[2]

अंसारी जुलाहे का जो शोषण कचहरी में सीनियर वकीलों के द्वारा किया जाता है, वह सामाजिक हित में अच्छा नहीं कहा जा

---

१. रामप्रकाश कपूर : 'टूटा हुआ आदमी' (१९६९ ई०), पृ०सं० २०१ ।

२. वही, पृ०सं० २०४ ।

सकता है । राज मेहरा का कथन तो स्पष्ट ही शासन सम्बन्धी भ्रष्टाचार को स्पष्ट कर देता है कि कचहरी ही एक ऐसा स्थल है, जहां न्याय नहीं मिल सकता है । दो व्यक्तियों में संघर्ष होना तो राजनीतिक विकास के लिए अत्यन्त उपयुक्त है, क्योंकि जब दो वर्गों का संघर्ष होगा तभी तो राजनीति का विकास होगा । जिन्हों दो से अधिक वर्गों में जब तक परस्पर स्वार्थों का टकराव नहीं होता, राजनीतिक गतिविधियों में बेलना नहीं आ पाता है तथा राजनीतिक वातावरण का निर्माण भी नहीं हो सकता है । 'टूटा हुआ आदमी' (१९६९ई०) उपन्यास में भी परस्पर टकराव मिलता है । इसी के फलस्वरूप अंसारी जुलाहा के ऊपर अत्याचार होता है । अगर दो वर्ग आपस में लड़ते हैं तो निश्चय ही एक वर्ग को फायदा तथा दूसरे वर्ग को नुकसान पहुंचेगा । 'टूटा हुआ आदमी' (१९६९ई०) उपन्यास से अदालतों में व्याप्त भ्रष्टाचार का उद्घाटन पर प्रकाश डालता है । साथ ही साथ उस राजनीतिक वातावरण की ओर संकेत करता है, जिसमें उच्च सदस्य लोग निम्न वर्गों के लोगों का शोषण करते हैं ।

एडवोकेट रामनारायण सामंत वर्ग के प्रतिनिधि हैं, उनमें अपने जूनियरों के प्रति दया, ममता नहीं है । जिस अंसारी जुलाहे का शोषण रामनारायण करते हैं, राज मेहरा (जो कि स्वयं वकील है) उसके प्रति सहानुभूति रखते हैं, उसके अत्याचार से दुःखी होते हैं । लेकिन रामनारायण तो नये सामंतवर्ग के प्रतिनिधि हैं, वह केवल शोषण करता है । शोषण बढ़ने का कारण अंग्रेजी हो रही है, जिसने अदालतों में सीनियर एडवोकेटों को मनमाना अत्याचार करने की खुली छूट दे रखा है । अदालतों में सीनियर एडवोकेट के अनुपात में जूनियर वकीलों की संख्या कई गुनी बढ़ी है । आधुनिक महंगी सुख-सुविधाओं की आवश्यकता भी बढ़ी । इन सबका परिणाम यह हुआ कि सीनियर एडवोकेट मानवीय संबंध भुलाकर जूनियर एडवोकेटों का मनमाना शोषण करने लगे ।

(ङ) भाषा की समस्या

भाषा का प्रश्न राष्ट्रीयता से सम्बन्धित है तथा इसके सम्बन्ध में भी उपन्यासकारों की दृष्टि गई है । रामदेव अपनी हिन्दी भाषा का

महत्व स्वीकारते हैं तथा शिक्षा के लिए (हिन्दी) भाषा को ही उपयुक्त बताते हैं। अंग्रेजी शिक्षा हमें एक तरफ ज्ञान-विज्ञान की प्रगतिशील चेतना से सम्पन्न किया है, व तो दूसरी तरफ व्यावहारिक तथा कामकाजी दुनियां में हमें पंगु बना दिया है। पढ़े-लिखे लोगों के लिए मास्टरी, क्लर्की आदि जैसे कुछ सीमित धन्धे के अतिरिक्त अन्य धंधों का अभाव हो रहा है। स्वयं अंग्रेजी शिक्षा के संस्थापक मैकाले महोदय भी यही चाहते थे कि भारत में राज्य चलाने के लिए कुछ भारतीय क्लर्कों को पढ़ा लिखा कर तैयार किया जाए जो अंग्रेजी शासन के दलाल बन सके तथा शासन को मजबूत तथा सुदृढ़ बनाने में मदद दे सकें। रामदेव ने इसीलिए हिन्दी भाषा पर बल दिया है, कदाचित् राष्ट्रीयता से प्रभावित होने के कारण। कहने की आवश्यकता नहीं कि लेखक का कार्य राष्ट्रीयता से सम्बन्धित है और इनके माध्यम से उसने हरिजनों के ऊपर अत्याचार दिखा कर उनके ऊपर राजनीतिक अत्याचार के चित्र को उभारा है। लेखक ने व्यापक राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य का निर्माण किया है।

सुधार-आन्दोलन तथा सामाजिक संस्थाओं की एक सीमा होती है। आधुनिक युग में हरिजनों के अधिकारों की व्यापक स्वीकृति राजनीतिक माध्यम से ही प्राप्त की जा सकती है। सामाजिक जागरण तथा सुधार आन्दोलनों एवं नवीन मान्यताओं को निर्धारित अवश्य करते हैं लेकिन सम्पूर्ण समाज इन्हें कानून के रूप में उसी समय स्वीकार करता है, जब कि इसे सरकारी मान्यता मिल जाए। कानूनी मान्यता प्राप्त करने के लिए समाज के शोषित हरिजन वर्गों को निश्चय ही राजनीतिक आन्दोलनों का स्वरूप प्रत्येक देश की ऐतिहासिक परिस्थितियों की विभिन्नता पर निर्भर करता है। भारतीय राजनीतिक स्थिति एक गुलाम की सी है, जिसमें हरिजन वर्गों को परतन्त्र बनाकर रखा जा रहा है। समाज के शोषित हरिजन वर्गों के लिए दो धारायें हैं — एक तो वह भारत सरकार से सीधे अपने अधिकारों को पा ले या स्वतंत्र हरिजन

आन्दोलन कर अधिकार प्राप्त करे । जब तक हरिजन लोग शक्तिशाली नहीं हो जाते-- तब तक रोशन जैसे हरिजनों का लड़की को भाषा के प्रश्न पर सवर्ण हिन्दु वर्ग अपहरण करते रहेंगे । आज जरूरी है कि देश के राजनीतिक वातावरण में हरिजन भी अपना सहयोग दे । आज राजनीतिक नेताओं के द्वारा हरिजनों का सुरक्षा का आश्वासन दिया जा रहा है । हम कह सकते हैं कि राष्ट्रीय आंदोलन न केवल ब्रिटिश दासता से मुक्ति का अभियान था,वरन् हरिजन शोषित वर्गों की स्वतन्त्रता का इतिहास भी बन गया ।

रामदेव के `लहरें`(१९५५ई०) उपन्यास में हरिजनों के ऊपर अत्याचार का चित्रण हुआ है । समाज के लोग हरिजनों को हमेशा से दबाते आये हैं, इसी भावना का चित्रण `लहरें`(१९५५ई०) उपन्यास में मिलता है और इसी भावना के कारण रोशन हरिजन के ऊपर राजनीतिक अत्याचार होता है । `लहरें`(१९५५ई०) उपन्यास में भाषा का प्रश्न को लेकर जबर्दस्ती रोशन हरिजन के ऊपर अत्याचार किया जाता है । `लहरें`(१९५५ई०) उपन्यास में सिक्ख लोग गुरुमुखी भाषा पर जोर देते हैं, जब कि हिन्दी भाषा वाले हिन्दी पर जोर देते हैं । इसी भाषा के प्रश्न पर सवर्ण हिन्दु लोग रोशन हरिजन को लड़की को गायब कर देते हैं । भाषा के प्रश्न पर दोनों ओर से हरिजनों पर जो दबाव पड़ता है, उसी का चित्रण करते हुए लेखक कहता है,--`हरिजन बेचारों की अजीब दशा थी । सिक्खी का दम भरने वाले कहते हैं कि अपनी भाषा गुरुमुखी लिखवाओ नहीं तो हम सब प्रकार की सहुलतें देना बन्द कर देंगे और कई जगह तो मार-पीट की नौबत भी आ गई । इधर अपने को आर्यों की सन्तान कहलाने वालों ने जोर दिया कि हरिजन अपनी भाषा हिन्दी लिखवाएं अन्यथा उन्हें गांव में रहना मुश्किल हो जाएगा । हरिजन बेचारे क्या करते एक ओर कुआं और दूसरी ओर खाई ।`[१] जब इसी प्रश्न पर सवर्ण

---

१. रामदेव : `लहरें`,(१९५५ई०), पृष्ठ० २० ।

हिन्दू लोग रोशन हरिजन की लड़की को गायब कर देते हैं तो इसी बात पर दलीप कहता है,--`सुना है आज रोशन हरिजन की लड़की को लोग निकाल ले गए और साथ ही यह भी सुना है कि रात उसे चार-पांच आदमी धमकाने आए थे कि अपनी भाषा गुरुमुखी लिखवाना।`[1] भाषा के प्रश्न पर रोशन हरिजन की लड़की गायब करने के अत्याचार के विरुद्ध लेखक अपना आक्रोश व्यक्त करता है। वह इस अत्याचार के पक्ष में नहीं है तथा इस बात को लेखक अपने पात्रों के द्वारा स्पष्ट करता है। जब रामसिंह यह कहता है,--`जब समझाए से कोई न समझे तो जोर से समझाना पड़ता है और क्या उसे हिन्दी लिखाने देते। अभी तो क्या देखा है एक रोशन की लड़की गायब है बाकियों से कहना कि अपनी-अपनी संभाल लें।`[2] इसपर दलीप को गुस्सा आ जाता है वह एक चौल रामसिंह के जमा देता है तथा इसी बात को लेकर मेल का स्थान युद्ध क्षेत्र बन जाता है तथा लड़ने को तैयार हो जाते हैं। लड़ाई को बचाने के लिए धीर सिंह कहता है-- `अगर लड़ना ही है तो पहले मेरी बातें सुनकर लड़ना मैं कुछ कहना चाहता हूं आप लोगों से। क्या मैं सिक्ख भाइयों से पूछ सकता हूं कि गुरुमुखी भाषा होने पर सब गांव वालों को भरपेट रोटी मिल सकेगी और क्या हिन्दू यह विश्वास दिला सकते हैं कि हिन्दी भाषा मान लेने पर अनाथ और विधवाओं के दुःख दूर हो जाएंगे सब को तन ढकने के लिए पर्याप्त कपड़ा मिल सकेगा। मैं आपको यह बता देना चाहता हूं कि यह भी एक पूंजीपतियों का हथकण्डा है, जिसके द्वारा वे आपको आपस में लड़ाना चाहते हैं।`[3] इससे स्पष्ट हो जाता है कि रामदेव रोशन हरिजन के ऊपर हुए अत्याचार के समर्थक नहीं हैं। लेखक ने भाषा के प्रश्न पर दोनों पक्ष पर गहरा व्यंग्य भी किया है,--`थोड़े दिन पहले एक पगड़ी धारी महाशय गले में सफेद साफा लटकाए

----

१. रामदेव : `लहरें`,(१९५४ई०),पृ०सं० २१।

२. वही, पृ०सं०

३. वही, पृ०सं० २२।

बड़ा वजनदार व्याख्यान कर गये थे और उन्होंने समझाया था कि हिन्दी भाषा हमारी मातृ-भाषा है और आदिकाल से चला आ रहा है अतः अपनी भाषा हिन्दी ही लिखावें और अपर हुआ ये कि उन्होंने व्याख्यान पंजाबी में दिया था, क्योंकि या तो गांव के लोग उनके कठिन शब्दोच्चारण को समझने में असमर्थ थे या उन्हें शुद्ध हिन्दी बोलने का अभ्यास नहीं था ।'[1]

गुरुमुखी भाषा के प्रश्न पर भी लेखक व्यंग्य करता है,--' उसके कुछ दिन बाद एक नीली पगड़ी धारी सरदार जी आए और उन्होंने भी खूब जोरदार भाषण दिया और सब गांव वालों से प्रार्थना की कि अपनी भाषा गुरुमुखी लिखावें और इस विषय में सभा की और से प्रस्ताव पास किया गया कि हमारी भाषा गुरुमुखी होनी चाहिए, क्योंकि हम पंजाबी हैं । परन्तु इस प्रस्ताव की लिपी उर्दू में लिखी गई थी, क्योंकि शायद व्याख्यान देने वाले महानुभाव गुरुमुखी लिपी से अनभिज्ञ थे ।'[2]

भाषा के प्रश्न पर रोशन हरिजन की लड़की गायब करना उचित नहीं है । अगर कोई भी पक्ष आपस में लड़ते हैं तो हरिजनों पर ही क्यों अत्याचार किया जाए ? यह प्रश्न उठता है फिर भाषा के संघर्ष में हमें रोशन हरिजन का कोई योगदान भी नहीं दिखाई देता । अत: यह बिल्कुल स्पष्ट स्वत: हो ही जाता है कि रोशन हरिजन के ऊपर सवर्ण हिन्दु वर्ग द्वारा अत्याचार करना गैर कानूनी तथा बेबुनियाद है । हमारे समाज में आज भी निरपराध हरिजनों पर अत्याचार किये जाते हैं । चाहे अपराध उन्होंने न किया हो, फिर भी दण्ड उनको भुगतना पड़ता है । 'लहरें' (१९५८ई०) उपन्यास में सवर्ण हिन्दुओं की संकीर्ण भावना का परिचय मिलता है । निरपराध रोशन हरिजन हरिजन के ऊपर अत्याचार समाज के सवर्ण हिन्दुओं की उदार भावना को प्रकट नहीं करता है । रोशन हरिजन के ऊपर अत्याचार करके सवर्ण हिन्दु

---

१. रामदेव : 'लहरें' (१९५८ई०), पृ०सं० २० ।

२. वही, पृ०सं० २० ।

वर्ग तो सामाजिक अपराध करते हैं । अत: इनको दण्ड मिलना चाहिए न कि रोशन हरिजन को । परन्तु हमारे सड़े-गले समाज में इतनी शक्ति नहीं है कि उचित-अनुचित व्यक्ति में भेद कर सके तथा इनको दंड दे सके ।

(ज) पुंजीपति वर्ग का उदय

साम्राज्यवाद से भले ही ब्रिटिश राज्य भारत में औद्योगिक क्रांति लाने में सहायक हुआ हो, लेकिन यह उसकी नीति के विरुद्ध था कि भारत औद्योगिक क्षेत्र में आगे बढ़े । भारत में ही नहीं,वरन् एशिया में उसके राज्य विस्तार का उद्देश्य ही यह था कि उन्हें कृषि उत्पादन का क्षेत्र रखा जाय जिससे ब्रिटेन को मिलों का सामान वहां बिना प्रतियोगिता के बाजार पा सके । लेकिन संसार में जब औद्योगिक अर्थ व्यवस्था का उदय हो रहा था, ऐसी स्थिति में भारत का एकमात्र कृषि देश रहना असंभव था। प्रथम विश्वयुद्ध आदि ऐसे अन्य कारण भी उपस्थित हुए कि ब्रिटिश सरकार को भी आवश्यकतावश मूल नीति कुछ समय तक बदलना पड़ी । फलत: भारत में भी कारखाने बनने लगे और पुंजीपति वर्ग का उदय हुआ । एक महत्वपूर्ण तथ्य है कि औद्योगिक आर्थिक प्रणाली के दो चरण होते हैं । प्रारम्भिक अवस्था में उद्योगपति, जो स्वयं कारखाने का मालिक होता है तथा उत्पादन के तत्वों को जुटाता है,वह क्रियाशील तथा साहसी होने के कारण अधिक महत्वपूर्ण स्थान रखता है । लेकिन कुछ समय के बाद जब देश में धन बढ़ जाता है तो उद्योगपति से अधिक महत्व पुंजीपति का हो जाता है । `रंगभूमि` (१९२५ई०) का जानसेवक उद्योगपति है, लेकिन `गोदान` (१९३६ई०) का डायरेक्टर खन्ना पुंजीपतियों का प्रतीक है ।

प्रेमचन्द का `रंगभूमि` (१९२५ई०) उपन्यास राजनीतिक दृष्टि से बहुत महत्वपूर्ण है । मि० क्लार्क,महेन्द्र सिंह तथा गवर्नर भारत के

राजनीतिक पक्ष को ग्रहण करने वाले हैं । 'एक पक्ष' में सूरदास के साथ अन्य लोग भी हैं । सूरदास तथा जानसेवक के बीच संघर्ष उत्पन्न कर प्रेमचन्द ने उद्योगपतियों पर प्रहार किया है ।

'रंगभूमि' (१९२५ई०) की रणभूमि में सूरदास तथा जानसेवक अपने आदर्शों के लिए आदि से अन्त तक परस्पर प्रतिद्वन्द्वी बनकर संघर्ष करते हैं । जानसेवक उद्योगपति का प्रतीक है तो सूरदास भारतीय आत्मा का प्रतीक है । सूरदास जाति से चमार हैं,--'बनारस में पांडेपुर ऐसी बस्ती है । वहां न शहरी दीपकों की ज्योति पहुंचती है,।...... इन्हीं में एक गरीब तथा अंधा चमार रहता है, जिसे लोग सूरदास कहते[1] जानसेवक तथा सूरदास के संघर्ष द्वारा प्रेमचन्द ने यह दिखाने का प्रयत्न किया है कि भारतीय समाज में चेतना आ गई थी तथा वे अंग्रेजी सत्ता को चुनौती देने लगे थे ।

जानसेवक देश के हित के नाम पर सिगरेट का कारखाना खोलने के लिए सूरदास की जमीन को ले लेता है । जानसेवक का कहना है,--'हम देखते हैं कि इस देश में विदेश से करोड़ों रुपए का सिगरेट और सिगार आते हैं । हमारा कर्तव्य है कि इस धन प्रवाह को विदेश जाने से रोकें । इसके बगैर हमारा आर्थिक जीवन कभी पनप नहीं सकता ।'[2]

यह तो ठीक है कि जानसेवक देशहित करना चाहता है, लेकिन हरिजनों के ऊपर वह क्यों अत्याचार करना चाहता है? वह तो स्वयं अमीर व्यक्ति है । कहीं किसी दूसरे की जमीन खरीद सकता है । उसको क्या जरूरत है कि वह सूरदास जैसे गरीब हरिजन स की जमीन ले । चूंकि जानसेवक शासक वर्ग से मिला हुआ है, इसीलिए वह सूरदास की जमीन ले लेने में अंततोगत्वा

---

१. प्रेमचन्द : 'रंगभूमि' (१९२५ई०), पृ०सं० १० ।

२. वही, पृ०सं० ७४ ।

सफल हो जाता है । वह अपनी व्यावहारिक बुद्धि के फलस्वरूप सूर की जमीन को लेकर मि० क्लार्क तथा राजा महेन्द्र को आपस में लड़ा देता है और वह अपने महत् उद्देश्य को पूर्ण करता है । जानसेवक जन नेता तथा ब्रिटिश सरकार दोनों में मेल रखता है । जानसेवक के चरित्र के द्वारा प्रेमचन्द ने हमारे सामने उद्योगपतियों के दुर्गुणों को हमारे सामने रखा है ।

(क) <u>पुनरुत्थानवादी दृष्टिकोण</u>

मुगल साम्राज्य तथा ब्रिटिश-साम्राज्यवाद की पराधीनता स्वीकार करते हुए भी प्राचीन और मध्ययुगीन राज्यों के कुछ अवशेष अब भी बचे थे । १८५७ई० की जनक्रान्ति के पीछे मूलभूत प्रेरणा भले ही अंग्रेजों से मुक्ति पाना रहा हो, लेकिन क्रांति के संगठन के पीछे मुख्य शक्ति विविध राज-परिवारों का नेतृत्व करना था । ब्रिटिश सरकार भी राष्ट्रीय आन्दोलन के तीव्रतर होने पर राजाओं से गठबन्धन कर लेता है । अतीत का भारत भी आधुनिक भारत के निर्माण में प्रेरणा का स्रोत रहा है । ऐसी स्थिति में यदि राजनीतिक क्षेत्र में भी पुनरुत्थानवादी दृष्टिकोण का अस्तित्व रहा तो कोई आश्चर्य नहीं ।

'रंगभूमि' (१९२५ई०) का सूरदास गांधीवादी विचार-धारा का प्रतीक है । वह निरीह, निःशस्त्र तथा निर्बल भारतीय जनता का प्रतीक है, लेकिन गांधीवादी आदर्शों से अनुप्रेरित होने के कारण उसमें चारित्रिक दृढ़ता है, उसमें सत्याग्रह तथा नैतिकता का बल है । ईश्वर पर उसकी अटूट आस्था है तथा अहिंसा उसका प्राण है । राजा महेन्द्र के अन्याय के विरुद्ध वह सारे शहर में घूमकर न्याय की भीख मांगता है । ऐसा लगता है कि गांधी जी सारे राष्ट्र में घूमकर जनमत तैयार कर रहे हों । हिंसा पर सूर कहता है, --'तुम लोग यह उधम मचाकर मुझ पर कलंक क्यों लगा रहे हो ....आप लोगों

का दुआ से यह आग और जलन मिटेगा । परमात्मा से कहें, मेरा दुख मिटायें । भगवान से विनती कीजिए । मेरा संकट दूर करें । जिन्होंने मुझपर जुल्म किया है, उसके दिल में दया, धरम जागे, बस मैं आप लोगों से और कुछ नहीं चाहता ।'[1] ऐसा लगता है कि गांधी जी राष्ट्र की हिंसक वृत्तियों को रोक रहे हों । सूरदास गांधी जी से भी आगे बढ़ जाता है । उसने वह काम किया जो कौटिल्य ही कर सकते हैं । लोगों के न मानने पर वह पत्थर उठाकर सिर फोड़ना चाहता है, उसके इस सबल आग्रह से लोग हिंसा रोक देते हैं ।

पांडेपुर मुहल्ले की जमीन पर जानसेवक का आधिपत्य हो गया तथा सब निकाले जाने की स्थिति में हैं । सूरदास मुहल्ले वालों से सरकार के दमनचक्र के सम्बन्ध में कहता है,—'सरकार के हाथ में मारने का बल है, हमारे हाथ में और कोई बल नहीं है तो मर जाने का बल तो है ।'[2] यह 'मर जाने का बल' ही अहिंसा तथा सत्याग्रह सिद्धांत का मूल बिन्दु है कि अपने धर्म, विचार के लिए मरने की शक्ति भी होनी चाहिए ।गांधी जी के नेतृत्व में राष्ट्र ने यह शक्ति अर्जित की थी । अन्ततः जिसका परिणाम यह हुआ कि भारत को विदेशी शासन से मुक्ति मिली । यह प्रश्न अवश्य विचारणीय है कि गांधी जी के राजनीतिक दर्शन का कौन पहलू सफल रहा । हमारा मत है कि तत्कालीन परिस्थितियों में जब कि भारतीय जनता निःशस्त्र तथा निरीह अवस्था में थी, विदेशी सरकार के विरुद्ध जनमत तैयार करना तथा उससे असहयोग करना युद्ध पद्धति की उचित टेकनीक थी । लेकिन हम यह स्वीकार नहीं करते कि अंग्रेजों का हृदय-परिवर्तन तो कभी नहीं हुआ, वरन् सरकार का दमन चक्र बढ़ता गया । प्रत्येक बार गांधी जी को आन्दोलन वापस लेने पड़े, लेकिन इन आन्दोलनों की सबसे बड़ी विशेषता थी कि स्वतन्त्रता के लिए जनमत तैयार हो गया और राष्ट्रीय

---

१. प्रेमचन्द : 'रंगभूमि' (१९२५ई०), पृ०सं० ३१९ ।

२. वही, पृ०सं० २९७ ।

भावनाओं से सम्पूर्ण भारत तरंगित होने लगा । स्वतंत्रता प्राप्ति के निमित्त मर जाने का बल आ गया । सूरदास का आत्मत्याग, राजा महेन्द्र, मि० क्लार्क तथा अंग्रेजी सरकार किसी का हृदय परिवर्तन कर नहीं पाता । यद्यपि वह शहर में न्याय के लिए जनमत जागृत करने में सफल है । गांधीवादी दर्शन की सबसे बड़ी विशेषता उसकी आशावादिता है । सूरदास मृत्यु के समय भी निराश नहीं होता, वरन् फिर लड़ने की चुनौती देता है और उसका विश्वास है कि एक दिन वह अवश्य विजयी होगा । हम कह सकते हैं कि प्रेमचन्द के उपन्यासों में युगीन राजनीति का विस्तृत विवेचन प्रस्तुत हुआ है । 'रंगभूमि' (१९२५ई०) में दमन और अत्याचार की नीति का वर्णन है तो दूसरी ओर भारतीयों का स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए अथक प्रयत्न भी वर्णित है ।

(ट) देशी रियासतें

अंग्रेजों ने भारत के बिखरे राज्यों को समाप्त करके राज्य का विस्तार किया था । लेकिन १८५७ई० की क्रांति के पश्चात् जब सामंत वर्ग अपने अंतिम प्रयत्न में अंग्रेजों को देश से बाहर निकालने में पूर्णतया असफल हो गया, तब अंग्रेजी सरकार ने ऐसे निर्जीव राज्यों को छेड़ना उपयुक्त नहीं समझा । लेकिन उनपर अंग्रेजी सरकार अपना नियन्त्रण रखती थी । बीसवीं शताब्दी में जब ब्रिटिश भारत में राष्ट्रीय आन्दोलन तीव्रतर हुआ, अंग्रेजी सरकार ने देशी राज्यों को अतिरिक्त संरक्षण देने की नीति अपनाई । संरक्षण मिलने पर राज्यों के राजाओं ने हरिजनों का शोषण करना आरम्भ कर दिया। जो अंग्रेज किसी समय सामन्तीय शासन के विरुद्ध थे, अब उसके समर्थक बन गए और कुछ अंग्रेज राष्ट्रीय आन्दोलन की प्रतिक्रिया में यहां तक सोचने लगे थे कि ब्रिटिश भारत को भी विभिन्न राज्यों में विभाजित क्यों न किया जाए ? इन राजाओं का अस्तित्व ब्रिटिश सरकार की कृपादृष्टि पर निर्भर था तथा भारत को स्वराज्य मिलना उनके लिए घातक था । अत: वह स्वभावत: ब्रिटिश सरकार की

नीति का पालन करते थे । सामाजिक कल्याण की भावना रियासत का मानदण्ड नहीं,वरन् राजा की वैयक्तिक भावनायें ही राज्यनीति निर्धारित करती हैं ।

यह सर्वमान्य धारणा आज भी जनता में प्रचलित है कि भारतीय रियासतों के राजे-महराजे और विलासी और चरित्र भ्रष्ट रहे हैं। इन राजाओं का विलासिता अराजक रूप लेता है । यों सामन्त की सदैव से विलासिता अराजक रूप लेता है । यों ही का चलन रहा है । लेकिन राज्य में सुरक्षा, शान्ति, स्थापित रखने के लिए उसे वैयक्तिक जीवन में सदाचार का निर्वाह करना पड़ता था ।लेकिन आधुनिक भारत के ये राजे, क्योंकि अस्तित्वहीन थे, अत: उनके सम्मुख न तो आदर्श और न कर्तव्य की प्रेरणा थी । उनकी दृष्टि उस व्यक्ति की भांति थी,जो विरासत में मिली सम्पत्ति का उपभोग करते थे । प्रजा को आतंकित करके निर्द्वन्द्व और कर्तव्यहीन अराजकता से प्रजा पर शासन करते थे ।

इन सब विलासिताओं की पूर्ति के लिए ये राजे-महराजे प्रजा को लूटते हैं । उनमें (राजाओं) न दया है, न धर्म है । हमारे ही भाई-बंधु की गरदन पर छुरी चलाते हैं । किसी ने जरा साफ कपड़े पहने और ये लोग उसके सिर हुए । जिसे घूस न दीजिए वही आपका दुश्मन है, चोरी कराइए, डाके डालिए, घरों में आग लगाइए, गरीबों का गला काटिए,कोई आपसे न बोलेगा । रियासत में जो अराजक वातावरण इन राजाओं ने फैला रखा है, उसका विरोध हरिजन क्रांतिकारी ही कर सकते हैं, दूसरा नहीं ।

प्राचीन राज्यों की भांति ये देशी रियासतें स्वतंत्र नहीं थीं,वरन् ब्रिटिश सरकार का उनपर पूर्ण नियन्त्रण होता था । कहा जाता है कि रियासतों को आन्तरिक अधिकार दिए गए थे, लेकिन वस्तुत: उनका कोई मूल्य नहीं था । राजा तो केवल नाम के लिए होता था । सारा अख्तियार तो अंग्रेजी सरकार के हाथों में रहता था । यहां तक कि राजा को वैयक्तिक स्वतन्त्रता भी नहीं मिलती । अंग्रेजी सरकार का अधिकार रियासत तथा राजा

के महल के अन्दर भी होता था ।

इन राजाओं का शिक्षा-भार यूरोपीय शिक्षक करते थे, जो उन्हें लड़ना तथा प्रजा पालन की शिक्षा न देकर विलासी बनाते थे । अंग्रेजों का राजाओं को विलासी बनाने का उद्देश्य यह था कि राजाओं के शासन-प्रबन्ध के उत्पीड़न से लोग परिचित रहे और ब्रिटिश शासन-प्रबन्ध पर जनता की आस्था बनी रहे । शासन-तंत्र की यह दुहरी प्रक्रिया अराजकता का स्वरूप ले लेती है । अंग्रेजी तथा रियासत के राजा दोनों हरिजनों के साथ जनता पर अत्याचार करते हैं । उसे लूटते हैं, क्योंकि उनके अधिकार विभाजित हैं, पूर्ण उत्तरदायित्व किसी पर नहीं । गाफिल की संपत्ति की जो दुरवस्था होती है, वही इन रियासतों की होती है । शासन-प्रबन्ध राजा करता है, लेकिन उसे वास्तविक अधिकार नहीं । जिसके पास पूरे अधिकार हैं, उसका जनता से कोई सम्पर्क नहीं और न उसका उत्तरदायित्व है । यदि कोई वेसलेयो हरिजनों के साथ जनता का उद्धार करना चाहता है, तो दोनों शासक एक दूसरे की ओट लेते हैं ।

संघर्ष (१९४५ई०) में राजा साहब के संरक्षण में ही पासी लोग शराब बनाते हैं और आप ही राजा साहब का बेगार भी करते हैं । इस पर बाकी लोग हरिजनों के खिलाफ हो जाते हैं । हरिजनों को तो दोनों तरफ से परेशानी है । अगर राजा का कहना नहीं मानते तो भी खतरा है अगर दूसरे वर्गों के विचार को नहीं मानते तो भी हरिजनों के लिए परेशानी है । राजा, पुलिस तथा अंग्रेजी सरकार सब मिलकर हरिजनों पर अपने ऐश्वर्य तथा विलास के लिए अत्याचार करते हैं । इनका विश्वास है कि राज्य का आधार आतंक और भय है । अंग्रेजी सरकार सोचती थी कि उसका राज्य तभी तक अजेय रह सकता है, जब तक प्रजा पर आतंक छाया रहे । "राज्य व्यवस्था का आधार न्याय नहीं, भय है । भय को आप निकाल दीजिए और राज्य विध्वंस हो जायेगा ।" जिस राज्य का राजनीतिक सिद्धांत ही भय एवं आतंक हो उसे अराजकतावादी ही कहा जा सकता है । "संघर्ष" (१९४५ई०) में रियासत के

कर्णधार हरिजनों के उत्थान का कार्य उनको पीड़ित करते हुए चित्रित हुए हैं ।

(ठ) महाजनी शोषण

बीसवीं शताब्दी सामाजिक विकास की दृष्टिकोण से सामंतवाद के पतन तथा पूंजीवाद के विकास का काल माना जाता है । वस्तुत: अब तक सामंतवादी व्यवस्था जर्जर हो गई थी तथा पूंजीवाद नई शक्ति के साथ अपना विस्तार कर रहा था । गांवों में भी पूंजीवादी शोषण का आरम्भ हो गया था और महाजनों का प्रभुत्व बढ़ गया था ।पं० नेहरू इन महाजनों का विस्तृत विवरण अपनी आत्मकथा में देते हैं, --' खेती से ताल्लुक रखने वाले सभी वर्ग, जमींदार, मालिक,किसान और काश्तकार सभी साहूकारों के जो कि मौजूदा हालतों में गांवों की प्राचीनकालीन व्यवस्था का एक आवश्यक कार्य कर रहे थे, फंदे में फंस गये थे । धीरे-धीरे छोटे जमींदार और मालिक किसान दोनों के हाथ से जमीन निकल कर उनके हाथों में आने लगी और साहूकार ही बड़े पैमाने पर जमीन के मालिक, बड़े जमींदार जमींदारवर्गीय बन गये । वे आम तौर पर शहर के रहने वाले थे, जहां वे अपना लेन-देन करते थे और उन्होंने लगान वसूली का काम अपने कारिन्दों के सुपुर्द कर दिया,जो इस काम को मशीनों की-सी संगदिली और बेरहमी से करते थे ।'[1] पं० नेहरू लिखते हैं कि सरकारी आर्थिक नीति बिल्कुल साहूकारों के ही हक में रही है[2] । महाजनों के इस शोषण में सरकारी कानून का संरक्षण भी उन्हें प्राप्त था । अत:यह शोषण और अधिक बढ़ता ही गया । उपन्यासकारों में प्रेमचन्द का ध्यान इस शोषण के विकराल स्वरूप पर सबसे अधिक गया, क्योंकि वे गांवों के लेखक थे और उन्होंने इस शोषण का अनुभव बहुत निकटता से किया था । साथ ही स्वयं भी आर्थिक तंगी के कारण वे इस शोषण का शिकार रह चुके थे । 'गोदान'(7

---

१. जवाहरलाल नेहरू : 'मेरी कहानी',पृष्ठां० ४२८ ।

२. वही, पृष्ठां० ४२७ ।

(१९३६ई०) में होरी का शोषण महाजनों के द्वारा ही अधिक होता है । महाजनों
के यहां सूद का व्यापार महत्वपूर्ण माना जाता है, जिसमें शोषण की चरम
स्थिति पाई जाती है । किसान अगर किसी से कर्ज लेता है तो फिर जिन्दगी
भर उसकी तबाही केवल सूद भरने में ही हो जाती है,मूल का तो प्रश्न ही नहीं
उठता । होरी के साथ ही भी यह सब घटित होता है । इस दृष्टि से `गोदान`
(१९३६ई०) में कर्ज की समस्या भी एक प्रमुख समस्या है । `गोदान`(१९३६ई०) के
महाजनों में झिंगुरी सिंह, मंगरू साह, दुलारी सहुआइन, पं०दातादीन,पटेश्वरी
तथा नोखेराम आदि हैं,जो गांवों में सूद का व्यवसाय करते हैं तथा गरीब किसानों
का शोषण करते हैं । धीरे-धीरे इनके चंगुल में पड़कर होरी जैसे न जाने कितने
किसान अपनी जमीन से बेदखल कर दिये गये और उनकी जायदाद महाजनों ने ले ली
तथा वे दास बनकर अपने ही खेतों में काम करने पर मजबूर किये गये । होरी की
परिणति उस समय के सम्पूर्ण भारत के किसानों की नहीं तो कम से कम सम्पूर्ण
उत्तरभारत के किसानों की परिणति का द्योतक तो मानी ही जा सकती है,
वस्तुत: महाजनी शोषण का रूप भी अन्य शोषणों से कुछ कम भयंकर नहीं
था । इन्हीं महाजनों के कारण जब होरी के खेत परती पड़ने लगते हैं, तब
दातादीन अपने घर से बीज बोनेके लिए देकर खेतमेंत के मजूर प्राप्त कर लेता है
जब होरी ऊख काटने के लिए खेत में जाता है तो उसी स्थिति का चित्रण करते
हुए प्रेमचन्द लिखते हैं,--"महाजनों ने जो ऊख कटते देखा,तो पेट में चूहे दौड़े ।
एक तरफ से दुलारी दौड़ी, दूसरी तरफ से मंगरू साह, तीसरी ओर से दातादीन
और पटेश्वरी और झिंगुरी के प्यादे । दुलारी हाथ-पांव में मोटे-मोटे चांदी के
कड़े पहने, कानों में सोने का झुमक, आंखों में काजल लगाये,बूढ़े यौवन को रंगे-
रंगाये आकर बोली-- पहले मेरे रुपये दे दो तब ऊख काटने दूंगी । मैं जितना
ही गम खाती हूं, उतना ही तुम शेर होते जाते हो । दो साल से एक धेला सूद

नहीं दिया, पचास रुपये तो मेरे सूद के होते हैं।[1]' होरी दुलारी से पाँच साल पहले तीस रुपये लेता है। तीन साल में उसके सौ रुपये हो जाते हैं। दो साल में उसपर पचास रुपये सूद बढ़ गया है। होरी पर इससे बढ़कर अत्याचार क्या हो सकता है कि तीस रुपये के बदले उसे तीन सौ रुपये भरने पड़े? जब ऊख का सारा पैसा महाजन की ले लेता है तो धनिया पहले बिगड़ती है,पर फिर वह मान जाती है कि 'महाजन जब सिर पर सवार हो जाय और अपने हाथ में रुपये हों और महाजन जानता हो कि इसके पास रुपये हैं,तो आसामी कैसे अपनी जान बचा सकता है[2]।' 'गोदान'(१९३६ई०) उपन्यास में होरी के ऊपर दुखिया महाजन,ब्राह्मण समाज का शासन चलता है। 'गोदान'(१९३६ई०) का होरी जमींदारों से उतना नहीं पीड़ित है,जितना कि महाजनों से। उपन्यास का मुख्य विषय ही महाजनी शोषण है। पं० नेहरू लिखते हैं,--'मालिक किसान जो अभी तक अपनी ही जमीन पर खेती करता था, अब बनियां-जमींदारों या साहूकारों का करीब-करीब दास किसान बन गया, जो केवल काश्तकार था उसकी हालत तो और भी खराब हो गई, वह तो साहूकार का भी दास बन गया था, या बेदखल किए हुए भूमिहीन मजदूरों की बढ़ती हुई जमात में शामिल हो गया[3]।'

---

१. प्रेमचन्द : 'गोदान'(१९३६ई०),पृ०सं० ११० ।

२. वही, पृ०सं० ११३ ।

३. पं० नेहरू : 'मेरी कहानी',पृ०सं० ४१८ ।

(छ) देशभक्त वर्ग

भारतीय स्वतन्त्रता आन्दोलन के इतिहास में देश-भक्त वर्ग का स्थान बहुत महत्वपूर्ण है । देशभक्त वर्ग ने हर तरह की मुसीबतें झेलकर स्वतंत्रता संग्राम के आन्दोलन को सफल बनाया । उपन्यासकारों पर इसी देश भक्ति का प्रभाव पड़ा । प्रेमचन्द ने `गबन` (१९३०ई०) उपन्यास में देवीदीन खटिक नामक देशभक्त पात्र को रखा है । बहुत से ऐसे पात्र भी प्रेमचन्द ने अवतरित किए हैं,जो कि पहले सरकारी नौकरी में थे, पर देश-भक्त होने के नाते नौकरी छोड़ देते हैं तथा स्वतंत्रता संग्राम के आन्दोलन में सहयोग दिया । जैसे `कर्मभूमि` (१९३२ई०) का सलीम और `प्रेमाश्रम` (१९२२ई०) का डिप्टी ज्वाला सिंह । इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि शिक्षित तथा अशिक्षित दोनों वर्गों ने देशभक्त होने के कारण मुसीबतों का सामना किया ।

प्रेमचन्द का `गबन` (१९३०ई०) मध्यवर्गीय जीवन के यथार्थ को व्यक्त करने वाला सशक्त उपन्यास है । मध्यवर्गीय जीवन की असंगतियों और मनोवैज्ञानिक सत्यों का बड़ा ही तीखा बोध `गबन` (१९३०ई० के द्वारा व्यक्त हुआ है । `गबन` (१९३०ई०) में राजनीतिक समस्याओं का स्थान -स्थान पर अच्छा उद्घाटन हुआ है । उच्च वर्ग के लोगों और नेताओं में मनोबल की कितनी हीनता है, कितनी असंगतियां हैं, कितना दिखावा है,जीवन के वास्तविक मूल्यों की पकड़ कितनी कम है, यह सत्य देवीदीन खटिक की बातों से स्पष्ट होता है ।

`गबन` (१९३०ई०) उपन्यास में देवीदीन खटिक नामक पात्र में देशभक्ति कूट-कूट कर भरी हुई है । देवीदीन खटिक भारतीयस्वतंत्रता

का पुजारी है । वह स्वतंत्रता को पाने के लिए कुछ भी त्याग कर सकता है । देवीदीन खटिक अपने ऊपर होने वाले अत्याचारों को सह नहीं पाता है तथा स्वतंत्रता पाने के लिए अथक परिश्रम करता है । वह विदेशी वस्त्रों को पहनना उचित नहीं समझता है । उसकी अल्पमति में यह बात स्थिर है कि देशी वस्त्र पहनने में कभी-कभी रुपया अधिक लग जाता है, परन्तु उससे देश का धन विदेश में तो नहीं जाता है । इस प्रकार वह शासन के अत्याचार के विरुद्ध वह अपने देश-प्रेम पर गर्व करता है । शासन से मोर्चा लेने के लिए वह केवल बातें ही नहीं करना चाहता, वरन् त्याग भी करता है । उसने अपने दो युवा लड़कों को स्वतन्त्रता आन्दोलन में बलि दे दिया है । वह पुत्र मोह में पड़कर अपने देश-प्रेम के को भुला नहीं पाता है । उसके पुत्र विदेशी वस्त्रों की दुकान पर धरना देते रहे हैं,-- 'जिस देश में रहते हैं, जिसका अन्न-जल खाते हैं, उसके लिए इतना भी न करें तो जीने को धिक्कार है । दो जवान बेटे इसी सुदेसी की भेंट कर चुका हूं, भैया । ऐसे ऐसे पट्ठे थे कि तुम से क्या कहूँ । दोनों विदेसी कपड़े की दुकान पर तैनात थे । क्या मजाल थी कि कोई गाहक दुकान पर आ जाय ।'[1] देवीदीन खटिक भी विदेशी वस्त्रों की दुकान पर धरना देता है । वह खटिक भी विदेशी वस्त्रों की दुकान पर जाकर वह विदेशी वस्त्रों की बिक्री को रुकवा कर ही दम लेता है । वह अपने युग के सच्चे सत्याग्रहियों का एक प्रतीक बन गया है ।

---

१. प्रेमचन्द : 'गबन' (१९३०ई०), पृष्ठ २५२ ।

वह अपने युग के उन व्यक्तियों के प्रति घृणा प्रकट करता है, जो ऊपर से देशभक्ति का राग अलापते हैं, परन्तु अपने जीवन में अनाचार-व्यभिचार करते हैं । वह महात्मागांधीजीके सत्य को मानने वाला प्रतीत होता है । उसका कहना है कि अपना उद्धार किये बिना कोई भी व्यक्ति देश का उद्धार नहीं कर सकता है । विदेशी शासकों के आगे रोने से भी उसकी दृष्टि में कोई लाभ नहीं हो सकता है । उसकी आंखों के सामने स्वराज्य का एक मधुर चित्र रहता है । उसे आशा है कि स्वराज्य मिलने पर हजारों रूपये वेतन लेने वाले अफसर नहीं रह सकते हैं । वकीलों की लूट तथा पुलिस का आतंक नहीं रह सकता है । उसके सामने किसानों व तथा मजदूरों का उज्ज्वल भविष्य रहता है और अपने देश की मंगल कामना करता रहता है । अनपढ़ होते हुए भी वह देशानुराग से भरा है । `गबन` (१९३०ई०) में देवीदीन ही ऐसा पात्र है जो राजनीतिक प्रभाव से पूर्णरूप से प्रभावित है तथा गांधी जी के सत्य, अहिंसा और सत्याग्रह में विश्वास करता है । हम कह सकते हैं कि वह गांधी जी का छोटा प्रतिरूप है । `गबन` (१९३०ई०) उपन्यास में देवीदीन नामक पात्र का, जो कि शासन के अत्याचार के विरुद्ध विद्रोह करता है, प्रेमचंद समर्थन करते हैं । चूंकि प्रेमचंद साहित्यकार थे तथा उनकी प्रारम्भिक रचनाओं को सरकार ने जब्त कर लिया था, इसी से क्षुब्ध होकर प्रेमचन्द ने अपने उपन्यासों में जहां-तहां शासन के अत्याचार के प्रति विरोध प्रकट [illegible] किया है ।

'गबन' (१९३०ई०) उपन्यास में देवीदीन खटिक के द्वारा शासन के अत्याचार का विरोध किया जाना किसी भी प्रकार से अनुचित नहीं कहा जा सकता है । कोई भी व्यक्ति अपनी पराधीनता की स्थिति स्वीकार नहीं कर पाता है, भले ही परिस्थितिवश थोड़े दिन तक अत्याचार सह ले । इस कसौटी पर कसने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि देवीदीन का शासन के विरुद्ध विरोध प्रकट करना उचित ही है, अनुचित नहीं, क्योंकि देवीदीन में भी देशभक्ति का जागरण है और इसी जागरण के फलस्वरूप वह खुद तथा अपने लड़कों द्वारा महात्मा गांधी के सत्याग्रह और उन हिंसा के सिद्धान्त के आधार पर अपना विरोध प्रकट करता है, जिसे हम राजनीतिक दृष्टि से अनुचित नहीं कह सकते हैं । [illegible] पात्र देवीदीन समुचित रीति से हमें दे देता है । अशिक्षित एवं तथाकथित निम्नवर्ग के दुर्व्यसनी व्यक्ति के हृदय में भी इस युग में अगाध देशभक्ति की भावना विद्यमान है, यह तथ्य इस पात्र के द्वारा भली भांति विदित हो जाता है । इसके अतिरिक्त लेखक ने इसके द्वारा यह भी स्पष्ट कर दिया है कि कुलीन धनिक तथा सभ्य व्यक्ति भी अनैतिक आचरण कर सकते हैं और इसके विपरीत अशिक्षित, निम्न कुल व निर्धन व्यक्ति में उदात्त नैतिक गुण रह सकते हैं । लेखक की मानवता सम्बन्धी यह अवस्था भी इससे स्पष्ट हो गई है, कि सत्संगति, अनुकूल परिस्थिति प्राप्त करके अशिक्षित तथा निम्न वर्ग का व्यक्ति भी अपना जीवन उन्नत बना सकता है । देवीदीन लेखक के जीवन दर्शन का प्रतीक बन गया है ।

जग्गो के कारण ही देवीदीन में देशभक्ति का उदय होता है । जग्गो में भी देशभक्ति की भावना कूट-कूट कर भरी हुई है ।

स्वतन्त्रता संग्राम के निमित्त वह अपने दो बेटों का बलिदान कर सकती है पर शासन के अत्याचार का विरोध करती है, इससे स्पष्ट हो जाता है कि देवीदीन की भांति जग्गो में भी राजनीतिक जागरण की भावना है। प्रेमचन्द ने जग्गो में पर्याप्त राजनीतिक चेतना का विकास दिखाया है। जग्गो का भी शासन के अत्याचार का विरोध हमें उचित प्रतीत होता है।

(ड) <u>ब्रिटिश सरकार की न्याय-व्यवस्था</u>

न्यायशास्त्र के आधार पर ही कोई राजनीतिक व्यवस्था टिकती है अन्यथा अराजकता की स्थिति में कोई भी सामाजिक राजनीतिक व्यवस्था संगठित नहीं हो सकती। न्यायशास्त्र के मूलभूत नियम तथा मानदण्ड क्या हैं? इसी से किसी भी व्यवस्था का मूल्यांकन किया जा सकता है। सामन्त युग, परतन्त्र देश, जनतांत्रिक प्रजाप्रणाली तथा सामाजिक-आर्थिक जनतन्त्र व्यवस्था सभी के न्यायशास्त्र भिन्न हैं, क्योंकि समाज रचना तथा शासन प्रबन्ध की व्यवस्था एक दूसरे से भिन्न है। भारत में अंग्रेजों के आगमन से सामंतकालीन व्यवस्था का विघटन प्रारंभ हुआ और नई व्यवस्था की स्थापना हुई, अतः स्वाभाविक था कि नवीन न्यायशास्त्र का भी सूत्रपात हो। प्रारम्भिक अवस्था में अंग्रेजों की [illegible] न्याय व्यवस्था किसी सीमा तक सामंतकालीन न्यायशास्त्र की अपेक्षा विकासशील थी। समस्त ब्रिटिश भारत में एक न्यायशास्त्र की व्यवस्था प्रारम्भ हुई तथा सामंतों की वैयक्तिक सम्पत्ति को ही न्याय न मानकर कुछ मूलभूत मानदण्ड निश्चित किये गये, जिनका लाभ प्रत्येक सामान्य

व्यक्ति भी उपलब्ध कर सकता था । लेकिन अन्तत: इल्बर्ट बिल जैसे काण्डों का भी होना निश्चित था । ब्रिटिश साम्राज्य का विरोध करना सबसे बड़ा अन्याय था, अत: प्रेस का कानूनों का भरमार तथा कठोरता को भी न्यायोचित माना गया ।

'रंगभूमि' (१९२५ई०) उपन्यास में सूरदास की जमीन लेकर मि० क्लार्क तथा म्युनिसिपल बोर्ड के चेयरमैन राजा महेन्द्र कुमार सिंह में संघर्ष होता है । मि० क्लार्क अपनी प्रेमिका सोफिया से शासन-नीति का यह भेद खोलते हैं कि,--'एक जिले के अफसर के खिलाफ किसी रईस की मदद करना हमारी प्रथा के प्रतिकूल है, क्योंकि इसके शासन में विघ्न पड़ता है ।' जिले का अफसर बादशाह था, उसके विरुद्ध राजा महेन्द्र तथा जननेताओं को भी न्याय मिलना कठिन है, अन्य साधारण व्यक्तियों का प्रश्न तो कल्पना के बाहर है। इन्हीं विशेषाधिकारों के फलस्वरूप सरकार का नौकर होना सबसे बड़ा गौरव समझा जाता था, क्योंकि उन्हें अन्याय करने की खुली छूट था । लेकिन राष्ट्रीय जागरण के कारण स्थिति में कुछ परिवर्तन आ गया था ।

गवर्नर महोदय शासन के विरुद्ध शोर मचाने के डर से राजा महेन्द्र का पक्ष लेते हैं । लेकिन साथ ही यह सम्भव ही कैसे था कि एक भारतीय के लिए किसी अंग्रेज अफसर का अपमान किया जाता । अत: मि० क्लार्क को और भी ऊंचे, पोलिटिकल एजेण्ट के पद पर स्थानान्तरित किया जाता है । गवर्नर को सूरदास की

जमींन पर न्याय देना नहीं चुकता, वरन् ब्रिटिश सरकार के राज्य की रक्षा ध्यान में रखकर कानून की सुनवाई करता है ।

ग. ब्रिटिश शासन नीति — ब्रिटिश शासन-व्यवस्था का मुख्य आधार जिलाधीश होता था । समस्त देश जिलों में विभाजित था, जिनके शासक बहुधा अंग्रेज होते थे । इन जिलाधीशों की सहायता से ही मुट्ठी भर अंग्रेज इतने विशाल भू भाग पर राज्य करने में समर्थ हो सके थे । जिले में अंग्रेजी सरकार का वह प्रतिनिधि होता था । 'रंगभूमि' (१९२५ई०) में क्लार्क जिलाधीश के रूपमें सूरदास पर अत्याचार करता है । क्लार्क, सोफिया से कहता है कि भारत में अंग्रेजी शासन कायम रह सकता है, यदि जनता पर अंग्रेजों का आतंक छाया रहे[1] । अपनी शक्ति का क्लार्क गांवों के लोगों के दबाने में प्रयोग करता है । प्रत्येक जिलाधीश अपने जिलों में उस आतंक को चिरस्थायी बनाये रखने की चेष्टा करता था । देश और समाज का कल्याण अंग्रेजी शासन का उद्देश्य नहीं था, ब वरन् अपने साम्राज्य का हित साधन व तथा विस्तार क ही उनका मुख्य स्वार्थ था ।

प्रेमचन्द उदारपंथी नेताओं को चेतावनी देने के निमित्त, सोफिया के विश्वासघात करने के अवसर पर क्लार्क के मुंह से इंग्लैण्ड के विभिन्न राजनीतिक दलों की साम्राज्यवादी नीति का पर्दाफाश करते हैं,--'अंग्रेज जाति भारत को अनन्तकाल तक अपने साम्राज्य का अंग बनाये रखना चाहती है । कंजरवेटिव हो

---

१. प्रेमचन्द : 'रंगभूमि',(१९२५ई०),पृ०सं० २५ ।

चाहे लिबरल, रेडिकल हो या लेबर, नेशनलिस्ट हो या सोशलिस्ट, इस विषय में सभी एक ही आदर्श का पालन करते हैं। सोफी के पहले मैं स्पष्ट कह देना चाहता हूं कि रेडिकल और लेबर नेताओं के धोखे में न आओ। कंजरवेटिव दल में और चाहे कितनी ही बुराइयां हों, वह निर्भीक है, तीक्ष्ण सत्य से नहीं डरता। रेडिकल और लेबर अपने पवित्र और उज्ज्वल सिद्धान्तों का समर्थन करने के लिए ऐसी आशाप्रद बातें कर सकते हैं, जो भिन्न-भिन्न दल इस जाति पर आधिपत्य जमाये रखने के लिए ग्रहण करते हैं। कोई कठोर शासन का उपासक है, कोई सहानुभूति का, कोई चिकनी-चुपड़ी बातों से काम निकालने का। बस वास्तव में कोई नीति ही नहीं केवल उद्देश्य है, वह यह कि क्योंकर हमारा आधिपत्य उत्तरोत्तर सुदृढ़ हो।[1] प्रेमचन्द ने ब्रिटिश जाति के मर्म को कुछ ही शब्दों में व्यक्त कर दिया। जब कि भारतीय नरम दल तथा लिबरल दल सदैव इस भ्रमजाल में भटकता रहा कि इंग्लैण्ड का लेबरदल प्रगतिशील विचारों का समर्थक है तथा मानवतावाद का पुजारी है, अत: वह शीघ्र ही औपनिवेशिक स्वराज्य देगा। ये राजनीतिज्ञ डोमीनियन स्टेट्स से आगे बढ़ना चाहते थे, क्योंकि अंग्रेजी राज्य से सम्बन्ध रखने में वह अब भी देश का कल्याण समझते थे। इस भ्रान्त धारणा के फैलने का एक कारण यह भी था कि जब कभी इंगलैण्ड में लेबर दल

---

१. प्रेमचन्द : `रंगभूमि` (१९२५ई०), पृ०सं० १८५-१८६ ।

की सरकार बनता था, भारत को सुधार योजनायें--मार्ले-मिण्टो तथा माण्टेग्यु- चेम्सफोर्ड तथा १९३५ई० का विधान देकर प्रसन्न करने का प्रयत्न किया गया । लेकिन वह सब साम्राज्यवादी आधार को और भी दृढ़ करने के लिए सुनहरी जाल बनाने का प्रयास था । प्रेमचन्द का यह निष्कर्ष उनकी राजनीतिक बुद्धि का परिचय देता है । देता है । यही कारण है कि अनेक तत्कालीन नेताओं की भांति वह कभी भी युग से पीछे नहीं रहे, वरन् सत्य तो यह है कि राष्ट्रीय नेताओं से भी आगे बढ़ जाते हैं ।

-0-

षष्ठ अध्याय

-०-

आर्थिक स्थिति और हरिजन

(क) शासक वर्ग ।

(ख) समाज वर्ग ।

(ग) जमींदार वर्ग ।

(घ) पूंजीपति वर्ग ।

(ङ०) राज वर्ग ।

षष्ठ अध्याय

-0-

आर्थिक स्थिति और हरिजन

दुर्भाग्य की बात है कि हरिजनों की आर्थिक स्थिति ब्रिटिश काल से ही अत्यन्त दयनीय रही है। जमींदारों के खेतों में परिश्रम हरिजन करता था, आय जमींदार को होती थी। जमींदारों का शोषण इस हालत तक हरिजनों के ऊपर बढ़ गया कि उनका साधारण जीवन व्यतीत करना भी दुर्लभ हो गया। ब्रिटिश सरकार के द्वारा प्रोत्साहन के फलस्वरूप हरिजनों के आर्थिक विकास की सम्भावनाएं समाप्त हो गईं। जमींदारों का उद्देश्य हरिजनों का आर्थिक शोषण करना था। हरिजनों के आर्थिक विकास या हरिजनों के ऊपर होने वाले अत्याचार से उनका कोई सम्बन्ध न था। दासता के कारण हरिजनों को सरकारी कर्मचारियों का पेट भी भरना पड़ता था। इसके साथ ही साथ समाज और राज तथा महाजनों के वर्ग द्वारा हरिजनों का शोषण अत्यन्त अमानवीय ढंग से किया गया। इससे हरिजनों की आर्थिक दशा दिन-प्रतिदिन शोचनीय होती गई। कदाचित् इसी को लक्ष्य करके भारतेन्दु जी ने लिखा था :—

औरज राज सुरत गाज तां नम भारा ।

ये सन विदेश बलि जात अहै अति प्यारी ।

हरिजनों के साथ सामाजिक दुराव का जो भावना है, इसके पीछे एक ओर तथाकथित परम्पराओं और संस्कारों का इतिहास है, वहीं हरिजनों की आर्थिक गरीबी भी है। यह उल्लेखनीय ह बात है कि दुनिया में अमीरी और गरीबी के दो वर्ग होते हैं, परन्तु भारत में अमीरी और गरीबी के दो वर्ण मिलते हैं। वर्णों के द्वारा ही हरिजन जातियां शोषित और पीड़ित रही हैं। इनका इतना अधिक आर्थिक शोषण हुआ है, कि इनका मन भी गिर गया है। हमारे देश की की ५५ करोड़ आबादी में लगभग ६ करोड़ ऐसे लोग हैं,जो भूमिहीन हैं और इनमें अधिकतर हरिजन हैं। हरिजन हमेशा से सवर्णों की सेवा करते आये हैं। परम्परागत बेगार प्रथा, सौ-दो सौ के बदले जिन्दगी भर बंधक बनाकर रखना तो एक साधारण सी बात रही है।

इस वर्ग का जीवन स्तर बहुत भिन्न है। कई वर्ग ऐसे मिल जाते हैं, जो आर्थिक विसंगतियों के कारण एक वक्त भोजन करते हैं। वे अच्छे वस्त्र धारण नहीं कर पाते, साफ-सुथरे नहीं रह पाते। हरिजनों की आर्थिक स्थिति में कोई विशेष सुधार नहीं हुआ है। यद्यपि उनको अब जमीनें दी जा रही हैं, परन्तु यह वर्ग सदियों से इतना दबाया गया है कि इसको ऊपर उठने में कुछ समय ले लेगा। हरिजन वर्ग के लोग अभी भी पुराने

पेशों को करने में मस्त रहते हैं । यही कारण है कि उनकी आर्थिक स्थिति दयनीय है । हरिजनों के मकानों की दशा बहुत जीर्ण है। कच्ची दीवार के घर और फूस के झोपड़ों में आर्थिक संकट के कारण ये गुजारा करते हैं । आर्थिक स्थिति के कारण ही वे उच्च शिक्षा प्राप्त नहीं कर पाते । हरिजन समस्या अभी उलझी हुई है । इस दिशा में अभी बहुत काम करना शेष है । जब तक देश में हरिजनों की आर्थिक स्थिति नहीं सुधरती, तब तक देश महान् नहीं बन सकता, क्योंकि देश के महान् होने से आदमी महान् नहीं बनता, बल्कि जिस देश के व्यक्ति महान् होते हैं, वही देश महान् बनता है ।

(क) शासक वर्ग

शासक वर्ग ने भी हरिजनों के साथ अत्याचार किया है । देश में पांच पंचवर्षीय योजनाएं बन चुकी हैं, पर हरिजनों की आर्थिक स्थिति को सरकार ऊंचा उठा नहीं सकी है । हर तरफ हरिजनों का आर्थिक शोषण होता है । हिन्दी उपन्यास-कारों ने इस समस्या को भी अपने उपन्यासों में स्थान प्रदान किया है । शासक वर्ग के व्यथित होने के कारण ये लोग हरिजनों का मनमाना आर्थिक शोषण करते हैं ।

हरिजनों का समाज में किस प्रकार आर्थिक शोषण किया जाता है, इसका चित्रण 'टूटा हुआ आदमी' (१९६४ ई०) उपन्यास में मिलता है । अंसारी जुलाहे का शोषण, मौलवी साहब

के न्यारा किया जाता है । अंसारी जुलाहे के कारण मुवक्किल मुकदमा जीत जाता है । मुवक्किल वकील के सौ रुपये बख्शीश में देने के लिए मौलवी साहब को देता है, पर मौलवी साहब यह कहकर रुपया रख लेते हैं कि ये अभी काम सीख रहे हैं । इस प्रकार मौलवी साहब अंसारी जुलाहे के ऊपर आर्थिक अत्याचार करता है । राज मेहरा से अंसारी जुलाहा कहता है,-" मैं एक बहुत गरीब बाप का बेटा हूं । मेरा बाप जुलाहा है । उसने पेट काट-काट कर मुझे पढ़ाया । मेरी मां ने अपनी सोने की चुड़ियां गिरवी रखकर मुझे यह साइकिल दिलाई । मौलवी साहब राजघाट पर रहते हैं । मुझे मदनपुर से रोज तीन मील का चक्कर देकर सुबह ठीक सात बजे उनके चेम्बर में पहुंचना पड़ता है । फिर साढ़े नौ बजे वहां से घर जाने की छुट्टी मिलती है घर पहुंचकर खाना खाकर बिना सुस्ताए फिर तीन मील साइकिल चलाकर कचहरी आता हूं । वहां चार बजे तक मौलवी साहब की फाइलें उठाए उनकी खिदमत करता हूं । शाम को चार -साढ़े चार बजे फिर छुट्टी मिलती है तो घर जाता हूं । वहां से छः साढ़े छः तक फिर मौलवी साहब के घर पहुंच जाता हूं । रात दस-ग्यारह से पहले छुट्टी नहीं मिलती ।[1]" अंसारी आगे कहता है,--" एक साल से इतनी तगड़ी ड्यूटी दे रहा हूं । मगर आज तक एक फूटी कौड़ी न मिली। सोचता था इस केस में अगर बख्शीश मिलेगी तो मां की गिरवी पड़ी सोने की चुड़ियां छुड़ा लूंगा ।[2]" पर अंसारी को बख्शीश नहीं मिलती है

----

१. रामप्रकाश कपूर : `टूटा हुआ आदमी`(१९६४ई०),पृष्ठांक २०२ ।
२. वही, पृष्ठांक २०२ ।

लेखक का अंसारी के ऊपर हुए अत्याचार के प्रति दृष्टिकोण सहानुभूतिपूर्वक है । वे इस अत्याचार के प्रति सहमत नहीं, है यह बात राज मेहरा के कथन से स्पष्ट जाती है,--' यह तो भयंकर शोषण है । तुम किसी सीनियर को क्यों नहीं पकड़ते ।'[1] लेखक मौलवी साहब के अत्याचार का विरोध करता है ।

मौलवी साहब ने जो अत्याचार वकील के ऊपर किया है,उसको युक्तिसंगत नहीं कहा जा सकता है । अगर अंसारी मुलाहा के कारण कोई मुवक्किल मुकदमा जीत जाता है तथा उसको इनाम देता है पर मौलवी साहब उस रुपये को मुलाहे को नहीं देना चाहता तो दोष इसमें किसका है ? दोष तो इसमें मौलवी साहब का ही दिखाई देता है न कि अंसारी मुलाहे का । मौलवी साहब तो एक अत्याचारी व्यक्ति के रूप में उपन्यास में चित्रित किए गए हैं । अंसारी कहता है,--' भागे हुए सांड को कोई नहीं पालता ।'[2] अंसारी अपने ऊपर होने वाले अत्याचारों का विरोध करता है,--'मुझसे अच्छा तो मौलवी साहब का मुंशी है,जो चार पांच रुपये रोज पैदा कर लेता है । मुझे तो वकालत के पेशे से ही नफरत हो गई है । क्या एक जूनियर वकील,पान-वाले,रिक्शे वाले, खोमचे वाले, टाइपवाले सभी गया-बीता है ? क्या वह हवा खाकर जिएगा ?.... मगर बड़े वकील तो चाहते हैं कि उनके पेशे में कम से कम लोग आएं ।'[3] इससे स्पष्ट हो जाता है कि हरिजन वर्ग के लोगों

----

१. रामप्रकाश कपूर : 'टूटा हुआ आदमी' (१९६ ई०),पृष्ठांक २०३।

२. वही, पृष्ठांक २०३ ।

३. वही, पृष्ठांक २०३ ।

भी प्रत्येक वर्ग के लोग को दबाना चाहते हैं । अंगारा को इतना
वकालत से नफरत हो गई है कि वह उस पैसे को पानेवाले से भी
गया-बीता समझता है । अंगारा आगे कहता है,-- ` इस प्रोफेशन
में दस-पांच ऐसे भले आनियार मिलेंगे, बाकी तो सब पैसे के भूखे हैं ।
उन्हें पैसे से मतलब है, चाहे वह किसी के खून से सने रुपये क्यों
न हो ?...[1]` राज मेहरा भी कहता है, --` दुनिया में दो पेशे
ऐसे हैं,जहां नये चेहरों को वही लोग स्थान देते हैं जो उनका
शोषण करना जानते हैं । अपवाद हर जगह होते हैं यहां भी हो
सकते हैं । मगर अपनी बेटी की गन्दी कमाई खाने वाली बूढ़ी
वेश्या में और .... आप लोग क्षमा करें.... अपने नये जूनियर
के गाढ़े पसीने की कमाई खाने वाले बूढ़े सीनियरों में मैं कोई
अन्तर नहीं देखता । ...[2]` राज का रामनारायण से इस प्रकार
कहना समाज की सच्चाई को प्रकट करता है । राज समाज की
आलोचना करते हुए कहता है,-- ` क्या ऐसा भी कोई सभ्य समाज
है जो चोरी, राहजनी,डाका, हत्या व बलात्कार जैसे घृणित
अपराधों को उचित मानता हो ।.... मगर अफसोस है, यह कहते
लज्जा से मेरा मस्तक झुक जाता है कि हम वकीलों का समाज,इन
अपराधों का तिरस्कार न कर, उनकी वकालत करता है... । केवल
कागज के नोटों के लिए अपनी व्यक्तिगत सुख-सुविधा के लिए हो
हम कानून को जानकर बाल की खाल निकाल कर.... अदालत को
गलतफहमी में डालकर उच्च न्यायालयों के फैसलों के जाल में उलझाकर

---

१. रामप्रकाश कपूर : `टूटा हुआ आदमी`(१९६९ ई०),पृ०सं०२०३।
२. वही, पृ०सं० २०३ ।

दिन की रात, सब को झूठ सिद्ध कर अपना उल्लू साधा करते हैं ...[1] । न्यायमंदिर में न्यायाधीश की कुर्सी के दाहिनी ओर बैठने वाले पेशकार सरासर दिन दहाड़े घूस लेते हैं ।[2] वकील के चरित्र के दो रूप सामने आते हैं-- एक रूप तो है घूस रिश्वत लेना तथा दूसरी तरफ वकील लोग अपने जूनियरों पर अत्याचार करने से नहीं चूकते । एडवोकेट रामनारायण एक तरफ तो घूस रिश्वत लेते हैं तथा दूसरी ओर अपने से जूनियरों का शोषण भी करते हैं । मौलवी साहब अंसारी वकील का सामाजिक शोषण के साथ आर्थिक शोषण भी करता है । राज के शब्दों में लेखक कह रहा है कि , --`वर्तमान व्यवस्था के मूल में कहीं कोई कड़ी कमजोर व टूटी हुई है । इसे जड़ से बदलना होगा, नीचे से ऊपर तक क्रान्ति करनी पड़ेगा .... तभी समाज प्रगति करेगा, देश आगे बढ़ेगा ..... हो सकता है उस कायाकल्प के बाद समाज को हमारी जरूरत न रहे । तब रोजी-रोटी के लिए हम-आप सभी कोई दूसरा सम्मानजनक धन्धा अपनाने को मजबूर होंगे... ।'[3]

मौलवी साहब का `टूटा हुआ आदमी' (१९६४ई०) में चित्रण एक ऐसे व्यक्ति के रूप में हुआ है जो कि अपने अधीन लोगों का आर्थिक शोषण करता है । मौलवी साहब भी एक ओर अंसारी एडवोकेट से अधिक काम कराकर उसका सामाजिक शोषण करते हैं तो दूसरी ओर उसका आर्थिक शोषण भी करते हैं ।`टूटा हुआ आदमी`

---

१. रामप्रकाश कपूर : `टूटा हुआ आदमी' (१९६४ई०), पृ०सं० २०४।
२. वही, पृ०सं० २०४ ।
३. वही, पृ०सं० २०५ ।

(२८६-२९०) में मौलवी साहब बड़ तथा रामनारायण हरिजनों का शोषण करते हैं । केवल यही नहीं, वरन् सभी सवर्ण हिन्दू वर्ग हरिजनों पर निरंकुशता से अत्याचार करते हैं । जब कोई व्यवस्था शोषण तथा अप्राकृतिक आधार पर टिकी होती है तो उस समय व्यक्ति में अनुकूल गुणों का उदय नहीं होता है तथा दुर्गुणों की व्यक्ति में बहुलता हो जाती है । मौलवी साहब अपने वर्ग के लोगों में तो सौजन्य तथा शान्ति की मूर्ति बने रहते हैं । दूसरों की सुविधा का ख्याल रखते हैं । उस समय उनका रूप हमारे सामने सच्चरित्र व्यक्ति के रूप में हमारे सामने आता है । लेकिन जब हरिजनों की बात आती है तो वे उन पर मनमाना अत्याचार करते हैं । इस प्रकार उनके चरित्र का दूसरा रूप हमें देखने को मिलता है । इसका कारण क्या है? इसका कारण यह हो सकता है कि समाज कई वर्णों में बंटा है । मौलवी साहब शायद उच्च वर्ग के व्यक्ति होने के कारण मध्यम वर्गीय व्यक्ति तथा हरिजन होने के नाते अंसारी जुलाहे के ऊपर अत्याचार करने में अपनी शान समझते हैं ।

यह महत्वपूर्ण तथ्य है कि मौलवी साहब जैसे शासक वर्ग के लोग न केवल आर्थिक शोषण करते हैं, वरन् सामाजिक क्षेत्र में भी प्रतिक्रियावादी तथा शोषक होते हैं । जब अंसारी जुलाहे के कारण एक मुवक्किल मुकदमा जीत जाता है, तो वह कुछ रुपये अंसारी को देना चाहता है, जिसमें मौलवी साहब भी हिस्सा बंटाना चाहते हैं । वे मुवक्किल से कह देते हैं कि ये अभी काम सीख रहे हैं ।

(४) समाज की

हमारा समाज इतना संकीर्ण ग्रस्त है कि वह हरिजनों को तरक्की करने ही नहीं देना चाहता । हरिजनों की आर्थिक स्थिति दयनीय रही है । समाज ने शोषण के द्वारा उनकी आर्थिक स्थिति और दयनीय बना दिया है । हिन्दी उपन्यासकारों की दृष्टि से यह तथ्य छिपा नहीं रह सका । उन्होंने अपने उपन्यासों में इस समस्या पर भी विचार प्रकट किया है ।

'गोदान' (१९३६ई०) उपन्यास में हरिजनों के ऊपर आर्थिक अत्याचार का चित्रण हुआ है । मातादीन का सिलिया चमारिन के साथ कामसम्बन्ध है । सिलिया अपना तन-मन सब कुछ मातादीन को सौंप देती है, पर मातादीन सिलिया का तन और मन दोनों लेकर भी बदले में कुछ न देना चाहता था । सिलिया तो उसकी नजर में केवल काम करने की मशीन है । सिलिया, दुलारी सहुआइन से दो पैसे का गुलाबी रंग लाई थी, पर पैसे न दे पाई थी । दुलारी सहुआइन के आकर तकाजा करने पर वह दो की जगह चार पैसे का अनाज दे देती है, "सिलिया ने आंख उठाकर देखा तो मातादीन वहां न था । बोली--चिल्लाओ मत सहुआइन, यह लो, दो की जगह चार पैसे का अनाज । अब क्या जान लोगी ? मैं मरी थोड़े ही जाती थी ।"[1] पर मातादीन उसी वक्त पेड़ की आड़ से सामने आकर सहुआइन से गल्ला वापस

---

१. प्रेमचन्द : 'गोदान' (१९३६ई०), पृ०सं० १४६ ।

ले लेता है । फिर उसने लाल-लाल आँखों से सिलिया को देखकर डांटा, --`तूने अनाज क्यों दे दिया[1] ? किससे पूछकर दिया ? तू कौन होता है मेरा अनाज देने वाला ?` इस प्रकार सिलिया का खुले आम मातादीन बेइज्जती कर देता है । सिलिया जब उससे पूछती है,--`तुम्हारी चीज़ में मेरा कुछ अख्तियार नहीं है । मातादीन आँखें निकाल कर बोला -- नहीं,तुझे कोई अख्तियार नहीं है । काम करता है, खाता है । जो तू चाहे कि खा भी, लुटा,भी तो यह यहां न होगा । अगर तुझे यहां न परता पड़ता हो,कहीं और जाकर काम कर[2] । मजूरों की कमी नहीं है । सेंत में नहीं लेते,खाना कपड़ा देते हैं ।` मातादीन इस प्रकार सिलिया चमारिन के ऊपर आर्थिक अत्याचार करता है ।

लेखक का सिलिया के ऊपर हुए आर्थिक अत्याचार के प्रति सम्यक् दृष्टि नहीं है । इसीलिए वे आगे चलकर मातादीन की बेइज्जती दिखाते हैं तथा उपन्यास के अन्त में उसे चमार बनाकर ही दम लेते हैं ।

सिलिया के ऊपर मातादीन जो आर्थिक अत्याचार करता है, उसको उचित नहीं कहा जा सकता है । कारण है कि जब सिलिया ने अपना तन तथा मन सौंप देता है तो सिलिया का क्या इतना अधिकार नहीं, कि वह उसके खलिहान से चार पैसे का अनाज दे सके । वह तो मातादीन की प्रेमिका न होकर स्त्री है तो मातादीन का सिलिया के ऊपर अत्याचार करना ठीक नहीं लगता है ।

----

१. प्रेमचन्द : `गोदान`(१९३६ई०),पृष्ठांक१५० ।

२. वही, पृष्ठांक १५० ।

फणीश्वरनाथ रेणु के 'मैला आंचल' (१९५४ई०) उपन्यास में हरिजनों के आर्थिक शोषण का चित्रण मिलता है। सवर्ण हिन्दु वर्ग के विश्वनाथ बाबू एक अस्पताल बनवाना चाहते हैं एवं तथा उसमें रैदास टोली के लोगों से बेगार लेने को कहते हैं, पर वे लोग तैयार नहीं होते हैं,-- 'रैदास टोली के लोगों ने वचन दिया --'सात दिनों तक कोई काम नहीं करेंगे। मालिक लोगों से कहिये-- हलफाउ, फोड़ कमान बन्द रखें। करना हो क्या है?'[1]

लेखक की दृष्टि हरिजनों के अत्याचार पर है। वह हरिजनों पर किसी तरह अत्याचार नहीं होने देना चाहते हैं, इसीलिए उसने रैदास टोला के लोगों में सामाजिक चेतना का विकास दिखाया है। हरिजन लोग अपने ऊपर होने वाले अत्याचार के प्रति सजग हैं।

हरिजनों से बेगार लेना तो नैतिक दृष्टि से उचित नहीं है। हरिजनों का बेगार करने से इन्कार कर देना उचित कहां सा है। अब वह जमाना नहीं रहा कि सवर्ण लोग हरिजनों के ऊपर चाहे जैसे मनमानी अत्याचार करें। पर, 'बबुआरी टोली के तनुकलाल ने एक सवाल पैदा कर दिया .....' लेकिन इसका हलफाउ व काम काज बन्द करने से मालिक लोग मजूरी तो दे देंगे। एक व दो दिन की बात रहे तो किसी तरह ऐसा भी हो सकता है। सात दिनों तक बिना मजूरी कैसे? यह जरा मुश्किल मालूम होता है।.....

---

१. फणीश्वरनाथ रेणु : 'मैला आंचल' (१९५४ई०), पृष्ठ० १३।

ततमा और दुसाध टोली के लोगों की बात जाने दीजिए । उनकी औरतें हैं, सुबह से दोपहरिया तक कमला में आठोपानी 'छिह' कर एक दो सेर गैंचा मछली निकाल लायेंगी । बाद से धान का सिल्ला लग जायेगा । बाबूलोगों के पुआल के टालों के पास धरती खरोंच कर चूहे के 'मांदों' को कोड़ कर भी कुछ धान जमा कर लेंगी । नहीं तो कोठी के जंगल से अमरबालु उखाड़ लायेंगी । रौतहट हाट में कटिहार मिल के कुली लोग चार आने सेर अमरबालु हाथों हाथ उठा लेते हैं । लेकिन और लोगों के लिए तो बड़ा मुश्किल है ।[1] 'हरिजन लोग तो केवल आधे दिन की मजूरी पर भी काम करने को तैयार है' ततुकलाल कहता है,--'एक उपाय है । यदि मालिक लोग आधे दिन की भी मजूरी दे दें तो काम चल जाये ।'[2]

हरिजनों से बेगार कराना तो उस सामंती व्यवस्था की याद दिलाता है, जो मध्यकाल में था । मध्यकाल में राजा लोग नीच जाति के लोगों से बेगार भी लेते थे तथा जरा सा गलती करने पर कोड़े भी लगवाते थे । पर आधुनिक भारतीय परिस्थिति में यह प्रथम प्रथा अब दम तोड़ रही है । आज भी कहीं-कहीं हरिजनों के बेगार न करने पर उनकी पिटाई की जाती है । विश्वनाथ बाबू का हरिजनों से बेगार लेने के दृष्टिकोण के पीछे कोई ठोस आधार भूमि नहीं है । उनका यह काम तो अत्याचार की नींव पर पनपता है । 'कौशिक' के 'भिखारिणी' (१९२९ ई०) उपन्यास में भी हरिजनों से ठिकेदार शिवसहाय बेगार लेते हैं । विश्वनाथ बाबू तथा ठिकेदार शिवसहाय दोनों ही अत्याचार करने में समान हैं ।

---

१. फणीश्वर नाथ 'रेणु' : मैला आंचल (१९५४ ई०), पृष्ठांक १३ ।
२. वही, पृष्ठांक १४ ।

रामगोविन्द मिश्र के 'मर्यादा'(१९५५ई०) में हरिजनों के आर्थिक शोषण का चित्रण मिलता है । समाज में तो वैसे हर सदियों से हरिजनों पर अत्याचार किये जाते रहे हैं । 'मर्यादा'(१९५५ई०) उपन्यास में उसी बात की पुनरावृत्ति हुई है अर्थात् रामदीन कोइरी का सवर्ण हिन्दू के द्वारा आर्थिक शोषण दिखाया गया है । रामसिंह, रामदीन कोइरी के घर से दो बोरा आलू ले जाते हैं, पर दाम नहीं देते हैं । इस प्रकार रामदीन कोइरी के ऊपर रामसिंह आर्थिक अत्याचार करते हैं । जब रामसिंह, नरेश तथा उमेश दुबे के घर की सम्पत्ति का बंटवारा करने के लिए उनके घर जाते हैं तो नरेश दुबे रामसिंह की कलई को खोल देता है । नरेश दुबे रामसिंह से कहता है,--'रामसिंह, अपना देखिए । भाई के लड़के को घर से निकाल दिया, उसका सारा हिस्सा हड़प गये और अब आये हैं, हमें उपदेश देने । रामदीन कोइरी के घर से आलू का बोरा ले आये और उसका पैसा देने से इन्कार कर गये और आप ही अब नरेश दुबे के घर के मामले पर विचार करने बैठे । जाइये, जाइये किसी कोइरी कुम्हार का मामला देखिये ।'[1]

रामगोविन्द मिश्र जी का हरिजनों के प्रति 'मर्यादा'(१९५५ई०) उपन्यास में दृष्टिकोण परम्परावादी ही है अर्थात् अत्याचारपूर्ण है । रामदीन कोइरी का चित्रण पुरातनवादी दृष्टिकोण के अनुसार 'मर्यादा'(१९५५ई०) उपन्यास में हुआ है । लेखक ने यद्यपि हरिजन पात्र में चेतना नहीं दिखाई है, पर नरेश दुबे के द्वारा अपना विरोध लेखक ने प्रकट कर दिया है । 'मर्यादा'(१९५५ई०)

---

१ . रामगोविन्द मिश्र : 'मर्यादा'(१९५५ई०), पृष्ठांक १८४ ।

उपन्यास में रामदीन कोइरी का जो आर्थिक शोषण रामसिंह के द्वारा किया जाता है, उसको हम निन्दनीय समझते हैं । इसका कारण यह है कि हरिजनों की आर्थिक अवस्था तो स्वयं ही शोचनीय होती है । उस पर से समाज के अत्याचार के कारण उनकी आर्थिक स्थिति और भी डांवाडोल हो जाती है । इसके साथ ही यह प्रश्न उठता है कि अगर रामसिंह ने रामदीन को छोड़ किसी दूसरे के घर से आलू ले आते, तो क्या उसका पैसा न देते ? पैसा तो निःसंदेह उन्हें देना पड़ता । तो जब वे दूसरे आदमियों को पैसा दे सकते हैं तो उन्होंने रामसिंह को क्यों नहीं पैसा देना उचित समझा ? इसका तो एक कारण मुझे स्पष्ट दिखाई देता है, चूंकि हरिजनों का वर्ग भारत जैसे देश में हमेशा से दबाया जाता रहा है, इसीलिए यही बात ध्यान में रखकर रामसिंह ने पैसा न दिया होगा कि यह हरिजन हमारा क्या कर लेगा ? पर इस बात को हम उचित नहीं समझते हैं कि आप उनका सामाजिक, आर्थिक या अन्य किसी दृष्टि से शोषण करें, कारण यह कि वे निम्न हैं, पतित, म्लेच्छ हैं । बहुत से लोग यह तर्क देते हैं कि हरिजन आपस में संगठित नहीं हैं । वे जब तक अपनी तरक्की नहीं करेंगे तब क्यों लोग उनकी उन्नति की ओर ध्यान लगावें । मैं पूछना चाहता हूं कि क्या हरिजन वर्ग इंजिन के समान आगे-आगे चलेंगे और हम सब सवर्ण हिन्दू वर्ग इंजिन के पीछे डिब्बे बनकर घिसटेंगे ?

रामसिंह, जो कि रामदीन कोइरी का आर्थिक शोषण करता है, महाजन के समान है । जैसे महाजन लोग निम्न लोगों का शोषण करते हैं, उसी प्रकार रामसिंह कोइरी का आलू

उठा लाते हैं । ऐसा लगता है कि मानो रामसिंह का रामदीन कोरी कर्जदार रहा हो तथा कर्ज न देने के कारण रामसिंह प्रतिशोध की भावना से उसके घर का आलू उठा लाते हैं । पं० नेहरू लिखते हैं कि सरकारी[१] आर्थिक नीति बिल्कुल साहूकारों के ही हक में रही है । सवर्ण हिन्दू वर्ग हमेशा से हरिजनोंपर आर्थिक अत्याचार करते आये हैं । आज भी स्वतंत्र भारत में भी हरिजनों का आर्थिक शोषण समाज के द्वारा किया जाता है। इसका विरोध करना चाहिए । हरिजनों की आर्थिक स्थिति तब तक सुधर नहीं सकती, जब तक कि वे नादार न हो जायें । जब रामसिंह स्वयं इतना बेईमान तथा भ्रष्ट चरित्र का व्यक्ति है तो उसके द्वारा दुबे परिवार के घर की सम्पत्ति का बंटवारा करना कहां तक उचित कहा जा सकता है ? रामदीन कोरी में सामाजिक चेतना का विकास नहीं मिलता है, क्योंकि वह रामसिंह के अत्याचार का विरोध नहीं करता है, जो उचित नहीं कहा जा सकता है ।

इन्द्र विद्यावाचस्पति के 'अपराधी कौन' (१९५५ई०) उपन्यास में भी आर्थिक अत्याचार का चित्रण मिलता है । रोशन कुम्हार के ऊपर आर्थिक अत्याचार को 'अपराधी कौन' (१९५५ई०) उपन्यास में चित्रित किया गया है । हरिजन वर्ग तो वैसे ही आर्थिक दृष्टि से निम्न श्रेणी वाले होते हैं और उनपर आर्थिक अत्याचार करना बिल्कुल अनुचित लगता है । जब सिंह तथा गेंदा दुबे की नारंगी

---

१. पं० नेहरू : 'मेरी कहानी', पृ०सं०४२४ ।

का मटकों उलट देते हैं, तो कबीर और उम्मेद दोनों अपना जेब नारंगी से भरने लगते हैं। जब जेबें भर जाती हैं तो वे रोशन कुम्हार की मटकियां और दाम दिये उठा लेते हैं और उनमें नारंगी भरते हैं। जब रोशन कुम्हार अपने सामान का दाम नहीं पाता तो वह जोर-जोर चिल्लाता है। परिणाम यह होता है कि दोनों उनकी मटकियां फेंक कर भाग जाते हैं। इस प्रकार समाज के लोगों के द्वारा कुम्हार पर आर्थिक अत्याचार किया जाता है,--"रोशन कुम्हार की दुकान पर उस समय भीड़ लग रहा था। रोशन को यह चिन्ता लगी रही थी कि कहीं धक्कमधक्का में उसके बर्तन फूट जायं। कबीर की जेबें जब नारंगियों से भर गईं, तो उसे एक नया ढंग सूझा। उसने कुम्हार की दुकान से मिट्टी की एक मटका उठा ली और उसमें नारंगियां भरने लगा। रोशन ने उसे मटका उठाते देख लिया। वह एकदम कबीर से मटका छीनने को झपटा। वह मटकी फेंक कर भागा। मटका गिरकर टूट गई। रोशन जोर-जोर चिल्लाता हुआ पीछे भागा।" रोशन को जो भय व्याप्त हो रहा था, आखिर वही होकर हुआ कि मटकियां फूट गयीं।

लेखक रोशन के प्रति आर्थिक अत्याचार से सहमत नहीं है। वह अत्याचार का विरोध करता है तथा पुलिस के हाथ कबीर को पकड़वा देता है,"पीछे से रोशन भागा चला आ रहा था,

---

१. इन्द्र विद्या वाचस्पति : 'अपराधी कौन' (१९५४ई०), पृष्ठसं० ३४।

आगे से सिपाही ने रास्ता रोक लिया । वह जरा सा ठिठक गया। इस में शिकार शिकारियों के चंगुल में आ गया और सिपाही ने बशीर का हाथ पकड़ लिया ।[1] यदि लेखक रोशन के प्रति कुछ आर्थिक अत्याचार से सहमत होता तो वह अपराधी को भाग निकलने देता ।

रोशन को जो आर्थिक हानि समाज के अगारता तत्वों ने पहुंचाई है, उससे मैं सहमत नहीं हूं । हरिजन वर्ग तो वैसे ही दलित तथा दबा हुआ है, उसको हमें उभाड़ना चाहिए, ऊपर उठाना चाहिए न कि घृणित कर्म करके और उनके ऊपर अत्याचार किया जाये ।

राजा राधिकारमण सिंह के `चुम्बन और चांटा` (१९५७ई०) उपन्यास में राम बहू धोबिन के ऊपर आर्थिक अत्याचार का चित्रण मिलता है । गुलाबो की मां धोबिन से कपड़े धुलवा लेती पर धुलाई का पैसा धोबिन को नहीं देती है । धोबिन इस बात की शिकायत गुलाबो से करती है,--`गुलाबो पर नजर पड़ती है,धोबिन फुफकार उठती है--

` हो सुनती हो । यह कब तक आपकल करती रहोगी अरे बड़ा कानी
.... तेरो मैया ।`

गुलाबो ठमक पड़ती है, लगता है स्वटक देखने ।

१.चन्द्रविद्यावाचस्पति : `अपराधी कौन` (१९५५ई०),पृ०सं० २४ ।

'य धोलाई न बाकी है, तुम्हें पता नहीं ?'
'सब ? कितने पैसे हैं ?'
'बस, बारह आने । हां, पांच आने काट कर देता नहीं । कहता है कि साड़ी का किनारा कहीं धोने वक्त फट गया..... झूठ, बिल्कुल झूठ । पुरानी झिंझरी साड़ी रही-तार-तार, कहीं ...... ।'[1]

हरिजनों का समाज किस प्रकार आर्थिक शोषण करता है, लेखक ने 'चुम्बन और चांटा' (१९५७ई०) उपन्यास में इसी बात को चित्रित किया है । लेखक ने रामू बहू धोबिन हरिजन पात्र में पर्याप्त चेतना का विकास दिखाया है । धोबिन अपने ऊपर होने वाले आर्थिक अत्याचार को सहती नहीं है, वरन् उसके विरुद्ध विद्रोह करती है । इससे यह भी स्पष्ट हो जाता है कि लेखक का 'चुम्बन और चांटा' (१९५७ई०) उपन्यास में हरिजनों के प्रति दृष्टिकोण सुधारवादी रहा है । वह उनका उत्थान दिखाना चाहता है ।

राम बहू धोबिन के धुलाई के पैसे न देना उस पर आर्थिक अत्याचार करना है, जो कि स्वस्थ सामाजिक वातावरण के निर्माण में सहायक नहीं होता है । अगर पुरानी साड़ी धोते वक्त फट जाती है तो इसमें धोबिन का कोई दोष नहीं । इस

---

१. राधिकारमण प्रसाद सिंह : 'चुम्बन और चांटा' (१९५७ई०) पृष्ठ० १९८ ।

काम के लिए उसके धुलाई के पैसे न देना उस पर अत्याचार ही तो करना है । रामू का बहू धोबिन तो बेचारी निर्दोष है, उसको तो उसके धुलाई के पैसे अवश्य मिलना चाहिए और यही उचित तथा सही दृष्टिकोण है । राम बहू धोबिन को 'कुम्कुम और कांटा' (१९५७ई०) उपन्यास में शोषित स्त्री के रूप में चित्रित किया गया है ।

बैजनाथ गुप्त के 'जीवन : आग और आंसू' (१९५८ई०) उपन्यास में हरिजनों के ऊपर आर्थिक अत्याचार को चित्रित किया गया है । लाला गटरमल, चौधरी बिन्नु के ऊपर आर्थिक अत्याचार करते हैं । गटरमल मटरी के ऊपर अत्याचार करते हैं । वह चौधरी से मटरी के मामले को सौ दो सौ रुपये देकर दबवा देना चाहता है । पर चौधरी नहीं मानता है । इसी बात पर लाला ने कुर्की करवाने की ठान ली है । गटरमल चौधरी के ऊपर पंचायत में आरोप लगाता है,--'पंचो । बात यह नहीं है । इसके पीछे एक बड़ा राज है। चौधरी के ऊपर मेरा तीन चार सौ कर्ज निकलता है । बरसों बीत गये, टका देने का नाम नहीं लेता । रुपया महाजन खोने के लिए नहीं देता । मैंने इसके साथ सख्ती की । इसे गाली दे और फजीहत किया जिसके बदले में मेरे साथ यह चार सौ बीसी की जा रही है । अजीब अन्धेर है साहब । रुपये का रुपया खोइए, ऊपर से इज्जत भी खोइए ; क्या जमाना हो गया है।

लेकिन जोर से बोलते हुए मैं आप लोगों से कहे देता हूं, अगर इसका काला-छोटा सलाम न करा लिया जाय तो मेरा नाम लाला गट्ट-मल नहीं। यह अपने को क्या समझता है। जाति का चमार, ब्राह्मण क्षत्रियों पर रोआब गाँठे। पानीदार आदमी हो तो ऐसी चीज कभी बर्दाश्त नहीं कर सकता।[1]" ठाकुर रनबाज सिंह कहते हैं, --"सेठ जी। किस चमुरे का दम है जो रोब गांठ जाय। और ठाकुर-ब्राह्मणों से लोहा लेना दिल्लगी नहीं है। लोहे के चने चबाने पड़ेंगे।[2]"

लेकिन गिन्नू चौधरी के ऊपर होने वाले लाला के अत्याचारों से सहमत नहीं है। वह लाला के अत्याचारों का विरोध स्वयं चौधरी के मुंह से कराया देता है," यह बात सही है कि मैंने लाला का रुपया उधार लिया है। लेकिन उनके लेन-देन के सम्बन्ध में मेरी लाला से कभी कोई बातचीत नहीं हुई। बड़े आदमियों को झूठ बोलना भले ही शोभा दे, लेकिन मैं इस मामले में कतई झूठ नहीं कहूंगा। हां, इतनी बात उन्होंने मुझसे जरूर कही थी कि मैं मुखिया वाले मामले का गवाह हूं। जिसके बदले में उन्होंने मुझसे कहा था कि कर्ज छोड़ दूंगा और सौ-दो सौ रुपये ऊपर से दूंगा। लेकिन मैंने उसी दिन लाला से पंडित सत्यनारायन जी

---

१. बैजनाथ गुप्त : 'जीवन : आग और आंसू' (१९५८ ई०), पृ०सं० ४१।
२. वही, पृ०सं० ४१।

के सामने कह दिया था कि लाला जी क्षमा करना, मैं पैसे के लोभ में ईमान नहीं बेच सकता हूं। वैसे तो लाला जी बड़े आदमी हैं, पैसे वाले हैं। चाहे जो कुछ भी करें।'[1]

लाला गटमल का चौधरी बिन्नू के घर के सामान की कुर्की कराना तो अनुचित लगता है। माना कि उन्होंने कुछ रुपये उधार दिए थे। पर उसके बदले में पूरे घर का सामान कुर्क कराना तो हरिजन पर अत्याचार ही करना ही कहा जायेगा। लाला क्यों चौधरी को नष्ट करना चाहता है? इसका कारण यह है कि वह लाला की बात नहीं मानता। जो व्यक्ति स्वयं नीच हो वह दूसरे को क्या नैतिक शिक्षा दे सकता है? लाला तो मनुष्य की खाल ओढ़े नर पिशाच है। लेखक लाला के चरित्र का विश्लेषण करते हुए लिखता है,--'धार्मिक प्रवृत्ति के जीव। घण्टों ईश्वर के नाम पर पूजा - पाठ किया करते, किन्तु उदारता छू तक नहीं गई थी। ब्राह्मणों का सम्मान करते, किन्तु पीठ पीछे बहुधा उनके विषय में यह कहते हुए सुने जाते--'बड़ी लालची कौम है।'[2] यदि लाला तथा चौधरी के चरित्रों की तुलना की जाये तो हमें ज्ञात होता है कि लाला एक दुष्ट प्रकृति का इंसान है तथा चौधरी ईमानदार सच्चरित्र इंसान है। लाला कहता है,-- 'बस देख लिया आप लोगों ने। सारी मक्कारी इसी तरह की है।

----

१. वैजनाथ गुप्त : 'जीवन : आग और आंसू' (१९५८-६०), पृ०सं०४२।

२. वही, पृ०सं०२७।

कुछ तो लीजिए, हक-इज्जत का दावा करता हूं। इसकी सारी चपरई भुलवा दूंगा। इसने अपने को समझ क्या रखा है। 'मगर पानी कुछ उतारना बड़ा मुश्किल है। सरपंच बन गया है तो किसी की इज्जत लेने के लिए। देखता हूं अब कौन बचाता है।'[1] ठाकुर रनबाज सिंह भी कहता है, --' लाला कैसी बात करते हो। जमादारी चली गई तो चली गई, मगर दाहिनी भुजा को आगे बढ़ाते हुए .... इससे क्षत्रिय का रक्त नहीं गया[2]। किसके मुंह में दांत है, जो एक शब्द भी खिलाफ निकाल जाय।' चौधरी, ठाकुर के इस बात का विरोध करता है। लेखक ने चौधरी पात्र में इतना चेतना भर दी है कि वह अपने ऊपर होने वाले प्रत्येक अत्याचार का विरोध करता है। चौधरी कहता है,--' ठाकुर साहब, क्षत्रिय रक्त इतना सस्ता नहीं है। उसका कहीं और उचित उपयोग कीजिए[3]। यहां आवश्यक पंच की हैसियत से बैठे हैं। आपका कुछ कर्तव्य है।' इसपर ठाकुर कहते हैं,--' देखो चौधरी। अपनी औकात के बाहर मत जाओ। चमार होकर तुम मुझे सिखाने की कोशिश मत करो। क्या क्या वह दिन भूल गए, जब जेठ की धूप[4] में सारे दिन खड़े रहते थे और ऊपर से दस-पांच जूते भी खाते थे।' चौधरी फिर अपना

---

१. वैद्यनाथ गुप्त : 'पावन : आग और आंसू' (१९५८ई०), पृ०सं०४३।
२. वही, पृ०सं० ४३।
३. वही, पृ०सं० ४३।
४. वही, पृ०सं० ४३।

विरोध प्रकट करते हुए कहता है,--" नहीं ठाकुर साहब, भूला नहीं हूं । अब भी उन दिनों की याद कलेजे में ताजा बना है । किन्तु इंसानियत यह नहीं कहती कि ईंट का जवाब पत्थर से दिया जाय। अब भी मैं आपसे छोटा हूं और सदा आपसे छोटा रहूंगा । आज भी जूतों से मारने में आप अपना बड़प्पन समझते हों, तो मार लीजिए। मेरा सिर आपके सामने झुका है ।[1]" वह कहता है,--"बात सत्य ही कहूंगा, चाहे किसी को भला लगे चाहे बुरा ।[2] "लाला के रुपयों से गांव वालों के मुंह बन्द हो जाते हैं तथा लाला कहते हैं,--" देख लिया आप लोगों ने । सरपंच होने का मतलब तो यह नहीं है कि किसी भले आदमी की इज्जत ले ली जाय । अब क्यों नहीं बोलते मिन्नू ? तुम चमार होकर मेरी इज्जत लेना चाहते हो लौंडे का चोट पर कहता हूं कान खोल कर सुन लो --"अगर तुम्हें मिटा न दिया जाय तो अपने बाप का नहीं । तुमने मुझे समझ क्या रखा है ?[3]" पर मेरा मत है कि एक क्या सौ लाला अब इस जमाने में पैदा होकर भी हरिजनों के ऊपर आर्थिक अत्याचार करने का साहस नहीं कर सकते । लेखक लालू चमार के द्वारा भी लाला की इस बेईमानी का विरोध करवाता है, "लाला जी! आप ही ने एक दिन कहा था -- हर चीज का समय होता है । आये हुए अवसर को हाथ से नहीं

---

१. वैद्यनाथ गुप्त : 'आश्रम : आग और आंसू' (१९५८ई०),पृ०सं०४४।

२. वही,पृ०सं० ४४ ।

३. वही, पृ०सं० ४५ ।

जाने देना चाहिए ।" अब समय आ गया है । हमारी बन्द आंखों से पर्दे हट गए हैं । हर आदमी को अपनी बात कहने का अधिकार है। आप रुपये के बल से हमारी जबान पर ताला लगाना चाहते हैं-- हमारी जीभ बन्द करना चाहते हैं--किन्तु अब यह सम्भव नहीं है । सत्य को आप घोंट जाना चाहते हैं, केवल पैसे के जोर से । चौधरी के पीछे आप हाथ धोकर इसलिए पड़े हैं कि वह अत्याचारों में आपका साथ नहीं देता, यही न । आप चाहते हैं कि सब आपके गुलाम बनकर रहें,किन्तु अब वह जमाना लद गया और रही सबूत की बात । मैं सबूत पेश करता हूं । लेकिन इससे पहिले आप स्वयं अपने से पूछ कर देखिए कि आप कहां तक पाक साफ हैं । क्या आपने वे मटरी का कुनकी चमारिन से गर्भपात नहीं कराया ? क्या आपने अपनी स्त्री को उस समय मैके नहीं भेज दिया था । यदि आपकी पवित्र आत्मा पर पाप की कालिमा अब भी शेष है तो मैं कुनकी चमारिन को बुलाता हूं । जिस पापिन ने चांदी के चन्द टुकड़ों पर इन्सानियत को बेचा । अपने को बेचा और जिसने आपके नीच कर्मों को छिपाने में आपकी मदद की । किन्तु पाप का घड़ा एक दिन अवश्य फूटता है ।"[1] डाकू के इस वक्तव्य से लाला की दुश्चरित्रता अपने आप हमारे सामने आ जाती है । चौधरी गिन्नु कहता है,--" पंचायत आज ही होगी । मैं घुड़की से डरने वाला आदमी नहीं हूं । जिसने रुपया उधार लिया है, उसे भुगतान करना ही पड़ेगा । मैंने रुपया

---

१. वैजनाथ गुप्ता : 'जीवन : आग और आंसू' (१९५८ई०),पृ०सं०५६।

देने से कभी इन्कार नहीं किया । लेकिन इस समय मजबूर हूं । अगर लाला कुरकी कराने में ही खुश है, तो कोई बात नहीं । आकर कुरक करा लें । मुझे इसकी चिन्ता नहीं है ।[1] इस वक्तव्य से चौधरी की सज्जनता हमारे सामने आ जाती है ।

भोंदू चौधरी के सामान की कुर्की नहीं होने देना चाहता है,--"नहीं, ऐसा कभी नहीं हो सकता । आज तुम्हारे ऊपर कुरकी हो रही है, कल हमारे ऊपर भी हो सकता है । हम यह कभी बर्दाश्त नहीं करेंगे । या तो मर जायेंगे या आज ही इसे समाप्त कर देंगे ।" चौधरी उसका विरोध करता हुआ कहता है,--"खबरदार ! यदि किसी ने इस आज्ञा के विरुद्ध जबान निकाली । आप लोगों ने क्या समझ रखा है ? यदि मेरे खून की बूंद यहां पर गिरेगी, इसी तरह आप पर आग बरसेगा । न्याय के सम्मुख मुझे अपने प्राणों का मोह नहीं है । मैं भूखों मर जाना पसंद करूंगा, किन्तु किसी प्रकार का अन्याय नहीं पसन्द करूंगा । मैंने लाला से रुपया कर्ज उधार लिया है । उन्हें सरकार ने अधिकार दिया है कि वे अपना रुपया किसी भी तरह से वसूल करें । यह आप लोगों की मूर्खता है कि उनके ऊपर वार करें, उन्हें गाली दें । मैं आप लोगों से प्रार्थना करता हूं कि शान्ति से काम लें । क्रोध अज्ञान का प्रतीक है । इसमें मनुष्य का विवेक समाप्त हो जाता है । क्रोध में अपने को न भूलिए । यह मनुष्य को पागल बना

---

१. बैजनाथ गुप्त : 'जीवन : आग और आंसू' ([illegible]), पृ०सं० ५७।
२. वही, पृ०सं० ५८ ।

देता है । इन्सानियत से काम लीजिए । ईश्वर ने आपको बुद्धि दी है ।'[1]

दुनिया के सारे धन्धे जो चल रहे हैं, आखिर क्यों? इसी पापी पेट के कारण ही न । नहीं तो मनुष्य को चिन्ता क्या थी ? कोई किसी की क्यों सुनता ? मनुष्य,मनुष्य के आगे हाथ न पसारता--दीन न बनता । कोई किसी के सामने क्षमा न गिड़गिड़ाता। खूबसूरत आंखों के अनमोल मोती सूखे कपोलों पर न ढलते।ईमानदार होठों पर कमजोर हंसी की झलक न दिखाई देती । न किसी के हृदय की अगाध वेदना को कोई समझ पाता । ईमानदारी में दाग न लगता। पाप न बढ़ता । पुण्य दोनों हाथों से बरसाती पानी की तरह उलीचा न जाता । यहां तक कि ईश्वर को मंदिरों में बन्द न किया जाता । मनुष्य ही स्वयं भगवान होता ।

मनुष्य नियति के हाथों का खिलौना है ।वह कठपुतली की भांति उसके इंगितों पर नाचता है । परिस्थितियां उसे विवश करती हैं । चौधरी गिरधु जो चार दिन पूर्व दूसरों को शिक्षा देता था, अत्याचार का शिकार बनकर स्वयं हतप्रभ तथा ज्ञानशून्य बन जाता है। उसकी ज्ञान-गरिमा न जाने कहां चली गई था । ठाकुर जबर्दस्ती ही तो चौधरी के हृदय पर चोट करता है । मनुष्य के हृदय पर जब चोटें पड़ती हैं,तो वह बौखला जाता है । उसका खून खौलता है । उसके अन्दर प्रतिहिंसा की भावना तिलमिला कर सक्रिय हो जाती है । पर

---

१. बैजनाथ गुप्त : 'चाकन : आग और आंसू' (१९५८ई०),पृ०सं०५२ ।

चौधरी अपना संयम का प्रदर्शन करता है, जिससे उसका चरित्र ऊपर उठ जाता है । चौधरी के ऊपर तो गांधी जी के सिद्धान्तों का प्रभाव है । गांधी जी की तरह वह भी सत्य तथा अहिंसा का मुकाबला करता है । पर जिस तरह गांधी जी गोली से मारे गये, उसी प्रकार चौधरी भी इन सिद्धान्तों से हार जाता है । चौधरी की तुलना हम 'रंगभूमि' (१९२५ई०) उपन्यास के नायक सूरदास चमार से कर सकते हैं । सूर भी अहिंसा तथा सत्य का सहारा लेते हुए अत्याचार की बलि वेदी पर चौधरी की तरह स्वाहा हो जाता है।

यह खूनी इन्सान । दूसरे की जिन्दगी को एक खिलौना समझता है । वह उसकी जिन्दगी को कुम्हार के मिट्टी की तरह रौंद के देना चाहता है । सारे संसार को अपनी मुट्ठी में करना चाहता है । धरती का मालिक बनना चाहता है । इन चलती फिरती रंगीन तस्वीरों का खून जोंक की तरह चूस रहा है । इन्हें खाने-दाने के लिए मोहताज करके अपने पैरों से कीड़े की तरह कुचल डालना चाहता है । इन्हें गुलाम बनाना चाहता है, प्राचीनकाल में आदमी तथा औरतें बाजार में बिकती थीं । धनी आदमी खरीदते थे । उनसे चौबीस घण्टे जानवरों की भांति काम लिया जाता था । उनपर कोड़े बरसाये जाते थे । वह जमीन पर दुर्बल होने के कारण गिर-गिर पड़ते थे । उन्हें कोड़े से मार-मार कर उठाया जाता था । औरतों के साथ दुर्व्यवहार होता था । उन्हें नंगा करवा कर भरे बाजार में घुमाया जाता था । उन्हें सताया भी जाता था । उनको गुलाम कहते ही थे । फिर वही युग । आज का यह मनुष्य हरिजनों

को गुलाम की भांति रौंद डालना चाहता है, सभ्यता का दम्भ करता है। बर्बरता की ओर अग्रसर होने वाला यह सुना इन्सान कहता है,--"मैं सभ्य हो रहा हूं।

हमारा नंगे औरतों सभ्यता का नमूना है। औरतों पर लाठी बरसाना, बेगुनाह और बेकसूर हरिजनों को पीटना। उनके बच्चों को बिना दूध तथा बिना पानी के मार डालना आज के की सभ्यता है। यह सवर्ण इन्सान भी कितना बेशर्म है, जो हरिजन के बच्चे को अपने सामने मरते देखकर खामोश हो जाता है। क्या ठीक है कि उनके साथ ऐसा दुर्व्यवहार होना चाहिए। जिसके खून में गर्मी नहीं है, जो बर्फ की तरह ठंडा हो, जो अपने को इन्सान नहीं समझता, अपने ही हरिजन भाइयों के बेटे, बच्चे को खा जाना चाहता है, उसका रुधिर खुश्क डालता है। ऐसे सवर्ण हिन्दुओं को जीने का कोई हक नहीं है। क्योंकि यहां धरती पर जीने का मतलब है, इन्सान बन कर जीना। अपने अधिकारों के लिए हरिजनों को होम कर देना प्लेग के कीड़े से भी ज्यादा खतरनाक है। जितना जल्दी हो सके, अत्याचारियों को कड़ा से कड़ा दण्ड देना चाहिए, ताकि लाला गटकमल ऐसे नीचों से हरिजनों की सुरक्षा हो सकें।

यज्ञदत्त शर्मा के 'चौथारास्ता' (१९५८ई०) उपन्यास में हरिजनों के आर्थिक शोषण का चित्र उभारा गया है। रामसिंह मनसुख और मग्गन चमार का आर्थिक शोषण सवर्ण हिन्दु वर्ग करता है।

ये लोग चमारों से काम तो करवाते हैं, पर उनको मजूरी नहीं देते हैं। यहां तक ही नहीं, अत्याचार करते, बल्कि वे अपने खेत की घास काटने को मना कर देते हैं और इस तरह हरिजनों की आर्थिक स्थिति को दयनीय बना देते हैं। विद्यासागर कुमाशा रामसिंह चमार से पूछता है, 'और हां भैया बताओ पिछले सप्ताह रामसिंह ? दरोगा जी ने कल्लू के रुपये दिये या नहीं ? कुम्मन का बैल चौधरी रूप सिंह से वसूल हुआ या नहीं ? लाला चोखेराम के फार्म पर काम करने वालों का क्या बना रहा ?
रामसिंह उसके जवाब में कहता है--'भइया। सरकार ने जब से जमींदारी खतम करके भूमधर बनाये है तब से तो परम धौरा हो गांव रहा। जहां देखो, वहां गरीब ही मारा जाय है।' म्हारे जानवरन कू खेतन में से चारा देना तो दूर की बात रही खेतन के डोलन पै की घास खोदन की भी मनाही कर दयी। तीन दिन से चमारों की भैंसें भूखी पड़ी है।'
'भैंसें भूखी पड़ी हैं। यह तुम क्या कह रहे हो रामसिंह ?'
'ठीक कह रहा हूं भइया। कल्लू, कुम्मन और लाला चोखेराम के फारम के सब चमारों ने काम पै जाना बन्द कर दिया।'
रामसिंह बोला
'फिर क्या हुआ ? विद्यासागर ने पूछा।
'गांव के भूमधरन ने अपनी मीटिंग करी और चमारन को अपनी जमीन में से घास तक खोदने की मनाही कर दई।'[1]

---

१. यज्ञदत्त शर्मा : 'चौथा रास्ता' (१९५८ई०), पृ०सं०२५ ।

विद्यासागर जब सुलह की बात कहता है तो रामसिंह कहता है 'ये हमसे फैसला क्यूं करन आवैंगे भइया । इन्हें गरज होयगी तो हम हू नाक रगड़ते हुए सौ बिरियां उनके दरवाजे पै जाके गिड़गिड़ैंगे ।' रामसिंह बोला--

'यह कभी नहीं होगा रामसिंह । इससे निश्चिन्त रहो'[1] ।'

शर्मा जी का हरिजनों के ऊपर अत्याचार के प्रति दृष्टिकोण सहानुभूतिपूर्ण है । वे हरिजनों के ऊपर सवर्ण हिन्दुओं के द्वारा आर्थिक अत्याचार का विरोध करना चाहते हैं । इसीलिए उन्होंने अपने हरिजन पात्रों में अत्याचार के विरुद्ध विद्रोह करने की भावना विकसित की है । चमारों को संगठित कर अत्याचार का विरोध करना इस बात को साबित कर देता है कि लेखक हरिजनों के उत्थान की प्रगति चाहता है । वह उनके ऊपर अत्याचार का समर्थन कर उन्हें और भी नहीं गिराना चाहता । शर्मा जी ने हरिजन पात्रों का चित्रण पुरातन परम्परा के अनुसार नहीं, वरन् आज की युग के मांग के अनुसार चित्रित किया है ।

हरिजनों के ऊपर आर्थिक अत्याचार करना युक्तिसंगत नहीं कहा जा सकता है । हरिजनों की आर्थिक स्थिति तो वैसे ही दयनीय होती है, ऊपर से उनकी स्थिति और भी दयनीय बनाना कहां तक उचित है । कल्लू-कम्मन तथा रामसिंह का रूप सिंह, दरोगा जी तथा लाला चौबेराम के द्वारा बेदख न

---

१. यज्ञदत्त शर्मा : 'चौथा रास्ता' (१९५८ई०), पृष्ठ सं० २५ ।

किया जाना तो स्पष्टत: अपराध के समान है । यह तो सर्वमान्य सिद्धान्त है कि जब हम किसी से काम करायेंगे तो पैसा देना ही पड़ेगा तो फिर उपरोक्त भूमिधर लोग क्यों नहीं हरिजनों को पैसा देते ?

हमारे देश में बेगार लेने की परम्परा बहुत प्रचलित रही है । पहले राजा लोग बेगार लेते थे, तथा बाद में चलकर जमींदार लोग हरिजनों से बेगार लेने लगे । ये जमींदार लोग, जमींदारी टूटने से पहले राजा के समान थे । ये ही लोग हरिजनों से बेगार करवाते थे । जमींदारी तोड़कर सरकार ने बहुत अच्छा काम किया है । इससे हरिजनों को आर्थिक राहत मिला । अब तो सरकार ने हरिजनों के हित में घोषणा कर रही है कि उनके ऊपर जो कर्ज था, अब वे खत्म हो गये । उनका भुगतान नहीं करना होगा। यह भी उचित कदम है । क्योंकि हरिजनों को थोड़ा पैसा देकर सवर्ण हिन्दू वर्ग उनसे अपने खेतों में जन्म भर काम करवाता था । वह बात अब खत्म हो गई है । शर्मा जी ने अपने उपन्यास में हरिजनों के ऊपर होने वाले अत्याचारों का खुलकर यथार्थ चित्रण किया है तथा सवर्ण हिन्दुओं के अत्याचार वाले पक्ष को भी चित्रित किया है। विद्यासागर का सहारा पाकर कल्लू कम्मन और रामसिंह का जोश दुगना हो जाता है । वे कहते हैं,--' मजुआ ! या बिरियां बड़ी जात वालन से टक्कर भई है । थारी मदद से जो चोट बराबर भी छूट गया तो भगवान् का लाख-लाख शुकर मैंने ।'[1]

---

१. यज्ञदत्त शर्मा : 'चौथा रास्ता' (१९५८ई०), पृ०सं० २८।

विद्यासागर ठाकुरसा भी अत्याचार से दुखी है। वह कहता है,--`हमारी किसी से व टक्कर नहीं है रामसिंह। हमारी टक्कर गलत बात से है। कल्लू और फग्गन के पैसे मिलने ही चाहिए।` इससे विद्यासागर के चरित्र का उज्ज्वल पक्ष हमें दृष्टिगोचर होता है तथा साथ ही यह स्पष्ट होता है कि हरिजनों में सवर्ण हिन्दुओं के समान द्वेष की भावना नहीं मिलती है। वे निष्कपट तथा अरक्षित होते हैं। विद्यासागर को विश्वास है कि विजय उसकी ही होगी,`कल्लू, फग्गन और रामसिंह। डरना नहीं किसी बात से, चाहे कोई भी क्यों न आये गांव में। मुझसे पूछे बिना किसी कागज पर अंगूठा न लगाना। थाने के दरोगा जी या दीवान जी कोई भी क्यों न आयें। विजय तुम्हारी ही होगी।`[2]

यह तो अत्याचार की हो सीमा ही है। बेजबान जानवरों का चारा रोक देना कहां का न्याय है ? आर्थिक शोषण को लेकर विद्यासागर कलेक्टर से मिलता है। चारों तरफ शोर मचता है। अखबारों में भी इसका वर्णन छपता है। कल्लू कहता है,--`यु अखबार दरोगा कू मैं खुद देके आऊंगा और कहूंगा अब बात यु ही खतम वाली नाय है। हमनै भी बाबू सुरपंडल कलक्टर तक बात पहुंचाय दवा तो म्हारा नाम भी कल्लू उस्ताद नाय है।`[3]

---

१. यज्ञदत्त शर्मा : `सीधा रास्ता` (१९५८ई०), पृष्ठसं० २८।

२. वही, पृष्ठसं० २८।

३. वही, पृष्ठसं० ३४।

कनछु भी इस अत्याचार के विरोध में कहता है;--

'यामें का सक है यार कनछु । दरोगा, या चौधरी रूपसिंह या लाला चोखेराम ,म्हारो मजूरी कैसे नांय देंगे ? जब महनत उनन के खेतन पै करी तो खाव-पहनन कु कहां जांय ? कनछु अकड़ कर बोला । तभी रामसिंह ने पूछा, --' कैसे हाल-चाल कै है भुमधरन का ? जरा यु भी तो कहो । कल के हल चले गांम में ?' कम्पन मुंछों पर ताव देता हुआ कछ बोला,--'आधे भी नांप चले रामसिंह । धरती भूखा जाय रहा है । होस हवास उड़ रहे हैं भुमधरन के ।'

रामसिंह बोला , --' सागर ने कह दया है अब घबरावन की जरूरत नांय है । जानवरन कु बराबर चारा मिलता जायगा । तुम लोग अपनी-अपनी भैंसन का दुध बेचके अपने खावन-पीवन का खरच चलाओ ।'

'और जाके पास भैंस नांय हैं रामसिंह। वे कहां करें ?'

गम्भीरतापूर्वक कनछु ने आगे बढ़कर पूछा ।

रामसिंह बोला, --'उनन की मदद हम भैंसन वालन कु तो करनी है जो लौं भुमधरन से फैसला नांय है जाय ।'

'बिलकुल ठीक है ।' कनछु ने गम्भीरतापूर्वक कहा ।

अन्त में रामसिंह यह भी संकेत करता हुं 'भुमधर तमें कछु भी कहैं पर तम गर्मी मत खइयो[१] । अपनी झोंपड़ियन की हिफाजत रखना । रात कु पहरा देना ।'

लेखक ने प्रस्तुत उपन्यास में सवर्ण हिन्दुओं के ऊपर हरिजनों की विजय को दिखाया है । आखिरकार लाला चोखेराम को

---

१. यज्ञदत्त शर्मा : 'चौथा रास्ता' (१९५८ई०),पृ०सं० ३५ ।

चौबेराम भी स्वीकार कर लेते हैं,
"समझौते के अनुसार वर्ष भर का अनाज और कपड़े की व्यवस्था के अतिरिक्त फार्म[1] के हर कर्मचारी का बीस रुपया माहवार वेतन निश्चित हुआ।"

लेखक ने समझौता कराकर अपनी सुधारवादी प्रवृत्ति का परिचय दिया है। लेखक हरिजनों को न्याय दिलाना चाहता है। अतः इसीलिए वह संघर्ष में हरिजनों की विजय दिखाता है। रामसिंह कहता है,-- "चौधरी हम सिंह और दरोगा जी की नाईं मजूरन की खाल नाँय खाऊँगे[2]।" इससे इन दोनों का चरित्र स्पष्ट हो जाता है। जिस प्रकार "संघर्ष" (१९४५ई०) उपन्यास में "कौशिक" जी ने जिलेदार शिवनाथ का मटरू चमार पर आर्थिक शोषण को चित्रित किया है या जिस प्रकार कौशिक जी ने "भिखारिणी" (१९२९ई०) उपन्यास में जमींदार कुंवरसिंह का मंगू तथा अन्य पासियों के ऊपर अत्याचार करते हुए चित्रित किया है, वैसे ही यादव शर्मा जी ने "सीधा रास्ता" (१९५८ई०) उपन्यास में कल्लू, फग्गन, रामसिंह के ऊपर सवर्णों का अत्याचार को चित्रित किया है। इन सभी उपन्यासों में हरिजनों से बेगार लेने को चित्रित किया गया है। वहाँ चौबेराम जी भी परिस्थिति को देखते हुए थोड़ा दब गये, अपना नीच आदमी का चोला पहने है, उसने लखना कुम्हार, कुम्मा लोहार के ऊपर भी आर्थिक अत्याचार किया। थोड़ा सा पैसा देकर वह उनके सामानों

---

१. यादव शर्मा : "सीधा रास्ता", (१९५८ई०), पृ०सं० ६०।
२. वही, पृ०सं० ६०।

थानेदार से दरोगा जी का बड़ा रसूक है ।

यह सुनकर विद्यासागर बोला,--"उनके कितने भी रसूक क्यों न हों ठेठ जी ! पर अपना रसूक भी तो दरोगा जी से कम नहीं है । दरोगा जी हमारी भलाई के लिए ही हैं । हमारी बुराई नहीं करेंगे वह , तुम विश्वास रखो ।"[1]

(ग) जमींदार वर्ग

पूंजीपति वर्ग के समान जमींदार वर्ग ने भी हरिजनों का आर्थिक शोषण किया है । स्वतन्त्रता प्राप्ति के पूर्व समाज में जमींदारों का ही बोलबाला था । वे मनमाना अत्याचार हरिजनों के ऊपर करते थे । इसी बात का चित्रण हमें उपन्यासों में देखने को मिलता है ।

फणीश्वरनाथ रेणु के 'जुलूस' (१९६५ई०) उपन्यास में हरिजन पात्र के ऊपर अत्याचार को चित्रित किया गया है । तालेवर गोढ़ी के ऊपर जमींदारों के अत्याचार का निरूपण मिलता है । गोढ़ी मछली मारने वाली जाति को कहते हैं । गोढ़िकार से गोढ़ियार बना है । तालेवर गोढ़ी कहता है,--" मेरे घर में कोई बाढ़ का पैसा नहीं और न बाढ़ में आयी हुई मछलियों के पैसे हैं । बाकायदा नगद भुगतान देकर जमींदारों से जलकर बन्दोबस्ती लेता था। जिसपर गाँव के बाबू लोगों के 'और जुलुम' । सिपाहियों की घाट पर

---

१. [illegible] शर्मा : 'यह सीधा रास्ता' (१९५८ई०) पृ०सं० ६५ ।

भेजकर रोज एक पथेरा मछली "तलबाना" में भी तलब करने वाले ऐसे मालिकों के जलकरों से मछली, काछु(कच्छप), केकड़ा, घोंघा निकाल कर--पुरइन के पात और कमलगट्टा बेचकर मैंने किस तरह पाई-पाई बटोरा है ।"[1]

लेखक का तालेवर गोढ़ी के ऊपर हुए अत्याचार के प्रति सहानुभूतिपूर्ण नहीं । वह अत्याचारों का विरोध कहीं नहीं प्रकट करता है । लेखक केवल हरिजनों के शोषण पक्ष का ही चित्रण करता है । वह हरिजनों में विद्रोह की भावना नहीं दिखाता है ।

तालेवर गोढ़ी के ऊपर जो आर्थिक अत्याचार जमींदार व गांव वाले करते हैं, उसका हम समर्थन नहीं कर सकते हैं । आज के बदलते हुए समाज में हरिजनों का आर्थिक शोषण तो बिल्कुल अनुपयुक्त लगता है । अब तो वह जमाना आ रहा है जब कि हरिजन भी सवर्णों के बराबर आर्थिक दृष्टि से हो जायेंगे । अभी तक हरिजनों की आर्थिक स्थिति सुदृढ़ नहीं है । हरिजनों की आर्थिक स्थिति को ठेस पहुंचाने वाले समाज के अन्य सवर्ण लोग हैं । जब तक हम हरिजनों को ऊपर उठने का रास्ता नहीं देंगे, तब तक वे कैसे प्रगति के मार्ग पर अग्रसर हो सकते हैं ?

तालेवर गोढ़ी का चरित्र सज्जन पुरुष की भांति है क्यों तो वह अत्याचार का विरोध करता है तथा वह

---

१. फणीश्वरनाथ रेणु : 'जुलूस' (१९६५ई०), पृ०सं०२४ ।

मेहनत के पैसों पर जोर देता है। वह छल-कपट या दुष्कर्म पर कमाई करने को नहीं कहता, --"मेहनत करो और पैसा कमाओ फिर देखो वह धन जो कभी घटे।"[1] वह शिक्षा के प्रति भी जागरूक है,--" जो सचमुच अपने बच्चों को पढ़ाना चाहते हैं, सरकार उनके लिए स्कूल जरूर खोलेगा।"[2] अतः हम कह सकते हैं कि तालेवर गोढ़ी सभ्य पुरुष के रूप में उपन्यास में चित्रित किया गया है।

अमृतलाल नागर के "भूख"(१९७०ई०) उपन्यास में दयाल जमींदार के द्वारा मोनाई कैवर्त का आर्थिक शोषण को चित्रित किया गया है। दयाल जमींदार, मोनाई कैवर्त से कहता है,--"बाप का जमाना भूल गया है शायद।" दयाल जमींदार की आवाज कानों में आई -- हेलाजी! हराम-जादा का अक्ल में भाला भोंक देगी। भोला लाला के बे दयाल जमींदार बाबार बुला भेजे थे तीन घंटा तक दरवाजे पर खड़ा रखेगा।"

एक सैकेण्ड के लिए मोनाई की आँखें मिच गईं। जिन्दगी-भर की आबरू गई थी एक पल.... एक झपटा।" जो आ गया राजा बहादुर।"[3]

---

१. फणीश्वरनाथ रेणु : "जुलूस"(१९६५ई०), पृ०सं० २३ ।
२. वही, पृ०सं० २४ ।
३. अमृतलाल नागर : "भूख"(१९७०ई०), पृ०सं० १२५ ।

दयाल एक अत्याचारी और निर्दयी जमींदार है, जो अकाल से पीड़ित जनता को परेशान करता है, "मेरा इकबाल कि आपको खड़ा रहूं ? भगवान जी ने यह दिन तो दिखाया कि सरकार की गालियां सुनने को मिली । अब भरोसा भया कि हुजूर ने मुझे अपनी शरनागत में ले लिया है। मालिक जब गालियां दें तो समझो कि दास का अहोभाग है ।"[1] दयाल जमींदार आगे कहता है—"आ गया ठिकाने पर । चौपट करके फेंक दूंगा साले को । इसके गोदाम में दो हजार बोरे से कम न होंगे । काट-पीटकर भी डेढ़ लाख क्या लेगा पट्ठा । कहां-कहां से छिपाकर धान इकट्ठा किया है इसने ! मुझे रत्ती भर भी खबर न लगने पाई, बड़ा कांइयां है !"[2]

मोनाई की खुशामद दयाल के दिमाग को अपनी चालाकी दिखाने के लिए उकसा रही थी । मोनाई की बातें कानों में पड़कर दयाल के स्वार्थों की सतह को कुरेद निकाल जाती थी । "पुलिस में दे दूंगा तो मेरे पल्ले कुछ न पड़ेगा । पुलिस वाले सब हड़प कर जाएंगे । मिलिटरी वाले दो हजार बोरों के लिए पांच सौ इससे क्यों न झटकूं ? बुरा क्या है ? अगर अभी मैं पुलिस में रिपोर्ट कर दूं तो कौड़ी का भी न रह जाएगा और जेल में चक्की पीसनी पड़ेगी, सो अलग ! यों पांच सौ बोरे के करीब तक रहने वाले के पास । लाख सवा लाख के रोकड़े कर लेना ।

---

१. अमृतलाल नागर : "भूख"(१९७०ई०),पृ०सं० १२६ ।

२. वही, पृ०सं० १२६ ।

कुछ कम है नीच जाति के लिए ? क्या ज़माना आ गया है । ये साले कोरी चमार केवट भी अब ज़मींदारी करेंगे । मगर यहाँ कायस्थों के भाई मान गए । गांव के आधे पट्टे अपने नाम करवा लिए । यहाँ गफूरी चौंट की धी खाते थे ।मेरी बराबरी करने चला था । बदमाश के हजार जूते मारने चाहिए ।"[1]

दयाल जमींदार के द्वारा मोनाई केवट के ऊपर जो आर्थिक अत्याचार किया जाता है, उससे लेखक असहमत है । वह दयाल जमींदार के कार्यों का विरोध करता है, जो उचित ही है । लेखक दयाल जमींदार के ऊपर व्यंग्य करता है,-- "मेरे गांव में, गांव भर की भूख के ठेकेदार को दयाल जमींदार ने अपने जूतों तले लाकर दुनिया को यह दिखला दिया कि उनकी शक्ति कितनी बड़ी है । श्री दयालचंद विश्वास की परम्परागत मान-प्रतिष्ठा में चार चांद लगा दिए थे । उन्होंने दुनिया को दिखला दिया कि नीच जाति सदा नीच ही रहेगी ।"[2]

मोनाई केवट का आर्थिक शोषण आज के युग में उचित नहीं लगता है । दयाल जमींदार तो एक अत्याचारी शासक के समान है, जो प्रजा का हित नहीं बल्कि अहित करता है। जिस प्रकार पुलिस हरिजनों के हित की रक्षा की बजाय उनको और परेशान करती है,दयाल जमींदार का मोनाई के प्रति दुर्व्यवहार भी इसी प्रकार का है । जमींदार दयाल का चरित्र-चित्रण कल्पनाजनित अतिरंजित नहीं है । बल्कि यह वास्तविक सत्य है कि ऐसे जमींदार वर्ग के कारण बंगाल में प्रलयकारी अकाल पड़ा । जिसमें ३० लाख व्यक्ति मरने के लिए बाध्य किए गए ।

---

१. अमृतलाल नागर : 'भूख' (१९७०ई०),पृ०सं०१२७ ।

२. वही, पृ०सं० १२७ ।

मौनाई के पिता की रक्षा तो दयाल
जमींदार नहीं करता, बल्कि उसका आर्थिक शोषण कर समाज
में अशान्ति के कारणों को जन्म देता है । दयाल जमींदार कहता
है--"हुः ! बड़े पंख लगाकर उड़ने चला था ।" जमींदार सोचने लगे
--"साला, हम खानदानी रईसों से होड़ लेना चाहता था । मंदिर
बनवा दिया साहब गांव में । आधे पट्टे का-हुजूर कहलाने की ख्वाहिश
लगी थी जनाब को । मुझसे दयाल जमींदार से, टक्कर लेने के लिए
वह मेरी प्रजा को भूखा मार-मार कर अपनी ताकत दिखाना
चाहता था । ले बच्चू अब देख ले कि कौन शक्तिशाली है । सारा
गांव आंखें खोलकर देख रहा है कि अपनी प्रजा पर अत्याचार करने
वाले दुष्ट को दयाल जमींदार कितना कठोर दण्ड देते हैं । देख ले
प्रजा, जमींदार कभी अपनी प्रजा का कितना पालन कर सकता
है ? नमकहराम हैं, साले सब के सब ।"[१] दयाल जमींदार दोहरा
व्यक्तित्व रखता है । एक तरफ तो वह प्रजा पर अत्याचार
करता है तथा दूसरी ओर वह प्रजा के पालने का दावा करता है।
मेरा मत है कि दयाल जैसा अत्याचारी जमींदार कभी भी अपनी
प्रजा का न्यायपूर्ण ढंग से पालन नहीं कर सकता है । लेखक जमींदार
के ऊपर व्यंग्य करता है,--"जिनके लिए खुद दयाल जमींदार इतना
कष्ट उठाकर यहां पधारे, जिनके एक बड़े भारी शत्रु को उन्होंने
चुटकियों में परास्त कर दिया, भूख काटने वालों को अन्न और
रोगियों को दवा दिलाई, क्या कुछ न कर दिखाया दयाल जमींदार
ने ।..... लेकिन, जिसके लिए उन्होंने यह सब कुछ किया उसी

---

१. अमृतलाल नागर : "भूख" (१९७०ई०), पृ०सं० १२८ ।

महा मूर्ख जनता पर कोई भी असर पड़ता नहीं दिखता। किसी ने उनकी जय-जयकार भी नहीं बोली। उनके जय बोलने वाले पुरोहित ने भी नहीं। 'कम्बख्त अब तो ऊपर देख भी नहीं रहा। पूरे को जूठन खाने में जुटा हुआ है। कमीने हैं--सब के सब। और नालायक आज तो मुझे प्रणाम भी करने नहीं आए। हरामखोर।'[1] लेखक आगे स्पष्ट करता है,--'दयाल जमादार ऐसा महसूस करने लगे कि एक उनको छोड़कर सारा भारतवर्ष, सारी दुनिया रसातल को और चला जा रहा है। पतन के गड्ढे की ओर आँखें मूँदकर बढ़ती हुई महामूढ़ मानवता के प्रति उनके हृदय में अपार करुणा का स्रोत फूट पड़ा। दयाल जमादार सारे संसार के कल्याण की चिन्ता करने लगे। पतितों के उद्धार की प्रबल आकांक्षा उनके मन में उत्पन्न हुई। सोचने लगे, बड़े काम करने से अपना भी बड़ा नाम होगा और हिन्दू धर्म का देश का उद्धार भी हो जायेगा।'[2] जो कुछ भी हो, पर इतना तो स्वयं स्पष्ट हो जाता है कि दयाल जैसे जमादार से तो न पतित का उद्धार और न दलित हरिजन का उद्धार हो सकता है।

---

१. अमृतलाल नागर : 'भूख' (१९७०ई०), पृ०सं० १२८।
२. वही, पृ०सं० १२९।

(५) पूंजीपति वर्ग

जिसप्रकार पूंजीपतियों ने राजनीतिक और सामाजिक क्षेत्रों में हरिजनों का शोषण किया ठीक उसी प्रकार पूंजीपति वर्ग ने आर्थिक क्षेत्र में भी हरिजनों का शोषण किया। यह वर्ग राष्ट्रीय कल्याण की चिन्ता नहीं करता, वरन् अपने व्यक्तिगत स्वार्थ की चिन्ता करता है। यही कारण है कि इसने हरिजनों का शोषण किया।

प्रेमचन्द की आर्थिक प्रणाली का सूक्ष्म अध्ययन था। उन्होंने "रंगभूमि" (१९२५ई०) उपन्यास में आर्थिक समस्या को उठाया है। "रंगभूमि" (१९२५ई०) उपन्यास की प्रमुख समस्या उद्योग तथा व्यवसाय की है। प्रेमचन्द ने सूर तथा जानसेवक के संघर्ष को लेकर पूंजीवाद को अपना लक्ष्य बनाया है। प्रेमचन्द ने पूंजीवादी युग को अपनी दृष्टि में रखा है। उन्होंने न केवल पूंजीवाद के कुछ ऐसे दोष भी बताये हैं, जिनकी और सबका ध्यान नहीं दिया जाता। पूंजीवाद मनुष्य जीवन को कुत्सित बना देता है और उसमें कुत्सा मनोवृत्ति भर देता है, जिसकी प्रेमचन्द ने इसमें तीव्र निन्दा की है। मशीनों वाला मजदूर जीवन में प्रेमचन्द को विशेष प्रिय नहीं था। वे औद्योगीकरण में भी विश्वास नहीं करते, यह अत्यन्त आश्चर्य का विषय है। एक और तो वह प्रगतिशील विचारों की पूजा अपनाते प्रतीत होते हैं, दूसरी और परिवर्तनशीलता और जीवन की आधुनिक गतिशीलता के प्रति अपनी अनास्था प्रकट करते हैं। इसका कारण कदाचित् यही था कि प्रेमचन्द यह समझते थे कि औद्योगीकरण को आने से मानवता के स्थान पर

पशुत्व को अधिक प्रश्रय मिलता है और लोगों का नैतिक स्तर घटता है। वास्तव में उन्होंने औद्योगिक जीवन तथा सरल जीवन को तुलनात्मक दृष्टि से परख कर सरल जीवन को ही अधिक श्रेयस्कर और भारतीय व्यवस्था में वांछनीय स्वीकार किया है। डा० रामरतन भटनागर का यह कथना उचित ही है कि,--"वास्तव में 'रंगभूमि' में स्वतंत्रतापूर्व भारत की सारी आर्थिक, राजनीतिक तथा सामाजिक समस्याएं आ जाती हैं। ऐसा विशाल चित्रपट भारतवर्ष के किसी उपन्यासकार ने ग्रहण नहीं किया।"[1] आधुनिक सभ्यता के द्वारा व्यापारियों तथा उद्योगपतियों के निहित स्वार्थों को सर्वाधिक प्रोत्साहन मिला है, जिससे हमारे देश की पुरानी ग्राम व्यवस्था छार-छार हो गई है। सूरदास ने औद्योगीकरण तथा पूंजीवाद के विरुद्ध मोर्चा खोल रखा है। वह मनुष्य का अवमूल्यन करने वाली महाजनी सभ्यता को आगे बढ़ने से रोक रहा है। उसकी लड़ाई के अस्त्र हैं-- सत्य, अहिंसा, असहयोग, तथा सत्याग्रह जिन्हें लेकर वह दोनों मोर्चों पर डटा हुआ है, गांधी की तरह गांधी का प्रतिरूप बनकर। लेखक सूरदास की कथा को गांव के औद्योगीकरण के विरुद्ध एक चुनौती के रूप में खड़ा करता है। दो सभ्यतायें टकराती हैं--मुनाफा और प्रतियोगिता पर आधारित औद्योगिक सभ्यता से पारस्परिक सहयोग पर आधारित भारतीय ग्राम्य-सभ्यता की टक्कर होती है। पहली का प्रतिनिधि जानसेवक है और दूसरी

---

१. डा० रामरतन भटनागर : 'प्रेमचन्द: आलोचनात्मक अध्ययन' पृ०सं० १९२।

का सूरदास । सूरदास चट्टान की तरह दृढ़ है । वह इस बात की परवाह नहीं करता कि उसकी कोई मदद करेगा या नहीं, वरन् अपनी आत्म-शक्ति के बल पर गांव में कारखाना खुलने का विरोध करता है । वह गांव के लोगों को चेतावनी देते हुए भविष्यवाणी करता है,--' जहां यह रौनक बढ़ेगी, वहां ताड़ी-शराब का भी तो प्रचार बढ़ जायेगा, कसबियां भी तो आकर बस जायेंगी, पर देसी आदमी हमारी बहू बेटियों को घूरेंगे.... देहात के किसान अपना काम छोड़कर मजूरी के लालच में दौड़ेंगे, यहां बुरी बुरी बातें सीखेंगे और अपने बुरे आचरन अपने गांव में फैलायेंगे । देहात की लड़कियां, बहुएं मजूरी करने आयेंगी और यहां पैसे के लोभ में अपना धरम बिगाड़ेंगी ।'[1] आंखों में आंसू भर सूर कहता है --' मुझे तो इस पुतलीघर ने पीस डाला ।'[2] इन्द्रदत्त से वह प्रार्थना करता है,--' आप पुतलीघर के मजूरों के लिए घर क्यों नहीं बनवा देते । वे सारी बस्ती में फैले हुए हैं और रोज ऊधम मचाते रहते हैं । हमारे मुहल्ले में किसी ने औरत को नहीं छेड़ा था न कभी इतनी चोरियां हुईं, न कभी इतने महल्ले में जुआ हुआ, न शराबियों का ऐसा हुल्लड़ रहा ।'[3]

---

१. प्रेमचन्द : 'रंगभूमि' (१९२५ई०), पृ०सं० [illegible] ।

२. वही, पृ०सं० ४७५ ।

३. वही, पृ०सं० ३६८ ।

प्रतियोगिता, लोभ और स्वार्थ पर आधारित औद्योगीकरण की समस्या सूर के सामने अनेक प्रश्न उपस्थित कर देता है । यही औद्योगीकरण आगे चलकर संघर्ष का महाभारत का कारण हुआ । इसी औद्योगीकरण के द्वारा गांव के सामाजिक तथा आर्थिक सूत्र टूटने लगे तथा अन्त में यही समस्या सूर के जान का कारण भी बनती है । अत: प्रेमचन्द `रंगभूमि` (१९२५ई०) उपन्यास के द्वारा औद्योगीकरण के वास्तव चित्र प्रस्तुत करते हैं । `रंगभूमि` (१९२५ई०) देहाती जिन्दगी के नाश की कहानी है । वह उसके नैतिक तथा आर्थिक पतन की लम्बी गाथा है, जिसका उत्तरदायित्व.... पश्चिमी सभ्यता पर है ।`[1] इस उपन्यास में लेखक ने खुलकर ग्रामीणों की आर्थिक समस्या का चित्रण किया है ।

भगवतीचरण वर्मा के `भूले बिसरे चित्र` (१९५९ई०) में हरिजनों के ऊपर आर्थिक अत्याचार को चित्रित किया गया है । गेंदालाल पर सवर्ण हिन्दू जनता अत्याचार करना चाहती है । `भूले-बिसरे चित्र` (१९५९ई०) में सरकार गेंदालाल के चमड़े के व्यापार में जल्दी सहायता नहीं करती है । सहायता करने पर सवर्ण हिन्दू लोग गेंदालाल से लम्बा सूद तथा मुनाफे में आधा साझा मांगते हैं । ज्ञानप्रकाश, जिसपर आर्यसमाज का प्रभाव है, गेंदालाल से पूछता है,-- `मैंने सुना है आप चमड़े का कारखाना खोल रहे हैं, विलायती ढंग से ।` जी खोल तो क्या रहा हूं, खोलने की कोशिश जरूर कर रहा हूं । लेकिन

---

१. डा० इन्द्रनाथ मदान : `प्रेमचन्द एक विवेचन`, पृ०सं० ८३ ।

पैसे की कमी है । सरकार को दिये हुए भी साल भर हो गया है। इधर-उधर से कर्ज मांगा तो लम्बा सूद मांग रहे हैं,और उस पर मुनाफे में साझा मांगा ।[1] यहां तक हो हरिजनों के ऊपर आर्थिक अत्याचार किया जाता है । पैसे देने वाले ऐसा शर्त लगाते हैं कि जहां कारखाना चलने लगे वहां रुपया लगाने वाला मालिक बन जाये और गेंदा जैसे लोग बाहर कर दिए जायें ।गेंदालाल में राष्ट्रीयता की भावना है, क्योंकि वह विलायती ढंग से चमड़ा न तैयार करना चाहता है । पर आर्थिक समस्या आड़े आ जाती है । आज भी हरिजनों में कितने प्रतिभाशाली छात्र होते हैं, पर वे आर्थिक संकट के कारण उच्च शिक्षा नहीं कर पाते हैं । इस प्रकार उनका जीवन अन्धकारपूर्ण बन जाता है । एक तरफ जहां हिन्दू वर्ग अपनी ऐयाशी पर हजारों रुपये मिनटों में पानी की तरह बहा देता है । मगर उसी धन का १० प्रतिशत भी हरिजन वर्ग के प्रतिभाशाली बच्चों को छात्रवृत्ति के रूप में दिया जाय तो कोई गलत बात न होगी । यद्यपि सरकार अब हरिजनों को शिक्षा विभाग से आर्थिक सहायता देती है । हरिजनों की आर्थिक व्यवस्था इतनी निम्न होती है, कि उनके छोटे-छोटे बच्चे बचपन से काम करने लगते हैं, जिससे बच्चों का पूर्ण विकास नहीं हो पाता है । इसको रोकने के लिए सरकार का कर्तव्य है कि वह हरिजन-परिवारों की आर्थिक स्थिति को सुदृढ़ करे ।

----

१. भगवतीचरण वर्मा : 'भूले बिसरे चित्र' (१६५६ई०),पृ०सं०५०६ ।

(३०) राजवर्ग

राजवर्ग ने भी हरिजनों के ऊपर अत्याचार किए हैं। राज वर्ग के लोग ब्रिटिश सरकार से मिले-जुले रहते थे। ब्रिटिश सरकार यदि इनका शोषण करती थी, तो यह वर्ग अपना क्रोध शान्त करने के लिए हरिजनों के साथ आर्थिक अत्याचार करता था।

'कौशिक' जी के 'संघर्ष' (१६४५ई०) में भी ब्रिटिश सरकार के द्वारा राजा का आर्थिक शोषण करते हुए दिखाया गया है और राजवर्ग द्वारा हरिजनों का आर्थिक शोषण करते हुए चित्रित किया गया है। उपन्यास में मटरू पासी के ऊपर जिलेदार शिवसहाय के अत्याचार को चित्रित किया गया है। पं० मदनमोहन शर्मा शिवसहाय के बच्चों के शिक्षक हैं। एक बार वे मटरू पासी के साथ गांव घूमने जाते हैं। उन्हें रास्ते में बच्चा सुकुल मिल जाते हैं। जब बच्चा सुकुल मटरू को अपने घर पान लाने को भेज देता है तो बच्चा सुकुल कहता है कि जिलेदार शिवसहाय, "नम्बर बेगार लेता है। गांव में दारू बनवाता है। खुद भी पीता है और पिलवाता है भी है।"

"अच्छा!" शर्मा जी विस्मित होकर बोले।

"जी हां!"

"कौन बनाते हैं दारू?"

"पासी लोग बनाते हैं। इसी मारे पासी लोग हम लोगों से दब दबते नहीं। नहीं सरकार पासी चमारों की यह मजाल नहीं थी

कि हम लोगों से बेजा बर्ताव करें । परन्तु जिलेदार साहब ने इन्हें सिर चढ़ा रखा है-- हम मारे डर रहते हैं ।'

'पुलिस को यह बात मालूम है ?'

'मालूम क्यों नहीं है । पर पुलिस भी राजा साहब का आदमी समझ कर इनसे नहीं बोलती । यह भी पुलिस की खातिर करते रहते हैं ।

'क्या खातिर करते रहते हैं ।'

'घी-दूध भेजवाते रहते हैं । कभी गांव में कोई चोरी बदमाशी होती है तो थानेदार को घूस दिलवा देते हैं ।'

' यह मटका भी पासी[1] मालूम होता है ।'

'पासी तो हई है ।'

इससे स्पष्ट हो जाता है कि जिलेदार शिवसहाय पासियों से बेगार तो लेता है, नजराना भी वसूल करता है । गांव में दारू भी बनवाता है । इस प्रकार वह पासियों के ऊपर अत्याचार करता है । लेखक का इस अत्याचार के प्रति दृष्टिकोण सुधारवादी नहीं है । वह इन अत्याचारों का समर्थक है । जिलेदार शिवसहाय शर्मा जी से कहते हैं,--' आपका कायदा न बिगाड़ें[2] । इन लोगों का फर्ज है देना और हम लोगों का फर्ज है लेना ।'

---

१. विश्वम्भरनाथ शर्मा 'कौशिक' : 'संघर्ष' (१९४५ई०), पृ०सं० २२६ ।

२. वही, पृ०सं० २२८ ।

जिलेदार शिवसहाय का पासियों के ऊपर अत्याचार करना अनुचित है । जिलेदार शिवसहाय के अत्याचार से प्रतीत होता है कि जैसे शासक वर्ग अपने अधीन शोषित वर्ग पर बेगार लेकर उनके ऊपर आर्थिक अत्याचार कर रहा है । इससे यह भी स्पष्ट हो जाता है कि समाज का हरिजनों के प्रति दृष्टिकोण आशाजनक न होकर निराशाजनक है । प्रश्न यह उठता है कि जब समाज का प्रत्येक मनुष्य बराबर है तो कोई व्यक्ति क्यों किसी के ऊपर किसी प्रकार का अत्याचार करे ? जिलेदार शिवसहाय का पासियों से बेगार लेना तथा दारू बनवाना इस दृष्टि से उचित नहीं प्रतीत होता ।

'गोली' (१९५८ई०) उपन्यास में चम्पा के ऊपर आर्थिक अत्याचार का चित्रण भी मिलता है । चम्पा तो शुरू से ही राजा के महलों में पली थी, अतः उसे कहीं भी आर्थिक कठिनाइयों का सामना नहीं करना पड़ता । राजा की उप पत्नी बन जाने पर वह अपने भविष्य के लिए बहुत सा पैसा एकत्र कर लेती है । चम्पा की सम्पत्ति को हस्तगत करने केलिए गंगाराम गोला(जो कि ड्योढ़ियों का मालिक है) चम्पा से शादी करना चाहता है।गंगाराम गोला चम्पा से कहता है,--' मेरी बात मान ले । मुझसे ब्याह कर ले ।बस, तेरा बेड़ा पार । पर सब रकम जमा-पूंजी मेरे नाम तुझे करनी पड़ेगी । बता कितना रुपया बैंक में है ? वह गुलम्टा तो कुछ बताता ही नहीं ।'

'तो तेरा उससे क्या सरोकार है ? मैं भी नहीं बताने की ।'

'और ब्याह ?'

'ब्याह क्या होता है ।'

'मैंने अन्नदाता की मर्जी ले ली है ।'

'इससे क्या होता है । मेरी मर्जी नहीं है ।'

'तू क्या अन्नदाता की मर्जी के खिलाफ चलेगी ?'

'अन्नदाता से कह दे कि वह मुझे कोल्हू में पेल के दें ।'

'उनसे कहने की क्या जरूरत है, यह काम तो मैं ही कर दूंगा । पर मैं तुझे प्यार करता हूं ।'

'और मैं तेरे मुंह पर थूंकती हूं । चौट्टा कहीं का ।'

'ऐसी बात ?' उसने हाथ का चाबुक फेंक दी और वह भेड़िये की तरह मुझ पर टूट पड़ा । एक बार तो मैंने उसे धकेल दिया । उसका सिर दीवार में जा टकराया और उसमें से खून बहने लगा । पर इसकी उसने परवाह न की । वह फिर मुझ पर झपटा । मुझे उसने भूमि पर गिरा दिया, फिर उसे उठा-उठा कर दो-तीन बार पटका । वे दोनों स्त्रियां भी उसकी सहायता को आ गईं । उन्होंने मेरे हाथ-पैर जकड़ लिए । अब तीन-तीन राक्षस मेरे साथ जूझ रहे थे । उसका सारा मुंह खून से भर रहा था । खून उसके ऊपर से बह रहा था । मैंने अवसर पाकर उसे दांतों से खूब जोर से काट लिया । इसके बाद तिलमिलाकर उसने मेरा सिर पत्थर के फर्श पर पटक दिया । मेरा सिर फट गया और खून की धार बह निकली । धीरे-धीरे मैं बेहोश हो गई ।'[1] चम्पा के ऊपर

---

१. चतुरसेन शास्त्री : 'गोली' (१९५८ई०), पृ०सं० २७७ ।

होने वाले अत्याचार के प्रति लेखक का सहानुभूतिपूर्ण दृष्टिकोण है यानी लेखक चम्पा के ऊपर होने वाले आर्थिक अत्याचार का पक्ष नहीं ग्रहण करना चाहता है। चम्पा के द्वारा लेखक ने अपना विरोध प्रकट किया है। चम्पा का पति किसुन भी संपत्ति का ब्योरा राजा को नहीं देता है। जब राजा विलायत से लौटते हैं तभी से उन्होंने किसुन पर दबाव डालना शुरू किया कि वह सब रुपये पैसे उन्हें दे दें। पर किसुन इन्कार कर जाता है, "अन्नदाता, जिसकी जमा-पूंजी है, उसकी आज्ञा बिना मैं कुछ नहीं कर सकता। मैं तो केवल उसका रक्षक हूं, स्वामी नहीं।"[1] राजा किसुन के ऊपर सख्ती करने लगे। रात को शराब पीने के समय वे किसुन से पूछते, "क्यों रे गुलाम, देता है वह सब जमा-पूंजी कि नहीं?"[2]

चम्पा के ऊपर जो आर्थिक अत्याचार किया जाता है वह उचित नहीं कहा जा सकता है। कारण यह है कि अगर कोई अपनी कमाई इकट्ठा करता है तो दूसरों का उस पर क्या हक? अगर चम्पा ने दूसरों की पूंजी चुराकर रख ली होती तो राजा या गंगाराम का पैसा मांगना वाजिब कहा जा सकता है। पर यहां ऐसी बात नहीं है। चम्पा ने खुद अपने पैसे एकत्रित

---

१. चतुरसेन शास्त्री : 'गोली' (१९२५ई०), पृष्ठांक २९० ।
२. वही, पृष्ठांक २९० ।

किए हैं। गंगाराम गोला तो उसकी सम्पत्ति लेने के लिए ही झूठ-फरेब का आश्रय लेकर उससे शादी करने को कहता है। हमारा तो विचार है कि जब गोला उसकी सम्पत्ति पा लेता तो वह उसको (चम्पा) को जान से मार डालता। इस तरह चम्पा की पूंजी तो मारी ही जाती, साथ ही साथ उसकी जान भी जाती। गंगाराम गोला तो शुरू से ही नीच रहा है। वह गद्दी पाने के लिए अपने लड़के को रानी का लड़का घोषित करता है, ताकि नये राजा को हटाया जा सके, क्योंकि पुराने राजा को कोई पुत्र न था। अत: दूसरा व्यक्ति राजा बन गया था, इसलिए गोला तथा रानी चन्द्रमहल मिलकर चाल खेलती है, जो सफल भी रहता है। जब बालक ए०जी०जी० द्वारा राजा घोषित कर दिया जाता है तो वह रानी को सताने लगता है। रानी भाग जाती है। जो व्यक्ति इतना नीच है तो फिर उसका कैसे विश्वास किया जा सकता है? चम्पा ने अपने ऊपर होने वाले आर्थिक अत्याचार का डटकर विरोध किया है, जो उचित ही लगता है।

चतुरसेन शास्त्री के 'उदयास्त' (१९५८ई०) उपन्यास में मंगतु चमार के ऊपर आर्थिक अत्याचार किया गया है। राजा साहब हरिजनों से बेगार कराना चाहते हैं, पर मंगतु चमार उनके इस आदेश को नहीं मानता है। राजा लोग किस प्रकार हरिजनों को सताते थे, इसका चित्रण मिलता है। राजा मंगतु चमार से कहते हैं,--

'क्या तू मंगतु चमार नहीं?'

'जी नहीं।'

'क्यों नहीं?'

'इसलिए कि मैं मंगलराम हूं ।'

'मंगलराम क्यों ? मंगलू चमार क्यों नहीं ?'

'मंगलराम क्यों नहीं ? मंगलू चमार क्यों, यह आप ही बताइए ।'

'क्या हमी से पूछता है, यह गुस्ताखी ?'

'गुस्ताखी नहीं महाराज, सवाल पूछा है । जैसा आपनेपूछा था ।'

'तू बेगार क्यों नहीं करता ।'

'बेगार करना और कराना दोनों ही अपराध है ।'

'क्या तेरे बाप-दादा बेगार नहीं करते थे ?'

'जो करते थे, मगर मैं नहीं करता ।'[1]

'क्यों नहीं करता है ?'

दीवाना गौरंगराम भी कहते हैं,--[2] 'बदमाश मालिक से इस तरह बात की जाती है ?' दीवान[3] उससे यह भी कहते हैं,--' मुंह से जबान खींच ली जाएगी, बज्जात ।' राजा तथा दीवानों का व्यवहार चमारों के प्रति कितना घृणित होता है, स्पष्ट हो जाता है ।

लेखक का 'उदयास्त' (१९५९ई०) उपन्यास में हरिजनों के अत्याचार के प्रति सुधारवादी दृष्टिकोण है । लेखक ने हरिजनों का उत्थान दिखाने में विशेष दिलचस्पी दिखाई है । मंगलू चमार के द्वारा लेखक ने सवर्णों के अत्याचारों का विरोध किया है । हम कह सकते हैं,

---

१. चतुरसेन शास्त्री : 'उदयास्त' (१९५९ई०), पृष्ठांक ३२ ।

२. वही, पृष्ठांक ३३ ।

३. वही, पृष्ठांक ३३ ।

कि `उदयास्त` (१९५८ई०) उपन्यास हरिजनों के उत्थान में योग देने वाला महत्वपूर्ण उपन्यास है। मंगतु चमार तो राजा से बेगार के प्रश्न पर विरोध प्रकट करते समय यथार्थ स्थिति को सामने रखता है,--" महाराज के बाप-दादे डाकेजनी का पेशा करते थे, आप क्यों नहीं करते।"[1] मंगतु दीवान को भी फटकारता है,--"दीवान जी, मुंह से गालियां निकालते हुए आपको शर्म आनी चाहिए। आपको बुजुर्ग समझकर मैं आपको उलट कर बदमाश नहीं कहता।"[2] जब दीवान उसे बज्जात कहता है तो भी मंगतु उसका विरोध करते हुए कहता है,--" हकीकत तो यह है कि आप बड़े ही बज्जात हैं।"[3]

मंगतु चमार से बेगार करवाना आज के युग में न्यायसंगत नहीं है। सवर्ण हिन्दुओं को क्या हक है कि वे हरिजनों से बेगार करावें ? सदियों से हरिजनों से जमींदार तथा राजा लोग बेगार करवाते आये हैं, इसी बात को लेकर लेखक ने मंगतु पात्र की सृष्टि की है। राजा का हरिजनों के ऊपर आर्थिक अत्याचार करना तो बिल्कुल ही असंगत है। राजा का मंगतु से यह कहना कि तुम्हारे बाप-दादा बेगार करते थे तुम भी करो, यह तर्क तो उपहासास्पद लगता है। यह जरूरी नहीं कि पुरानी पीढ़ी जो काम करे, वह नई पीढ़ी के लोग भी करें। यदि हम राजा का कहना ही मान लें तो यह उचित ही लगता है कि उनके बाप-दादा चूंकि डाके डालते थे, अत: राजा भी डाके डाले। इनमें तो मंगतु का मत

---

१. चतुरसेन शास्त्री : `उदयास्त` (१९५८ई०), पृ०३३।
२. वही, पृ०सं० ३३।
३. वही, पृ०सं० ३३।

कर्णकटु है, पर यह यथार्थ स्थिति को हमारे सामने रखता है। य मंगतू कुंवर साहब से भी कहता है, "भला ऐसा भी हो सकता है कि मैं महाराज से रार ठानूं ? ज्यादती उधर ही से हुई।"[1]

"खैर वह बुजुर्ग है, बड़े हैं। मेरी बात माननी पड़ेगी तुम्हें, दाता से माफी मांगनी होगी।"

"कुंवर साहेब, आपको मैं बहुत मानता हूं। आप देवता हैं। आप कहेंगे और महाराज और दीवान साहेब चाहेंगे तो मैं उन्हें माफ कर दूंगा, लेकिन मैं माफी काहे को मांगू, ज्यादती तो सरासर उन्होंने की है।" "महराज और दीवान साहेब मुझसे माफी मांगे और भविष्य में ऐसी हरकत न होगी यह वचन दे तो मैं, केवल आपके लिहाज से उन्हें माफ कर दूंगा।"[2] ऐसा लगता है कि लेखक मंगतू के अटल निश्चय की घोषणा कर रहा हो।

-o-

---

१. चतुरसेन शास्त्री : 'उदयास्त' (१९५९ई०), पृ०सं० ३७।

२. वही, पृ०सं० ३८।

सप्तम अध्याय

-o-

धार्मिक स्थिति और हरिजन

(क) हरिजनों के धार्मिक अधिकार ।

(ख) धर्म के नाम पर आर्थिक शोषण ।

(ग) मंदिर - प्रवेश ।

(घ) मध्यकाल के निम्नवर्गों के द्वारा तथाकथित ब्राह्मण वर्ग की आलोचना ।

-o-

सप्तम अध्याय

-o-

धार्मिक स्थिति और हरिजन

हरिजनों की धार्मिक स्थिति भी अत्यन्त दयनीय रही है । अस्पृश्यता वस्तुत: अमानुषिक अपराध है, इसमें घोर कृतघ्नता है । हरिजनों को सेवा का पुरस्कार नहीं, उल्टे दण्ड दिया जाता है । यह दण्ड भी विचित्रता लिए हुए है । इसमें न्याय तो नाम को भी नहीं है । कितने ही मंदिरों के दरवाजे उनके लिए बंद पड़े हैं । एक चर्मकार ढोलक बजाना जानता है । भजन-कीर्तन के समय सवर्ण लोग उसे मन्दिर में ढोलक बजाने के लिए कहते हैं, पर उसके ही भाई-बन्धु जब दर्शन हेतु मन्दिर में जाना चाहते हैं, तब उन्हें मंदिर में जाने से इसलिए रोका जाता है कि उसके दर्शन से भगवान् अपवित्र हो जाएंगे या उनके प्रवेश से मन्दिर अपवित्र हो जायेगा । कौन न्याय-प्रिय व्यक्ति इस अन्याय का समर्थन करेगा ?

सब प्राणियों में एक ही परम पिता का प्रकाश देखने वाला पंडित है और इसके विपरीत आचरण करने वाला मिथ्याचारी है, चाहे वह ऊपरी या बाह्य रूप में कितने ही धर्म के चिह्न सजा लें । जब गुलामी को अंग-अंग से मिटाकर आगे बढ़ने वाले देश में अस्पृश्यता को बेच रखना, वापस गुलामी का आवाहन करना है ।

आज किसी को दबाकर हम काले अंग्रेज बने, यह शोभाजनक नहीं है। आजादी पूरे भारत में आई है, मुट्ठी भर सवर्णों के लिए नहीं। अब धार्मिक अत्याचार का समर्थन करना उचित नहीं। कबीरदास ने लिखा है कि, "एके --

'एकै त्वचा हाड़ मल मूत्रा, एक रूधिर एक गूदा
एक बिन्दु से सृष्टि रचो है, को ब्राह्मण को शूद्रा।'

अर्थात् परमात्मा की दृष्टि में धार्मिक भेदभाव के लिए कोई स्थान नहीं है। जहां तक हरिजनों के धार्मिक अधिकार का प्रश्न है? इस बात को जानने के लिए मनुष्य की आदिम अवस्था से लेकर वैदिक-काल, उत्तरवैदिककाल, पौराणिक-काल, स्मृति-काल एवं भक्ति-काल तक की परम्पराएं और प्रमाण ही काफी है।

समाज के पंडित वर्ग धर्म के नाम पर हरिजनों का आर्थिक शोषण करते हैं। इसीलिए समाज-सुधारकों के द्वारा इनकी तीव्र भर्त्सना भी की गई है। हरिजनों का मंदिर-प्रवेश का प्रश्न अस्पृश्यता निवारण में बहुत महत्वपूर्ण स्थान रखता है। क्योंकि जब असंख्य सार्वजनिक मन्दिर हरिजनों के लिए खुल जायेंगे, तब उन्हें तत्काल अपने लिए नवयुग का उदय होता दीख जायेगा। वे यह भूल जायेंगे कि हम किसी समय समाज से बहिष्कृत थे। मंदिरों में परस्पर संसर्ग से इनकी दृष्टि और जीवन में परिवर्तन हो जायेगा। वे अपनी बुरी आदत छोड़ देंगे। आजकल मंदिरों की क्या कीमत है? वे अनाचार के अड्डे तक बन गये हैं और वहां पर सब प्रकार का दुराचार होता है।

(क) हरिजनों के धार्मिक अधिकार

यह निर्विवाद ह सत्य है कि अस्पृश्यता आत्मा के विकास के लिए घातक है । यह प्रथा हिन्दु-धर्म के तत्वों और उसके उदार सिद्धान्तों के सर्वथा विपरीत है । हमारे धर्मशास्त्रों में आचार की शुद्धता को प्राथमिकता दी गई है,किन्तु `आचार` को वास्तविकता को एक ओर रखकर हमने अस्पृश्यता के द्वारा `आचार: प्रथमो धर्म:` की पुष्टि करना प्रारम्भ कर दिया । इसका परिणाम यह हुआ कि आन्तरिक आचार,आत्मिक विशुद्धता और धर्म के वास्तविक स्वरूप से विमुख होकर हम बाह्य आचार और प्रथापूजन के अनुयायी हो गये । मनुष्य के मानसिक विकारों पर विचार करने से ज्ञात होता है कि वह पशुओं की तरह निर्बलों पर आधिपत्य बनाये रखने की वृत्ति का सदा से पोषण करता रहा है । दास-प्रथा की यह भावना भी अस्पृश्यता का आधार रही है। इतिहास साक्षी है कि सदैव से पराजित जातियां विजेता जातियों द्वारा पद दलित अवस्था में रखी गई । वे जातियां, जो निर्बल, निर्धन और सेवा पर आधारित थी, स्वभावत: विनम्र रही और इसके विपरीत अन्य समुदाय अपने धन और बड़प्पन के अहंकार में उ इन्हें दबाता रहा तथा अवधि ने इसे परम्परा का रूप देकर विकृत और दृढ़ कर दिया । इसी सामाजिक कलंक को वैधानिक स्वरूप देने के लिए और सत्य के सांचे में ढालने के लिए धर्म की सहायता लेने का प्रयत्न किया गया । जो हो, अस्पृश्यता की यदि यथार्थता पर विचार करें, तो स्पष्ट है कि धर्म से इसका कोई सम्बन्ध नहीं है ।

हिन्दु धर्मशास्त्रों ने जो आदर्श प्रस्थापित किया है, उसमें ऊंच-नीच के लिए कोई स्थान नहीं है । हिन्दु-धर्म का मुल सिद्धान्त मानवता की एकता है,जो मनुष्य को शाश्वत क्रमानुगति को पुर्णता का ओर ले जाती है । असीम अनुराग, पारस्परिक सच्चरित्रता, यथार्थ सहानुभुति तथा सत्य को प्रत्येक व्यक्ति पर प्रत्यक्ष कर दिखाना ही सच्चा धर्म है । इसमें भेद-भाव का आग्रह हिंसा और अधर्म है। ईश्वर का दिव्य प्रकाश प्राणिमात्र को प्रकाशित करता है । उसके साम्राज्य में सब समान हैं । "प्राणिमात्र को सुख देना ही धर्म और मन, वचन या कर्म से किसी को दुःख पहुंचाना ही पाप एवम् अधर्म --" यही हिन्दु शास्त्रों का निचोड़ है । कहा है कि,--

'अष्टादश पुराणानां व्यासस्य वचनद्वयम् ।
परोपकारस्तु पुण्याण्य पापाय परपीड़नम् ।।'

इसी संवेदन के आधार पर हमारे लिए एक लक्ष्य निर्धारित किया गया,--

'सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद्दुःखमाप्नुयात् ।'

इसी पर गोस्वामी तुलसीदास जी ने भी कहा है;--

'परहित सरिस धरम नहिं भाई,
पर पीड़ा सम नहिं अधमाई ।'

इस सर्वहित की भावना से अस्पृश्यता का सम्बन्ध पुर्व और पश्चिम जैसा ही है । अस्पृश्यता में स्वार्थ और अहंकार है । अपने स्वयं के सम्मान और अन्य के तिरस्कार के प्रवृत्ति है । बड़े और

होने की असंभावना है । सामाजिक अस्पृश्यता इसी कुप्रवृत्ति का संगठित परिणाम है । जिस प्रकार कुछ आक्रमणकारी दल एक ओर किसी निर्बल राष्ट्र को अपने स्वार्थों के लिए पराजित करके उसे दबाये रखते हैं, उसके शोषण पर अपना वैभव विस्तृत करते रहते हैं और अपने इस गर्हित कृत्य को नैतिकता का स्वरूप देकर विश्व के लोकमत को अनुकूल करने का प्रयत्न किया करते हैं । ठीक वही स्थिति अस्पृश्यता के सम्बन्ध में भी रही है ।जो लोग इसे धर्म शब्द से अंकित करते हैं, वे अपने भोले अनुयायियों को अन्धकार में रखने का प्रयत्न करते हैं । धर्म ने कभी किसी को ऊँच या नीच नहीं माना । हिन्दु धर्म शास्त्रों का आदि स्रोत वेद है । वेदों में सब के समान अधिकार माने गये । सब को एक दर्जा दिया गया है । कहा गया है कि,--

"समानो मन्त्र: समिति: समानी समानं मन: सहचित्तमेषाम् ।
समानं मन्त्रमभिमन्त्रये व: समानेन हविषा जुहोमि ।"

(ऋग्वेद मं० १०)

अर्थात्-हे मनुष्यों, तुम्हारी सम्मति एक हो, तुम्हारी समिति एक हो, समान चित्त से तुम्हारा मनन एक हो, इस प्रकार करने को मैं तुम्हें अभिमन्त्रित करता हूं और समान साधनों से युक्त करता हूं ।

इस समता के आधार पर हमारे धर्म कार्यों में समस्त समाज को समान अधिकार दिया गया था ।यजुर्वेद में एक बहुत महत्वपूर्ण मंत्र है,--

'यथे मां वाचं कल्याणीमावदानि जनेभ्यः ब्रह्मराजन्याभ्याम्
शूद्राय चार्याय च स्वाय चारणाय प्रियोदेवानां दक्षिणायै
दातुरिह भूयासमयं मे कामः समृध्यतामुपमादोनमतु ।'
--यजु० २६।२[1]

अर्थात्-हे शिष्यो। जिस प्रकार इस वेद वाणी को मैं ब्राह्मण
क्षत्रिय व वैश्य, शूद्र सब के लिए कहता हूं, उस प्रकार तुम भी
इसका सब मनुष्यों में उपदेश किया करो । जिस प्रकार मैं
विद्वानों और दक्षिणा के देने वाले धनियों का प्रिय बनूंगा,
उसी प्रकार तुम लोग भी पक्षपात रहित होकर सर्वप्रिय बनोगे।
जैसे मुझमें अनन्त विद्या के सर्वसुख विद्यमान हैं, व वैसे ही जो
कोई विद्या का ग्रहण और प्रचार करेगा, उसे भी मोक्ष तथा
संसार को समस्त समृद्धियां प्राप्त होंगी ।

इसी प्रकार वेदों में अनेक मंत्र हैं, जिनसे सिद्ध
होता है कि धर्मशास्त्रों ने मनुष्य का मनुष्य से कोई भेद नहीं
माना था । स्मृति ग्रन्थों में भी शूद्रत्व का सम्बन्ध शुभाशुभ आचरण
से ही माना गयाथा । जन्म,वंश, रक्त आदि से नहीं । धर्म का
निरूपण करते हुए स्वयं महाराज मनु ने भी शुद्धाचारी शूद्र को
श्रेष्ठ और दुष्ट कर्म करने वाले ब्राह्मण को हीन कहकर सिद्ध किया
है कि हिन्दू धर्म में जन्मगत या जाति वंशगत अस्पृश्यता के लिए

---

१. श्री राम शर्मा आचार्य : 'यजुर्वेद' (१६६०ई०),पृ०सं०४२८ ।
(सम्पा०)

कोई व्यवस्था नहीं है । उन्होंने कहा है कि ज्ञान,सत्यादि आदर्श गुणों से युक्त और भगवद्भक्ति से विभूषित एक श्वपच ईश्वर विमुख ब्राह्मणों से कहीं श्रेष्ठ है ।

हमारे धर्म शास्त्रों ने मूल चार ही वर्ण माने हैं । कहा है कि,--

'ब्राह्मण: क्षत्रियो वैश्यस्त्रयो वर्णा द्विजातय:
चतुर्थ एक जातिस्तु शूद्रो नास्ति तु पंचम: ।'

--मनु० अ० १०।४

धर्म में हरिजनों का समान अधिकार है । अतएव प्रत्येक मनुष्य भी समान ही हैं । जब सब मनुष्य परमात्मा के लिए एक समान प्रिय पुत्र हैं, तो भक्ति करने देव दर्शन करने या मंदिर में प्रवेश प्राप्त करने का सबको समान अधिकार है । यही सत्य सनातन धर्म है । धर्म स्थानों या धर्मकार्यों के लाभों से किसी को वंचित और अप्रतिष्ठित रखना अधर्म और अन्याय है ।

यह वंशानुगत अस्पृश्यता अज्ञानजनित अंधविश्वासों का ही परिणाम है । घृणा और विद्वेष का व्यापार है । जो लोग कहते हैं कि अस्पृश्यता अपवित्रता के कारण प्रचलित हुई है, उन्हें भी यह ज्ञात होना चाहिए कि अपवित्रताजनित अस्पृश्यता वंश परम्परागत कदापि नहीं हो सकती, न इस प्रकार की अस्पृश्यता किसी वर्ण विशेष के लिए 'यावच्चन्द्रदिवाकरौ' ही रह सकती है ।

अपवित्रता से उद्भूत अस्पृश्यता हमारे यहां थी, पर वह सभी वर्णों में व्याप्त रही और वह अवसर विशेष के लिए

हा माना गया था । जैसे-- जन्म,मृत्यु,विवाह,संभोग आदि ।
जन्म में दस दिन के लिए मृत्यु से भी दसरात्रि के लिए,अपवित्रता
आती थी, जो सपिंड,सगोत्र,गुरु,गुरु-पत्नी आदि पर्यन्त पहुंचती
थी । परन्तु यह अपवित्रता नियत अवधि के उपरान्त गोमय,गोमूत्र
पानी,दूर्वादल, दर्भ आदि से निर्मुक्त हो जाती था । इस अपवित्रता
का प्रभाव सभी वर्णों पर न्यूनाधिक रूप में होता था, किन्तु
वंशानुगत अस्पृश्यता एक भिन्न स्वरूप की है । इसका परिहार
तो मृत्यु के उपरांत भी नहीं हो सकता । इसके लिए शुद्धि के
समस्त उपकरण निष्फल है । इसका सूत्र जन्म के पूर्व से मृत्यु के
बाद तक अनन्त और अपार है । धर्म शास्त्रों ने बड़े से बड़े पतित
के शुद्धिकरण की व्यवस्था दी है, पर यह अस्पृश्यता तो धर्मशास्त्रों
से सर्वथा भिन्न केवल अंधविश्वास है ।

मंदिर-प्रवेश के सम्बन्ध में धर्म शास्त्रों ने भक्ति
को ही विशेष मान्यता दी है । स्वयं भगवान श्रीकृष्ण ने गीता
में अर्जुन से कहा है कि,--

`मां हि पार्थ व्यपाश्रित्य येऽपि स्यु, पापयोनय:
स्त्रियो वैश्यास्तथा शूद्रास्तेपि यान्ति परांगतिम् ।`[1]

अर्थात् - हे अर्जुन, मेरे आश्रित होने वाला कोई पतित हो,स्त्री,वैश्य,
शूद्र हो, पापयोनि हो, वह उत्तम गति प्राप्त करता है । इसी
प्रकार ईशान संहिता, नृसिंहपुराण, भागवत, स्मृतियों और

---

१. श्री भगवद्गीता`,इण्डियनप्रेस, गोरखपुर,पृ०सं० १६८ ।

महाभारत आदि में शूद्र को अन्य वर्णों के समान दर्जा दिया गया है ।

पंचयज्ञ का विधान हरिजन के लिए भी है । उसे भी नित्य कर्म अवश्य करना चाहिए । पंचयज्ञ का विवरण शास्त्रों में निम्न प्रकार से स्पष्ट किया है,-

'अध्यापन ब्रह्मयज्ञः पितृयज्ञस्तु पूजनम्
होमो दैवो बलि भौतो, नृयज्ञो तिथि पूजनम् ।'

मनु० ३।७०

अर्थात् वेद का अध्ययन, अध्यापन, ब्रह्मयज्ञ वेद मन्त्रों से पितृतर्पण हवन करना-- देवयज्ञ,बलि देना,भूत यज्ञ और अतिथि पूजन ये पांच यज्ञ हैं । जिनमें देवयज्ञ में देव पूजा देवदर्शन आदि का समावेश है और इन सब का शूद्रों को भी अधिकार दिया गया है ।

मन्दिर-प्रवेश और मूर्तिपूजन का ही प्रश्न नहीं, धर्मशास्त्रों ने शूद्रों को ब्राह्मणों के समान ही अधिकार प्रदान कर जिस महानता का परिचय दिया है, खेद है कि उसे उन्हीं शास्त्रों के अनुयायी आज घटा रहे हैं,-

'शूद्राणामदुष्टकर्मणामुपनयनम् ।'

--पारस्कर गृह्यसूत्र टीका ।

अर्थात् अपने कर्तव्यों का पालन करने वाले शूद्रों को उपनयन का अधिकार है और यह स्पष्ट है कि जिसे उपनयन का अधिकार है,

उसे वेदाध्ययन आदि के भी अधिकार हैं । अब इस दशा में अस्पृश्यता का प्रश्न ही नहीं उठता है ।

(ख) <u>धर्म के नाम पर आर्थिक शोषण</u>

हमारा समाज इतना संकीर्णताग्रस्त है कि वह धर्म के नाम पर भी आर्थिक शोषण करता है । अतः मैं धर्म के नाम पर रोटी कमाने वालों का यह प्रथम कर्तव्य है कि वे लोगों को धर्म का सही पाठ पढ़ावें । अपनी सामाजिक नौकाओं से अस्पृश्यता के पत्थर निकाल कर बाहर करें । इसे ही अन्धकार से प्रकाश की ओर बढ़ना कहा जाता है । धर्म का गलत अर्थ समझाकर रोटी कमाना गलत है क्योंकि इसी कारण ही पोप और पुजारी और अन्य धर्मोपदेशकों का स्वयं का असम्मान हुआ है ।

प्रेमचन्द के 'गोदान' (१९३६ई०) उपन्यास में धर्म के नाम पर आर्थिक शोषण को चित्रित किया गया है । भारतीय समाज में धर्म के नाम पर आर्थिक शोषण का भी बहुत प्रचार था । धार्मिक पंडे-पुरोहित धर्म के बहाने हजारों रुपए लोगों से ऐंठते रहते थे और अंधविश्वासी भारतीय जनता इस शोषण का शिकार हो रही थी । धर्म के क्षेत्र में बाह्य आडम्बर का अत्यधिक प्रचार इसी कारण से हुआ। धार्मिक महन्त ठाकुर जी के नाम पर हजारों रुपये चन्दा लेकर गोलमाल करते थे । इस समस्या पर

उपन्यासकारों का ध्यान गया और उन्होंने ऐसे पण्डितों और पुरोहितों से लोगों को आगाह करने के लिए इस समस्या को काफी नमक-मिर्च मिलाकर प्रस्तुत किया ।

प्रेमचन्द की सूक्ष्म तथा पैनी दृष्टि से यह शोषण कब तक बचा रह सकता था । अपने उपन्यासों में प्रेमचन्द ने शोषण को काफी गम्भीरता के साथ प्रस्तुत किया है । 'गोदान' (१९३६ई०) में ब्राह्मण दातादीन के द्वारा होरी का जो शोषण होता है, वह किसी साहूकार तथा जमींदार के शोषण से कम नहीं है । वर्णाश्रम धर्म के अनुसार ब्राह्मणों को श्रेष्ठ माना जाता है तथा उसे देवता समझा जाता है, लेकिन व्यावहारिक जीवन में वही ब्राह्मण बड़ा ही क्रूर तथा असहिष्णु बन जाता है । धर्म तथा ईश्वर के नाम पर बिना मेहनत के ही वह अपनी जीविका चला ले जाता है । दातादीन अपनी ब्राह्मण वृत्ति के सम्बन्ध में स्वयं कहते हैं,--'तुम जजमानी को भीख समझो, मैं तो उसे जमींदारी समझता हूं-- ऐसा चैन न जमींदारी में है, न साहूकारी में ।'[१] दातादीन तीस रुपये के दो सौ रुपये लेना चाहता है । गोबर केवल सत्तर रुपये देने को कहता है । चूंकि होरी धार्मिक विश्वास में पूर्ण आस्था रखता है, इसीलिए ब्राह्मण, होरी शूद्र के लिए पूज्य है, चाहे वह ब्राह्मण दातादीन जैसा गुंडा ही क्यों न हो । प्रेमचन्द लिखते हैं,--'अगर ठाकुर या

---

१. प्रेमचन्द : 'गोदान' (१९३६ई०), पृ०सं० २४८ ।

बनिये के रुपये होते तो उसे ज्यादा चिन्ता न होती, लेकिन ब्राह्मण के रुपए। उसकी एक पाई भी दब गई, तो हड्डी तोड़कर निकलेगी। भगवान न करे कि ब्राह्मण का कोप किसी पर गिरे। बंस में कोई चिल्लू-भर पानी देने वाला, घर में दिया जलाने वाला भी नहीं रहता।"[1]

प्रेमचन्द मानते हैं कि," धर्म का मुख्य स्तम्भ भय है। अनिष्ट की शंका को दूर कर दीजिए, फिर तीर्थ यात्रा, पूजा-पाठ, स्नान-ध्यान, रोजा-नमाज, किसी का निशान भी न रहेगा। मसजिदें खाली नजर आयेंगी और मन्दिर वीरान।"[2] वस्तुतः 'रंगभूमि' (१९२५ई०) में प्रेमचन्द बाह्य आडम्बरों से क्षुब्ध है, लेकिन 'कर्मभूमि' (१९३२ई०) में आकर उनके विचार और भी उग्र हो गये हैं। विद्यालय में धर्म के विवाद पर अमरकान्त के विचार वस्तुतः लेखक के ही विचार हैं," वह उस क्रान्ति में ही देश का उद्धार समझता था -- ऐसी क्रान्ति में, जो सर्वव्यापक हो, जो जीवन के मिथ्या आदर्शों का झूठे सिद्धांतों का, परिपाटियों का अन्त कर दे, जो एक नए युग का प्रवर्तक हो, एक नयी सृष्टि खड़ी कर दे, जो मिट्टी के असंख्य देवताओं को तोड़ तोड़कर चकनाचूर कर दे। जो मनुष्य को धन और धर्म के आधार

----

१. प्रेमचन्द : 'गोदान' (१९३६ई०), पृ०सं०१३५ ।

२. वही : 'रंगभूमि' (१९२५ई०), पृ०सं०१०१ ।

पर टिकने वाले राज्य के पंजे से मुक्त कर दे[१]।" यही अमरकांत आगे चलकर धर्म के स्थान पर व्यक्ति की सर्वोपरि शक्ति की प्रतिष्ठा करता है । वह सलीम से कहता है कि," मेरा अपना ईमान तो यह है कि मजहब आत्मा के लिए बन्धन है । मेरी अकल जिसे कबूल करे, वह मेरा मजहब है । बाकी सब खुराफात[२]।" प्रेमचन्द इसी उपन्यास में भावी संस्कृति का अग्र सूचना देते हैं । गजनवी कहता है कि," मजहब का दौर तो खत्म हो रहा है बल्कि यों कहो कि खत्म हो गया । -- यह तो दौलत का जमाना है अब कौम में अमीर और गरीब,जायदाद वाले और मरे-भूखे,अपनी-अपनी जमातें बनायेंगे[३]।"अन्तत: प्रेमचन्द धार्मिक युग का पटाक्षेप करते हैं और ऐसा लगता है कि मानवीय संस्कृति के आगामी नाटक की सूचना वह सूत्रधार के रूप में दे रहे हैं । "प्रसाद जी ने जैसे अपने नाटकों में आवश्यकता से अधिक राष्ट्रीय उत्साह अभिव्यक्त किया है, उसी प्रकार आवश्यकता से अधिक धार्मिक उत्साह प्रेमचन्द ने अपने उपन्यासों में प्रकट किया है ।" वास्तव में प्रेमचन्द का दृष्टिकोण है कि धार्मिक बन्धनों की तुलना में मानवतावाद अधिक महत्वपूर्ण है ।

---

१. प्रेमचन्द : 'कर्मभूमि'(१९३२ई०),पृ०सं० ९५ ।
२. वही, पृ०सं० १०० ।
३. वही, पृ०सं० ३२१ ।

(ग) मन्दिर- प्रवेश

हमारे लोकतंत्री गणराज्य के संविधान में अस्पृश्यता को खत्म कर दिया गया है । अस्पृश्यता अपराध घोषित किया जा चुका है । ऐसे अपराधों के लिए और कड़ी कार्रवाई को सोचा जा रहा है । लेकिन फिर भी बीसवीं शती की अंतिम चौथाई में हरिजनों में प्रवेश कर पूजा का अधिकार नहीं है । धर्म मानव जाति की सबसे प्राचीन थाती है और यह हर व्यक्ति के आन्तरिक जीवन को प्रभावित करती है । हम समानाधिकार की बातें करते हैं और यह हमारी ईमानदारी और निष्ठा की कसौटी है । हरिजन को मंदिर में प्रवेश की आज्ञा नहीं । यही नहीं, यदि वह ऐसा करने के अपने अधिकार का प्रयोग करना चाहते हैं तो बर्बर पुजारियों के द्वारा मौत के घाट उतार दिए जाते हैं । अस्पृश्यता कानून सम्मत नहीं लेकिन फिर भी बनी हुई है । जब तक मनुष्य का मन शुद्ध नहीं होता और जब तक ऊंची और नीची जातियों का भेद बना हुआ है, तब तक समाज में क्रान्ति नहीं हो सकती । सम्पूर्ण क्रान्ति का प्रश्न ही नहीं उठता ।

प्रेमचन्द ने 'कर्मभूमि' (१९३२ई०) उपन्यास में धार्मिक अत्याचारों का भी चित्रण किया है । प्रेमचन्द का विचार है कि धर्म का काम संसार में मेल तथा एकता पैदा करना होना चाहिए, लेकिन समाज की यथार्थता ने यह सिद्ध कर दिया था कि धर्मों में भी विभिन्नता तथा द्वेष हो सकता है । लाला समरकांत ने बेईमानी से रुपया एकत्र कर ठाकुरद्वारे का निर्माण कराया है । समरकांत कहते हैं,-- 'धर्म को मैं हानि-लाभ की तराजू पर नहीं तौल सकता ।' जब हरिजन लोग मंदिर का दर्शन करना चाहते हैं तो लाला समरकांत

तथा पंडे-पुजारी भभक उठते हैं, 'निकाल दो सभी को मार कर[1]।' 'कर्मभूमि' (१९३२ ई०) उपन्यास में ठाकुर जी के मंदिर में रामायण की कथा का आयोजन है। एक दिन हरिजनों को भी कथा सुनते देखकर रूढ़िवादी दल हंगामा मचाता है। ब्रह्मचारी, समरकांत से शिकायत करता है कि हरिजन लोग कथा सुनने आते हैं, 'ब्रह्मचारी ने माथा पीट लिया। ये दुष्ट रोज यहां आते थे। रोज सब को छूते थे। इनका छुआ हुआ प्रसाद लोग रोज खाते थे। इससे बढ़कर अनर्थ क्या हो सकता है। धर्मात्माओं के क्रोध का पारापार न रहा। कई आदमी जूते ले-लेकर उन गरीबों पर पिल पड़े[2]।' यह हरिजनों के ऊपर धार्मिक अत्याचार ही है कि उन्हें मंदिरों में कथा न सुनने दिया जाये। 'कर्मभूमि' (१९३२ ई०) उपन्यास के हरिजन पात्र इसका विरोध करते हैं, पर हरिजनों का नेतृत्व सवर्ण हिन्दू पात्र शान्तिकुमार करते हैं। शान्तिकुमार हरिजनों से कहते हैं तुम्हें इतनी भी खबर नहीं कि यहां सेठ महाजनों के भगवान् रहते हैं। जब एक आदमी कहता है,--'हम फौजदारी करने नहीं आये हैं, ठाकुर जी के दर्शन करने आये हैं[3]।' समरकान्त ने उस आदमी को धक्का देकर कहा, 'तुम्हारे बाप-दादा भी कभी दर्शन करने आये थे कि तुम्हीं सबसे वीर हो[4]।' शान्तिकुमार समरकान्त से कहते हैं,--

---

१. प्रेमचन्द : 'कर्मभूमि' (१९३२ई०), पृ०सं० ३०८।

२. वही, पृ०सं० ३०८।

३. वही, पृ०सं० ३१९।

४. वही, पृ०सं० ३१९।

"ठाकुर जी द्रोही मैं नहीं हूं, द्रोही वह है,जो उनके भक्त भक्तों को उनकी पूजा नहीं करने देते । क्या यह लोग हिन्दू संस्कारों को नहीं मानते ? फिर अपने मन्दिर का द्वार क्यों बन्द कर रखा है ?"[1] हरिजनों के विरोध करने पर मंदिर का द्वार खुल जाता है । ऐसा लगता है कि शान्तिकुमार के रूप में प्रेमचन्द धर्म के बारे में विचार प्रकट कर रहे हों । इस धार्मिक संघर्ष में अनेक व्यक्तियों की जान भी जाती है । पर प्रेमचंद मंदिर का द्वार खुलवाकर ही दम लेते हैं । हरिजनों का मंदिर में प्रवेश न करने के विरुद्ध आन्दोलन उचित ही है । चूंकि हरिजनों के ऊपर धार्मिक अत्याचार होता है । अत:इसीलिए प्रेमचन्द ने शान्तिकुमार के नेतृत्व में संघर्ष दिखाया है । अत: इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि प्रेमचन्द की सहानुभूति आन्दोलन-कारियों के प्रति है ।

'मनुष्यानन्द'(१६३५ई०) उपन्यास में बुधुआ के ऊपर धार्मिक अत्याचारों का चित्रण हुआ है । 'मनुष्यानन्द' (१६३५ई०) उपन्यास में बुधुआ मृत्यावस्था की स्थिति में बाबा विश्वनाथ जी का दर्शन करना चाहता है,अत: अघोड़ी बाबा के नेतृत्व में भंगियों का जुलूस विश्वनाथ जी के दर्शन करने के लिए जाता है । मंदिर का पुजारी,मंदिर की पवित्रता की रक्षा के

---

१. प्रेमचन्द : 'कर्मभूमि'(१६३२ई०),पृ०सं० ३२० ।

लिए पंडे-पुरोहितों को साथ लेकर हिंसात्मक संघर्ष की तैयारी करता है। पंडे कहते हैं,--'अरे, तो आज लाशें भी उठ जायेंगी। हम अपने जीते-जी बाबा के मन्दिर को अछूत न होने देंगे। यह हमारी रोजी की समस्या है। इसी तरह समाज के सभी धुनिये-जुलाहे हमारे तीर्थों पर कब्जा कर मनमानी करने लगेंगे, तो हमारी तो लुटिया ही डूब जायेगी। ऐसे मौके पर अघोड़ी तो अघोड़ी है, परमात्मा भी आवें तो बिना दो-चार डण्डे लगाये हम मानने वाले नहीं।'[1] इस रूढ़िवादी प्रतिगामी दल के लिए सरकारी पुलिस शासन भी सहायता देता है। लेकिन 'उग्र' जी ने अघोड़ी बाबा के अलौकिक चरित्र का सहारा लेकर संघर्ष बचा लेते हैं और हरिजन विश्वनाथ जी के दर्शन भी कर लेते हैं, 'एकाएक सरस्वती फाटक की ओर से लोगों को आश्चर्य में डालता हुआ, अछूतों का जुलूस मन्दिर में घुस गया और क्षण भर तक वहां के रक्षक और पण्डे ऐसे हतबुद्धि रहे कि उन्हें कुछ कर्तव्याकर्तव्य सूझा ही नहीं। वह होश में आये और संभले तब, जब जुलूस वहां से गायब हो गया।'[2] चूंकि 'उग्र' जी पर महात्मा गांधी का प्रभाव मिलता है, इसीलिए भंगियों तथा पण्डों के बीच मंदिर - प्रवेश के प्रश्न पर संघर्ष बच जाता है। यों उस समय की सामाजिक स्थिति को देखते हुए संघर्ष अनिवार्य था। 'उग्र' जी

---

१. पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' : 'मनुष्यानन्द' (१९३५ ई०), पृ०सं० १९६।

२. वही, पृ०सं० १९८।

हरिजनों का उत्थान चाहते हैं, इसीलिए मन्दिर में उन्हें घुसने दिया है तथा संघर्ष को भी बचाया है। "मनुष्यानन्द" (१९३५ ई०) उपन्यास हरिजन-समस्या पर रचा गया अद्भुत उपन्यास आज भी ज्यों-का-त्यों ताजा और चित्ताकर्षक है।" हरिजनों को मन्दिर के अन्दर न घुसने देना तो एक अत्याचार है जिसे किसी भी दृष्टि से उचित नहीं कहा जा सकता है। आखिर क्या कारण है कि एक सवर्ण हिन्दू के मन्दिर में जाने से मन्दिर अपवित्र नहीं होता, पर हरिजन के जाने से अपवित्र हो जाता है? इन्हीं धार्मिक अत्याचारों के कारण सरकार ने भेद-भाव के विरुद्ध कानून बनाये हैं। अछूतों का विश्वनाथ जी के मन्दिर में जाना उचित है, अनुचित नहीं।

यज्ञदत्त शर्मा के "सीधा रास्ता" (१९५८ ई०) उपन्यास में हरिजनों के ऊपर धार्मिक अत्याचार को चित्रित किया है। हमारे समाज में हरिजनों को चूंकि अछूत तथा निम्न समझा जाता है, इसीलिए उनको मन्दिर में देवी का दर्शन भी नहीं करने दिया जाता है। चूंकि कनकू तथा भम्भार चमार हैं, अतः पण्डित वर्ग तथा सवर्ण हिन्दू वर्ग हरिजनों के मन्दिर में अन्दर जाने का विरोध करते हैं। शर्मा जी लिखते हैं,-- "मन्दिर के द्वार खुलने वाले थे और पण्डित संकटमोचन अपना अंगोछा बांधकर मस्तक पर सिन्दूरी तिलक किए पूजा के लिए तैयार थे। देवी के सर्वप्रथम दर्शन सदा चौधरी रामसिंह को होते थे, क्योंकि उन्होंने देवी के लिए सबसे मूल्यवान तीपल(वस्त्र) बनवाई थी, परन्तु आज ज्यों ही वह अपनी पूजा का सामान लेकर आगे बढ़े, त्यों ही

आस-पास के देहातों, छोटी जातियों का भारी और जमाव दिखलाई दिया ।

कल्लू भीड़ में आगे बढ़कर बोला,--"आज देवी के दरसन सबसे पहले उस्ताद फम्मन की माँ करेगी । इसी लाल का है ऊ । तमाम भीड़ में उससे बड़ा कोई और होय तो ऊ माला उतार लेय ।"

भीड़ थोड़ा पीछे हटी । फम्मन की माँ से बूढ़ा और कोई व्यक्ति आगे नहीं आया । फम्मन की माँ आगे बढ़ गई । उसके हाथों में फूलों की माला थी । एक छोटी-सी सूतन, कमीज और एक पीले गोटे की ओढ़नी थी ।

यह देखकर रूपसिंह और दरोगा जी की त्योरी चढ़ गई । पण्डित संकटमोचन की आँखें भी लाल हो गईं । उनका चेहरा तमतमाने लगा ।

पण्डित संकटमोचन आगे बढ़कर बोले,--"ये नीचन जाति के लोग आज देवी के मन्दिर में कैसे आये ? मैं दरवाजा बन्द करता हूँ मन्दिर का । खबरदार जो किसी ने भी मन्दिर में प्रवेश किया ।"[1]

लेखक का हरिजनों के ऊपर धार्मिक अत्याचार के प्रति सुधारवादी दृष्टिकोण है । वह हरिजनों को मन्दिर में प्रवेश कराने में सफल होता है । लेखक विद्यासागर के रूप में मानो अपनी बात कह रहा हो, "पण्डित जी होश क्या है आपको? जेल जाने की ठानी है क्या ? मालूम नहीं है आपको कि

---

१. यज्ञदत्त शर्मा : "सीधा रास्ता" (१९५८ई०), पृ०सं० ८८ ।

आज किसी को नीच जाति कहना अपराध है। जैसे रुक्मा और माते सैय ने आप हैं, वैसे ही तो ये सब भी हैं। आपमें क्या विशेषता है जो इनमें नहीं है?[1]" विद्यासागर के प्रयत्न से ही रमाळपुर के देवी का मंदिर मनुष्य मात्र के लिए खुल जाता है तथा आस-पास के देहातों में यह महान क्रान्ति के समान है।

हरिजनों को मंदिर में न घुसने देना तो सामाजिक अपराध है। भारत की स्वाधीनता के बाद अस्पृश्यता विरोधी कानून आ गये हैं। 'कर्मभूमि' (१९३२ई०) में तथा मनुष्यानन्द' (१९३५ई०) उपन्यासों में हरिजन वर्ग संगठित होकर संघर्ष करते हैं तथा विजय प्राप्त करते हैं, उसी प्रकार 'चौथा रास्ता' (१९५८ई०) में भी विद्यासागर के नेतृत्व में हरिजन वर्ग मंदिर-प्रवेश के लिए सवर्णों से मोर्चा लेता है। प्रस्तुत उपन्यास में हरिजनों की संगठित शक्ति के कारण पुरोहित तथा सवर्ण हिन्दुओं को हारना पड़ता है तथा हरिजनों की विजय होती है। 'कर्मभूमि' (१९३२ई०) उपन्यास में तो संघर्ष में कई व्यक्ति मारे जाते हैं, पर शर्मा जी ने इस उपन्यास में सवर्णों तथा हरिजनों के बीच संघर्ष को बचा लिया है। शायद शर्मा जी पर गांधीवाद का प्रभाव है, इसीलिए संघर्ष को उन्होंने टाल दिया है। 'चौथा-रास्ता' (१९५८ई०) उपन्यास में हरिजनों को मन्दिर-प्रवेश पर रूढ़िवादी दल हंगामा मचाता है। धर्मात्माओं के लिए इससे बढ़कर

---

१. यज्ञदत्त शर्मा : 'चौथा रास्ता' (१९५८ई०), पृ०सं० ८६।

अनर्थ क्या हो सकता है कि हरिजन वर्ग मंदिर में उसको आकर छुए तथा प्रसाद को प्राप्त करे। इस उपन्यास में भी पुरोहित वेंकटमोहन क्रोध प्रकट करता है, पर वह हरिजनों को मारता नहीं है। कल्लू कड़क कर कहता है,--" ओ वेंकटमोहन पण्डत! जरा जुबान संभाल के बोल और देवी के दुवारे से दूर हट जा। देवी सारे गाम की है। ठेकेदार नांय है देवी का।" इस बर्बरता का मानो स्वयं शर्मा जी आक्रोश भरे शब्दों में विद्यासागर के माध्यम से नये युग के विद्रोही स्वर में धनी, पढ़े-पुरोहित वर्ग को चेतावनी देते हैं," गांव के पुराने और सभ्य व्यक्तियों से मैं प्रार्थना करूंगा कि वे समय की बदलती हुई हवा को पहचाने और उसी के साथ अपने को बदलते हुए आगे बढ़ते चलें।"[2]

"प्रतिक्रिया" (१९६१ई०) उपन्यास में हरिजनों के ऊपर धार्मिक अत्याचार का भी चित्रण मिलता है। केशव तथा माधव, मुरलीधर आदि हरिजन लोग मंदिर में हरिजनों की सभा करना चाहते हैं, पर जयराम जैसे सवर्ण हिन्दू लोग उन्हें सभा नहीं करने देते हैं। सवर्ण हिन्दू लोग किस प्रकार हरिजनों का धार्मिक शोषण करते हैं? इसका चित्रण "प्रतिक्रिया" (१९६१ई०) उपन्यास में मिलता है। लेखक लिखता है,--"गये शंकर विद्यार्थी की अदालत के पहले इस मन्दिर में केवल धार्मिक नेताओं, साधुओं और महात्माओं के भाषण

---

१. यादवेन्द्र शर्मा : "चौथा रास्ता" (१९५८ई०), पृ०सं० ८८।

२. वही, पृ०सं० ८९।

कीर्तन आदि होते थे । युग की आवश्यकता के अनुसार अब यह हिन्दुओं का मोर्चा बन गया था । यहाँ तक तो ठीक था, पर मन्दिर में केवल अछूतों की सभा और सो भी स्पष्ट रूप से सवर्ण हिन्दुओं का विरोध करने के लिए, इससे लोगों में बड़ी उत्तेजना फैली, यहाँ तक कि पशुपति जो इन दिनों अछूतों के पक्ष का बहुत जबर्दस्त प्रतिपादक बन गया था, वह भी क्षुब्ध हो गया ।[1] पशुपति हरिजनों के मन्दिर-प्रवेश को नहीं चाहता है । पशुपति, माधव तथा मुरलीधर हरिजन से कहता है,-- 'तुम जो इसप्रकार मन्दिर के अन्दर केवल अछूतों की सभा करने चाहते हो, यह उचित नहीं है । इसका बड़ा विरोध हो रहा है । माधव मानो इसके लिए तैयार था । बोला-- पहले तो मन्दिर केवल सवर्ण हिन्दुओं की सम्पत्ति हुआ करते थे, पर अब तो यह मन्दिर सब के लिए खुल गया है । फिर यह प्रतिबन्ध क्यों ?

पशुपति नाराज होता हुआ बोला -- प्रतिबन्ध नहीं है, पर जिस व्यक्ति को अधिकार मिलता है, वह स्वयं अपने ऊपर प्रतिबन्ध लगाता है । अधिकार के दुरुपयोग से मनुष्य अधिकार से वंचित हो जाता है ।

माधव ने अपने साथी मुरलीधर को आँख मारते हुए व्यंग्य के साथ कहा-- इसके माने यह हुए कि आप हम

---

१. मन्मथनाथगुप्त : 'प्रतिक्रिया' (१९५१ई०), पृ०सं० ३८ ।

लोगों को अधिकार से वंचित करते आए हैं[1]। "जयराम तथा
हरिजनों को मंदिर में घुसने से रोकना चाहते हैं। वह
हरिजनों के विरुद्ध लाठी [illegible] करना चाहता है, इस
पर माधव कहता है,--"मूरखो भाई यह समझते हैं कि लाठी
में हम [illegible] जाएंगे, पर मेरा तो यह कहना है कि हम यदि हार
भी जाएं और हमारे दो-चार जवान खेत भी रह जाएं, तो हम
देख सारा ढोंग खुल तो जाएगा। हम लोगों का यह पता तो
लग जाएगा कि सवर्ण हिन्दू हम अछूतों की शक्ति देखकर हमारे
हाथ में मन्दिर का मुख भरा हुआ भरा लड्डू थमाकर पहले का
शोषण पूर्ववत् जारी[2] रखना चाहते हैं। धर्म और मन्दिर
सबकी कलई खुल जाएगी।" माधव आगे इसी प्रश्न पर कहता है,
--"मैं यहां तो अपने अछूत भाइयों से उस सभा में पूछना चाहता
हूं कि जिन हिन्दुओं ने तुम्हें हजारों बरस से पशुओं की तरह
रखा, जिन्होंने मनुष्य होते हुए भी तुम्हें मनुष्य का अधिकार
नहीं दिया, जिन्होंने तुम्हें शिक्षा और संस्कृति से वंचित
रखा और तुम्हारे श्रम पर भी हजारों वर्ष तक गुलछर्रे उड़ाते रहे,
आज 'तू' कहकर मन्दिर की कठौती मुंह में थमा देने पर क्या तुम[3]
उनके द्वारा शोषित होते रहना और हिन्दू कहलाना पसन्द करोगे?"

---

१. मन्मथनाथ गुप्त : 'प्रतिक्रिया' (१९५१ई०), पृ०सं० २८।
२. वही, पृ०सं० ४०।
३. वही, पृ०सं० ४०।

भारतीय समाज में सवर्णों द्वारा जो धार्मिक अत्याचार हरिजनों पर किया जाता है, उससे माधव हरिजन बहुत दुःखी है। हरिजनों के मन्दिर प्रवेश पर वह कहता है--"मन्दिर-प्रवेश से भी तो आप लोगों को ही फायदा है। अछूत अपनी गाढ़ी कमाई के जो दो-चार पैसे मन्दिर के देवता को चढ़ायेगा, उससे गुलछर्रे कौन उड़ायेगा? उससे कौन वेश्या-गमन करेगा ? किसके घर में उससे घी के दीये जलेंगे ? अछूतों को मन्दिर - प्रवेश का अधिकार देकर इस प्रकार सवर्ण हिन्दू उनसे कुछ ले ही रहे हैं, दे नहीं रहे हैं। आप उन्हें जो अधिकार दे रहे हैं, वह शोषित बने रहने, बल्कि शोषण के नये क्षेत्र में प्रवेश करने का अधिकार-मात्र है।"[1] सवर्ण लोग आखिरकार हरिजनों को हनुमान-मन्दिर में घुसने नहीं देते। फलस्वरूप संघर्ष होता है तथा कुछ लोग घायल होते हैं।

लेखक ने "प्रतिक्रिया" (१९६१८०) उपन्यास में हरिजनों के ऊपर होने वाले धार्मिक अत्याचारों का खुलकर चित्रण किया है। मन्मथनाथ गुप्त चूंकि गांधीवादी हैं, इसीलिए उन्होंने भरसक संघर्ष को टालने की कोशिश की है। लेखक हरिजनों के साथ सवर्णों के संघर्ष को नहीं चित्रित करता वरना उमाशंकर जो कि सवर्ण है, के बेटे प्रभुपति के साथ सवर्णों के संघर्ष को चित्रित करता है। लेखक का हरिजनों के अत्याचार के प्रति सहानुभूतिपूर्ण दृष्टिकोण है तभी तो वह प्रभुपति जैसे सवर्ण हिन्दू द्वारा सवर्णों के अत्याचार का विरोध करवाता है। इससे यह भी स्पष्ट

---

१. मन्मथनाथ गुप्त : "प्रतिक्रिया" (१९६१९८०), पृ०सं० ४२।

हो जाता है कि मन्मथनाथ गुप्त का 'प्रतिक्रिया' (१६६१ई०) उपन्यास में हरिजनों के प्रति दृष्टिकोण उनके उत्थान की ओर ही अधिक रहा है। लेखक ने प्रेमचन्द के 'कर्मभूमि' (१६३२ई०) उपन्यास की भांति उपन्यास में अत्याचार के प्रति सवर्ण तथा हिन्दू दोनों को साथ-साथ करते हुए दिखाया है। यदि गुप्त जी का हरिजनों के प्रति दृष्टिकोण अत्याचारपूर्ण होता तो वे कदापि पशुपति के द्वारा हरिजनों की समस्याओं का समर्थन न करते।

'प्रतिक्रिया' (१६६१ई०) उपन्यास में धार्मिक अत्याचार के प्रति हरिजन पात्रों में पर्याप्त चेतना का विकास मिलता है। हरिजनों का मंदिर में घुसना तो कोई अपराध नहीं है। आखिरकार वे भी तो आदमी हैं, वे भी तो हिन्दू हैं, देवी देवता को मानते हैं तथा उन्हें पूजते हैं। अगर सवर्ण हिन्दू वर्ग उनको मन्दिर में घुसने दे तो वे बेचारे कैसे अपने धार्मिक कार्य को सम्पन्न करें। अगर केशव, माधव, मुरलीधर के नेतृत्व में हरिजन वर्ग इन धार्मिक अत्याचारों के विरुद्ध अपनी आवाज उठाता है तो उसका विरोध नहीं वरन् समर्थन किया जाना चाहिए। माधव तो पशुपति से यहां तक कहता है, "हम जानते हैं कि पुरानी पीढ़ी के बहुत भाई हमारी बात नहीं मानेंगे, इसका कारण यह नहीं है कि उनके मन पर सत्य का रोब छाया हुआ है, बल्कि इसका कारण यह है कि सैकड़ों वर्षों से आपने और जयराम शर्मा ऐसे लोगों ने उनकी आत्मा को इतना अपदस्थ और कुंठित कर रखा है, उनकी आंखों में इस प्रकार से पट्टियां बांध रखी हैं कि सत्य के आलोक का वहां

प्रवेश हो ही नहीं सकता । वे तो घटनाओं और बातों को उसी दृष्टि से देखते हैं जिस दृष्टि से आप उन्हें दिखाते हैं।[१] इससे यह स्पष्ट है कि माधव जैसे पात्र में इतनी सामाजिक चेतना का विकास है कि वह अपने ही पादरी के धर्म की आलोचना करता है । हरिजन के ऊपर तो तरह-तरह के अत्याचार तो सदा से होते रहे हैं । हरिजन वर्ग जब महात्मा गांधी के नेतृत्व में आया तब से वे अपने ऊपर होने वाले अत्याचारों का विरोध करने लगे । इस विषय पर ज़रा गांधी जी के विचार भी जानना चाहिए "मन्दिर में जो मूर्ति है वह भगवान नहीं है, पर चूंकि भगवान हर परमाणु में निवास करते हैं, इसलिए मूर्ति में भी भगवान का निवास है । जब बाकायदा मूर्ति की प्रतिष्ठा की जाती है तो उस मूर्ति के सम्बन्ध में समझा जाता है कि उसे पवित्रता प्राप्त हो गई।" इस वाक्य के एक शब्द से नास्तिकता फांक रही है । जब छुआछूत नहीं मानी गई और मूर्ति-पूजा का आधार उड़ा दिया तो फिर हिन्दू धर्म क्या बाक़ी रहा । गांधी जी आगे कहते हैं,--" मैं ऐसा कहना धर्म का उपहास समझता हूं कि भगवान किसी ऐसे मन्दिर में निवास करते हैं, जिसमें से उसके भक्तों का एक विशेष वर्ग बाहर रहने के लिए मजबूर किया जाता है और इसलिए रामदेव जी ने यह ठीक

---

१. [illegible] ७"
२. मन्मथनाथ गुप्त : "प्रतिक्रिया" (१९६१ई०), पृ०सं० ५१ ।

ही कहा है कि यह मंदिर आज से एक सच्चा मन्दिर होगा, क्योंकि आज से यह हरिजनों के लिए खोल दिया गया ।[1] इससे स्पष्ट हो जाता है कि गांधी जी हरिजनों के मंदिर प्रवेश करने के विरुद्ध नहीं थे । गांधी जी अस्पृश्यता के बारे में कहते हैं,--" यह कोई धर्मोचित नहीं है । यह शैतान की कृति है । शैतान ने सदैव शास्त्रों के प्रमाण दिये हैं, परन्तु शास्त्र भी तर्क तथा सत्य की उपेक्षा नहीं कर सकते । उनका उद्देश्य यह है कि वे तर्क को पवित्र करें तथा सत्य का प्रकाश फैलावें ।[2] मदनमोहन मालवीय का धार्मिक अत्याचार के प्रति निम्न दृष्टिकोण है,--" शास्त्रों के अनुसार देवता के निकट जाने की योग्यता यह है कि मनुष्य के हृदय में भक्ति हो । पद, वर्ण या शिक्षा से इसका कोई सम्बन्ध नहीं है । ईश्वर किसी अपने भक्त को अपने निकट आने से कदापि नहीं रोकेगा तथा मंदिरों के अधिकारियों को यह उचित नहीं है कि वे देवता के पास किसी को जाने से न रोकें । किसी धर्म शास्त्र में यह नहीं लिखा है कि कोई भी व्यक्ति कितना ही निम्न श्रेणी का वह क्यों न हो ? देव-दर्शन से वंचित रखा जाय ।[3] इससे स्पष्ट हो जाता है कि हरिजनों के ऊपर किसी प्रकार का धार्मिक अत्याचारों को न तो करना चाहिए और न करने देना चाहिए । अतः साथ ही साथ स्वतः यह भी स्पष्ट हो

---

१. तेंदुलकर, जिल्द ३, पृ०सं० २५८ ।

२. 'सरस्वती', जनवरी ३०, पृ०सं० १०३ ।

३. वही, पृ०सं० १०४ ।

जाता है कि केशव तथा माधव को सवर्ण लोग मन्दिर में सभा नहीं करने देना चाहते, यह नितान्त तथा असंगत बात है । केशव तथा माधव के नेतृत्व में हरिजनों का धार्मिक अत्याचारों के विरुद्ध संघर्ष करना इस बात का परिचायक है कि हरिजनों में अब इन अत्याचारों के प्रति विद्रोह प्रकट करने के लिए संघबद्ध एकता आ गई है । `प्रतिक्रिया`)१९६९ई०) उपन्यास में जिस तरह हरिजन लोग अपने ऊपर होने वाले अत्याचार का विरोध करते हैं, इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि हरिजन वर्ग कुछ समय बाद अपनी दासता से मुक्त हो जायगा । गांधी जी का तो यहां तक विचार था कि ` जब तक कोई मन्दिर वाचांडाल ब्राह्मण तक सबके लिए खुल न जाए, तब तक उस मन्दिर का बायकाट करना चाहिए ।`[१] यह तो स्पष्ट है ही कि `जो लोग छुआछूत दूर करने में विश्वास करते हैं, उन्हें ऐसे मंदिरों में न जाना चाहिए,जो हरिजनों के लिए नहीं खुले हैं ।`

चतुरसेन शास्त्री के `सुमदा`(१९६१ई०) उपन्यास में हरिजन पात्र रासमणि(कैवट) के ऊपर अत्याचार का चित्रण मिलता है । रानी रासमणि काशी जाकर बाबा विश्वनाथ का दर्शन करना चाहती है, पर चूंकि वे हरिजन हैं,इसीलिए ब्राह्मण वर्ग उन्हें दर्शन करने नहीं देता है । बंगाल में ब्राह्मणों का श्रेष्ठत्व और जाति-पांति का अहंकार बहुत था, उसी का प्रभाव रानी रासमणि पर भी पड़ता है,` रानी की बड़ी अभिलाषा थी कि वह काशी जाकर श्री विश्वनाथ

---

१. मन्मथनाथ गुप्त : `सागर संगम`(१९६१ई०),पृष्ठांक २१३ ।

का दर्शन करे । इसके लिए उन्होंने बहुत भारी रकम रख छोड़ी थी । परन्तु उस समय बंगाल का कोई निष्ठावान ब्राह्मण उनके साथ जाकर उन्हें विश्वनाथ जी के दर्शन कराने को राजी नहीं हुआ ।"[1]

रानी को विश्वनाथ जी का दर्शन न करने देना तो सामाजिक, धार्मिक दृष्टि से उचित नहीं प्रतीत होता है । लेखक ने रानी में साहस का भाव निरूपित किया है । ० रानी अपने ऊपर होने वाले इस अत्याचार का बदला एक अलग मन्दिर स्थापित करके लेता है । पर चूंकि वे जाति की कैवट थीं, इसलिए प्रतिष्ठा के लिए कोई ब्राह्मण नहीं मिला । मन्दिर स्थापित करने पर भी उनका (रानी का) शूद्रत्व कम नहीं होता । लेखक लिखता है,--"कैसी अद्भुत बात थी कि इस धर्मप्राण, चरित्रवती रानी का शूद्रत्व तनिक भी कम न होता था । वे शूद्रा थीं, अछूत थीं । उनके प्रतिष्ठित देवता भी ब्राह्मणों के लिए अस्पृश्य थे । इन दिनों बंगाल में छूत-छात और जातपांत का ऐसा ही असाध्यरोग चलरहा था ।"[2] लेखक हरिजनों के सम्बन्ध में ब्राह्मण के मुख से कहलवा देता है कि ब्राह्मण अधम है तथा रानी पवित्र है । ब्राह्मण कहता है,--" जो आत्मा मेरे अन्तर वास करती है, वही आपके अन्तर में भी है । अन्तर इतना ही है कि आप धर्मात्मा तथा पवित्र हैं और मैं अधम हूं ।"[3] ब्राह्मण के रूप में

---

१. चतुरसेन शास्त्री : 'शुभदा'(१९६१ई०),पृ०सं० १९७ ।

२. वही, पृ०सं० १९८ ।

३. वही, पृ०सं० २०२ ।

लगता है कि लेखक अपने विचारों को प्रकट कर रहा हो, ब्राह्मण तो सदा सत्य बोलता है । मैंने भी सत्य कहा है । मैंने आपके सम्बन्ध में सब बातें सुनीं । ब्राह्मणों ने आपका कितना तिरस्कार किया यह भी सुना । जाति-अभिमान में ये मूढ़ अच्छे और बुरे और धर्माधर्म का विचार भी खो बैठे हैं । फिरंगी लोग इनके सिर पर पैर रखकर जो शासन चला रहे हैं, वह इन ब्राह्मणों को बाल नहीं खलता । उन्हें भाई बाप बनाते इनको लज्जा नहीं आती । जिस दिन नैष्ठिक ब्राह्मण नन्दकुमार को कलकत्ता में फांसी दी गई, तब ये ब्राह्मण और इनके शास्त्र कहां चले गए थे । इन्होंने शाप देकर अंग्रेजों को क्यों नहीं भस्म कर दिया ? ये ढोंगी पाखण्डी, मूर्ख घमण्डी ब्राह्मण एक धर्मात्मा रानी का ही नहीं, देवता का भी तिरस्कार करने में नहीं शर्माए । आप जाति से शूद्र हैं, इसलिए आप द्वारा प्रतिष्ठित देवता का पूजन-नमन भी ये करेंगे ? मैं चाहता हूं कि मैं इन सब ब्राह्मणों को गोली से उड़ा दूं और हिन्दू धर्म को इनकी दासता से मुक्त कर दूं ।[1] मैं भी कहता हूं कि ब्राह्मणों को कोई हक नहीं है कि वे किसी को मन्दिर में न आने दें । जो व्यक्ति अपने हृदय के अन्दर कुत्सित विचारों को धारण करता है, वह ब्राह्मण होते हुए भी शूद्र के समान है । जिसने

---

१. चतुरसेन शास्त्री : 'शुभदा' (१९६४ ई०), पृ०सं० २०२ ।

व अपना इन्द्रियों को वश में करके वासना से मुक्ति पा ली हो और जो सब बन्धनों से मुक्त, वीतराग शांत महात्मा हो, वही ब्राह्मण है। दक्षिणा के लोभ में निमन्त्रण खाने वाले पेटू ब्राह्मण थोड़े ही हैं, ब्राह्मण के रूप में ठग हैं। ऐसे ब्राह्मणों को रानी के मन्दिर का बहिष्कार करने का अधिकार भी नहीं है।

(घ) <u>मध्यकाल के निम्नवर्ग के द्वारा तथाकथित ब्राह्मण वर्ग की आलोचना</u>

हमारा मत है कि मनुष्य जन्मतः शूद्र रहता है। वह संस्कार से ही ब्राह्मण, क्षत्रिय या वैश्य बनता है। यदि वह वेदाध्यायी है तो ही उसे विप्र कहना चाहिए और ब्राह्मण तो उसे ही माना जा सकता है, जिसने आत्मा के स्वरूप या ब्रह्म को पहचान लिया है अर्थात् गुण तथा कर्म के आधार पर ही कोई व्यक्ति बन सकता है। दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि हमारी वर्ण-व्यवस्था कर्मानुसारिणी थी। जन्म के आधार पर अस्पृश्यता यहां नाम की भी न थी। गुणों के आधार पर ही समाज का संचालन होता था। ज्ञानवान व शूद्र ब्राह्मण से श्रेष्ठ और विगताचार ब्राह्मण शूद्र से हीन समझा जाता था। अस्पृश्यता की दुहाई देकर ऊंच नीच का समर्थन करना कितना गलत है?

प्राचीन समय में ऋषि-मुनि आदि लोगों को ब्राह्मण की संज्ञा दी जाती थी, जो कि उचित भी था। आगे चलकर ब्राह्मण वर्ग में अनेक दुर्गुणता व्याप्त हो गई। कर्मों पर महत्व न देकर जन्म को महत्व दिया गया। अतः ब्राह्मण वर्ग की आलोचनाएं की जाने

लगा । एक ओर जब वेदों के कर्मकाण्ड का बोलबाला था तो दूसरा ओर व्रात्य लोग भी थे जो वेदों की तिल बराबर भी परवाह नहीं करते थे । वह अपना सहज स्वच्छन्द जीवन बिताते थे, अतः प्रागैतिहासिक काल से ही भारतीय संस्कृति के दो स्थूल विभाजन हो गये थे-- वेदनिहित तथा वेद बाह्य । आगे चलकर जैन तथा बौद्ध धर्म में वेद विरोधी स्वर जोर पकड़ने लगा । हरिजन वर्गों ने भी ब्राह्मणों के कर्मकाण्डों का खण्डन किया है । मध्यकाल में तो अनेक हरिजन संत हुए जैसे कबीर(१३९९-१५१८ई०), नामदेव (१५वीं शताब्दी का दूसरा भाग) नाभा स्वामी (१६००ई० के लगभग), रैदास (१५ वीं शताब्दी के अन्त से लेकर १६ वीं शती के मध्य तक),कुबा जी (१६००ई० के आस पास) आदि । इन्हीं जैसे अन्य सैकड़ों हरिजन संतों और भक्तों ने जो कुछ भारत का उपकार किया है, वह अनवद्य और वाक् के अगोचर है । इनमें कबीरदास जी ही ऐसे हरिजन संत हैं, जिन्होंने अपने पदों में ब्राह्मणों के कर्मकाण्डों का खण्डन-मण्डन किया है ।

कबीर का समय १३९९-१५१८ई० तक माना जाता है । संत साहित्य के प्रवर्तक भी यही कहे जाते हैं । कबीर के ऊपर नाथ और सिद्धों की विचारधारा का पूर्ण प्रभाव मिलता है । कबीर जाति के जुलाहे थे जैसे 'जल जल क्यों हरि मिलिआ त्यों हरि मिला जुलाहा ।'[1]

---

१. पारसनाथ तिवारी (सम्पा०) : 'कबीर वाणी सुधा' (१९७०ई०) पृष्ठ० २९, पद संख्या ६५ ।

अर्थात् जैसे जल ढुलक कर जल में मिल जाता है, वैसे ही जुलाहा(कबीर) भी ढुलक कर (अपने मूल अंश राम में) मिल गया। कहते हैं कि,:--

'बेद कतेब इफतरा भाई दिल का फिकरु न जाइ ।[1]
टुक दम करारी जउ करहु हाजिर हजूर खुदाइ ।'

अर्थात् हे भाई, वेद और कुरान झूठे कलंक हैं, इनसे हृदय की चिन्ता दूर नहीं होगी । यदि थोड़ा हिम्मत बांधो तो खुदा तुम्हारे समक्ष ही वर्तमान मिलेगा ।

पंडितों की आलोचना करते हुए कहते हैं,--

'जौ तुम्ह पंडित और बधि जांनौं अंति तऊ मरनां ।
राज पाट अरु छत्र सिंघासन बहु सुंदरि रमनां ।'[illegible]

अर्थात् हे पंडित, यदि तुम शास्त्र वेद(अथवा भविष्य) और विद्या व व्याकरण जानते हो, तंत्र-मंत्र और सब औषधियां जानते हो, तब भी अन्त में तुम्हें मरना है ।

कबीर ने आगे कहा है,--

'बेद पढ़ंता बांभन मारा ।'[3]

---

१. डा० पारसनाथ तिवारी : 'कबीर वाणी सुधा' (१९७०ई०), पृ०सं०७, पद सं० २३

२. वही, पृ०सं० ६, पद सं० २८ ।

३. वही, पृ०सं० १४, पद सं० ५१ ।

अर्थात् (माया को सम्बोधित करते हुए) तुने वेद पढ़ते ब्राह्मण को मारा ।

सामाजिक शोषण, अनाचार और अन्याय के विरुद्ध संघर्ष में आज भी कबीर का काव्य एक तीखा अस्त्र है । कबीर से हम रूढ़िगत सामन्ती दुराचार और अन्यायी सामाजिक व्यवस्था के विरुद्ध डटकर लड़ना सीखते हैं और यह भी सीखते हैं कि विद्रोही कवि किस प्रकार अन्त तक शोषण के दुर्ग के सामने अपना माथा ऊंचा रखता है ।[1]

नामदेव की कविताओं में हमें पंडित वर्ग के ऊपर आलोचना नहीं प्राप्त होती । नामदेव जाति के छीपी थे तथा उनका समय १५ वीं शती का दूसरा भाग माना गया है ।

नाभा स्वामी (१६००ई० के लगभग वर्तमान) जाति के डोम थे । भगवान् की भक्ति में जात-पांति का कोई झगड़ा नहीं है । कम से कम 'भक्तमाल' (१५८५ई०) में जात-पांति की किसी विषमता नहीं मिलती है । मंगलाचरण से ही यह बात स्पष्ट हो जाती है ।

रैदास भी जाति के चमार थे तथा उनका समय (१५ वीं शती के अन्त से १६ वीं शती के मध्य तक) माना जाता है। नाभा स्वामी ने रैदास के लिए लिखा है:-

---

१. प्रकाशचन्द्र गुप्त : 'हिन्दी साहित्य की जनवादी परम्परा' डा० रामजीलाल सहायक द्वारा कबीर-दर्शन, पृ० ४३ पर उद्धृत ।

'वर्णाश्रम अभिमान तजि, पद-रज बन्दहिं जासु की ।
सन्देह-ग्रन्थि खण्डन निपुन, बानी विमल रैदास की ।[1]'

-- नाभा स्वामी

रैदास जी वेद पुरान के लिए कहते हैं,--

'कर्म अकर्म विचारिए, शंका सुन वेद-पुरान ।
संसा रूद हिरदे बसै, कौन हरै अभिमान ।।[2]'

इसके अतिरिक्त पंडितों के ऊपर खण्डन-मण्डन उनकी कविताओं में नहीं प्राप्त होता ।

कुंभा कुम्हार का पता 'भक्तमाल' (१५८५ई०) से पता चलता है । उनकी वाणियां अब प्राप्य नहीं हैं ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि मध्यकाल में संतों व भक्तों का आविर्भाव हुआ।पर पर अब्ब उनमें कबीर ने ही पंडितों के कर्म काण्डों की आलोचना की है । मध्यकाल में अन्य हरिजन संतों के द्वारा ब्राह्मण वर्ग की आलोचना नहीं प्राप्त होती है । इसका कारण यह ह भी है कि अनेक संतों व भक्तों की वाणियां अब विलुप्त प्राय: हैं । आवश्यकता है कि इनकी वाणियों का पता लगाया जाय तभी इस दिशा में कार्य आगे हो सकता है, अन्यथा नहीं ।

-0-

---

१. किशोरीदास वाजपेयी : 'वर्ण-व्यवस्था और अछूत',पृ०सं०३४ ।
२. वही, पृ०सं० ३८ ।

अष्टम अध्याय

-0-

उपसंहार

(क) निष्कर्ष ।

(ख) स्वतन्त्र भारत का संविधान ।

(ग) वर्तमान सरकार के द्वारा प्रोत्साहन ।

अष्टम अध्याय

-o-

उपसंहार

(क) निष्कर्ष

वर्णाश्रम व्यवस्था प्राचीनकाल से ही हिन्दू समाज की विशेषता और आधार रही है । इस व्यवस्था के अनुसार समाज को चार वर्णों-- ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र में विभाजित किया गया है । वर्ण-व्यवस्था इतनी प्राचीन है, जितना कि ऋग्वेद । वर्ण-व्यवस्था की उत्पत्ति के सम्बन्ध में प्राचीनतम व्याख्या ऋग्वेद के दशम मण्डल के पुरुष सूक्त में मिलती है । जिसमें कहा गया है कि ब्राह्मण विराट्-पुरुष के मुख से, क्षत्रिय भुजाओं से, वैश्य जंघाओं से और शूद्र पैरों से उत्पन्न हुए । यह व्याख्या स्पष्टतः शाब्दिक न होकर आलंकारिक है । इसमें समाज की विराट् पुरुष के रूप में कल्पना की गई है, जिसके चारों वर्ण अंग हैं । इस व्याख्या से एक ओर तो चारों वर्णों की स्थिति का पता चलता है तो दूसरी ओर प्रत्येक वर्ण के कर्तव्यों के विषय में भी संकेत मिलता है ।

समाज का मस्तिष्क ब्राह्मण वर्ग ही होता है । समाज इन्हीं के द्वारा सोचता है, इन्हीं के द्वारा बोलता है और

उन्हीं के नेतृत्व में सन्मार्ग पर चलता है । क्षत्रिय समाज पुरुष की भुजायें थे । जिस प्रकार भुजायें शरीर की रक्षा करती हैं, उसी प्रकार उनका कर्तव्य बाह्य तथा आन्तरिक शत्रुओं से समाज की रक्षा करना था । जिस प्रकार शरीर का भार जंघायें वहन करती हैं,उसी प्रकार समाज पुरुष का भार तीसरा वर्ग वैश्य धारण करता था । समाज की आर्थिक अवस्था और व्यवस्था का दायित्व इसी वर्ग पर था । वैश्य का कर्तव्य था कि वह कृषि,पशु-पालन और व्यापार की ओर ध्यान दें और सूद पर धन दें । ये तीनों वर्ण द्विज कहे जाते थे । इनको उपनयन कराकर वेद आदि के अध्ययन तथा यज्ञों के करने का अधिकार था । इस प्रकार ये तीनों वर्ण आर्य संस्कृति के प्रहरी थे । इनके विपरीत चौथा वर्ण शूद्र-- इन तीनों वर्णों की सेवा करने के लिए था । उसकी समाज-पुरुष के पैरों से उत्पत्ति की कल्पना की गई । इसका तात्पर्य है कि जिस प्रकार शरीर में पैर है, उसी प्रकार समाज में शूद्र हैं । हिन्दुओं को चार वर्णों में विभाजित करके ऐसी परिस्थितियां उत्पन्न करने चेष्टा की गई, जिनकी सहायता से प्रत्येक व्यक्ति अपने कर्म का पालन करते हुए चरम लक्ष्य की ओर बढ़ सके ।

वर्तमान समय में समूचे देश में सहस्रों जातियां और उपजातियां मिलती हैं, जिनकी गणना हरिजन वर्ग के अन्तर्गत की जाती है । हरिजन वर्ग की कुछ जातियों के नाम को देखने से स्पष्टत: पता चलता है कि कई जातियों ने एक ही वर्ग से निकल कर अलग-अलग नाम धारण कर लिए तथा उस नाम से एक जाति की स्थापना हुई ।

हम कह सकते हैं कि जटिया,जाटव, अहरवार, जैसवार, कुरील, व रैदास, रविदासी आदि नाम चमार वर्ग के नाम से बचने के लिए ही रखे गये हैं । किस आधार पर कौन सी जाति हरिजन मानी जाये ? इसके लिए एक कसौटी तैयार की गई तथा यह तय किया गया कि जिन वर्गों की दशा मिलती-जुलती हो उन्हें परिगणित जाति माना जाये । निम्नलिखित प्रश्नों के रूप में कसौटी तैयार की गई--

(१) क्या वह वर्ग ब्राह्मणों के द्वारा शुद्ध माना जाता है ?

(२) क्या नाई,दर्जी,सक्के, बावर्ची, कहार आदि उस वर्ग के लोगों की सेवा कर देते हैं ?

(३) क्या निम्न कहे जाने वाले लोग उच्च कहे जाने वाले लोगों से मिल पाते हैं ?

(४) क्या उन वर्गों के हाथ का पानी दूसरे उच्च वर्गों के द्वारा पी लिया जाता है ?

(५) क्या उस वर्ग के लोग सार्वजनिक स्थानों,कुओं,सड़कों, किश्तियों तथा स्कूलों में जा पाते हैं ?

(६) क्या इस वर्ग के लोग मंदिर तथा पूजाघरों में जा पाते हैं ?

(७) क्या एक सी योग्यता का व्यक्ति एक सा सम्मान पाता है ?

(८) क्या निम्न कहा जाने वाला वर्ग स्वयं निम्न बन गया है या बनाया गया है ?

(९) क्या उनका पेशा घृणित है या समाज के द्वारा घृणित बना दिया गया है ?

इस कसौटी के अनुसार जातियों की जो सूची तैयार की गई तथा उन्हें ही निम्न, अछूत अन्त्यज पतित, दलित, परिगणित और हरिजन जाति आदि नामों से पुकारा गया ।

महात्मा गांधी ने अन्त्यजों के कहने पर अछूतों को 'हरिजन' नाम दिया । 'हरिजन' शब्द का प्रयोग उन्होंने ६-८-१९३१ई० को 'नवजीवन' (साप्ताहिक पत्रिका) में किया है । गांधी जी के अनुसार 'हरिजन' शब्द का अर्थ 'हरिजन' अर्थात् जो हरि का भक्त हो , है । गांधी जी ने कहा, जिस प्रकार 'कालीपरज' शब्द मिटकर 'रानीपरज' हो गया, उसी प्रकार हरिजन भी नाम व गुण से हरिजन बनें ।

संस्कृत साहित्य में 'हरिजन' शब्द अधिक तो नहीं मिलता, पर शूद्र शब्द मिलता है । यजुर्वेद, गीता, नृसिंह पुराण मत्स्य पुराण आदि में 'शूद्र' शब्द का उल्लेख मिलता है । स्मृतियों में भी जैसे याज्ञवल्क्य सम्वर्त (वेद) व्यास, आपस्तम्ब स्मृति आदि में शूद्र शब्द प्रयोग हुआ है । अन्यान्य पुराण में हमें 'हरिजन' शब्द नहीं प्राप्त होता । हिन्दी साहित्य के इतिहास में हमें एक लम्बी धारा देखने को मिलती है । आदिकाल में हमें 'हरिजन' शब्द का उल्लेख नहीं मिलता है । 'हरिजन' शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग मध्यकाल के भक्ति-काल के निर्गुणशाखा के सन्त मत के प्रवर्तक कबीर (१३९९-१५१८ई०) की रचनाओं में मिलता है । अन्य संत कवियों में रैदास (१५वीं शती के अन्त से १६ वीं शती के मध्य तक) तथा गुरु नानक (१४६९-१५३९ई०)

ने `हरिजन` शब्द का प्रयोग किया है ।

रामकाव्य-परम्परा में तो तुलसीदास (१५३२-१६२३ई०) तथा केशवदास (१५५५-१६१७ई०) के अतिरिक्त अन्य कवि हुए । जैसे कृष्णदास, पयहारी, अग्रदास, प्राणचन्द्र, (रामायण महानाटक १५१०ई०), हृदयराम(भाषा-हनुमन्नाटक, १६२३ई०) आदि, पर तुलसीदास ने रामचरितमानस के बालकांड में `हरिजन` शब्द का प्रयोग किया है । रामकाव्य-परम्परा में ही नाभादास(१६००ई० के लगभग) ने `भक्तमाल` (१५८५ई०) में `हरिजन` शब्द का प्रयोग किया है ।

कृष्ण-काव्य-परम्परा में भी अनेक कवि हुए । जैसे -- सूरदास(१४७८-१५८०ई०), नन्ददास(१५३३-१५८६ई०), सेनापति (१५८९ई०), हित हरिवंश, रसखान(१५१८-१६१८ई०), नरोत्तमदास (१५४५ई०), मीरां(१५०३-१५४६ई०) आदि पर मीरां तथा सेनापति ने ही `हरिजन` शब्द का उल्लेख किया है ।

आधुनिककाल में मुसलमान कवियों की काव्य-साधना को देखकर भारतेन्दु हरिश्चन्द्र (१८५०-१८८५ई०) ने कहा :--

`इन मुसलमान `हरिजनन` पै कोटिक हिन्दू वारिए ।`

महात्मा गांधी जी के अनुसार हिन्दुस्तान के चार करोड़ हरिजनों के समान असहाय कौन हैं ? यदि किसी को भगवान् की सन्तान कहा जा सकता है तो वह केवल हरिजन को ही । डा० राजेन्द्र प्रसाद के अनुसार `हरिजन` मनुष्य मात्र है या कोई नहीं ।

उनके अनुसार `हरिजन` शब्द का कोई विशेष अर्थ नहीं मालूम होता । मुल्कराज आनन्द के अनुसार `हरिजन` परमात्मा की संतान है,किन्तु समाज उनको उचित स्थान नहीं देता । डा० रामजीलाल सहायक के अनुसार `हरिजन` हरि का भक्त है । वे `हरिजन` शब्द उसी अर्थ में प्रयुक्त करते हैं,जैसा कि गांधी जी ने प्रयोग किया है । इस प्रकार हम देखते हैं कि प्राचीनतम रूप में `हरिजन` शब्द का जो अर्थ था, वर्तमान युग में उसका रूप बदल गया है । अब `हरिजन` शब्द का प्रयोग सभी अनुसूचित जातियों के लिए ही होता है ।

हमारे समाज को चार वर्णों में बांटा गया और उसमें शूद्रों का कर्तव्य अन्य तीन द्विज वर्णोंकी सेवा करना है । हरिजनों की स्थिति प्रारम्भ से ही दयनीय रही है । युद्ध की परिस्थितियों के कारण आर्य जाति ने श्रम-विभाजन को प्रोत्साहित किया तथा कर्म के अनुसार चार वर्णों की व्यवस्था की । वर्ण तथा आश्रम-व्यवस्था शुद्ध स्वरूप महाभारत काल तक चला । बुद्ध के समय गरीब लोगों को दास शूद्र अनाथ आदि नाम दिया गया । अशोक के समय जाति-पांति का तूफान खड़ा हुआ । मुस्लिम वंश के समय हरिजनों को अस्पृश्य,अछूत तथा नीच नाम दिया गया । आगे इनको अछूत कहकर पुकारा जाने लगा । मध्यकाल में ज्योतिरीश्वर कवि शेखराचार्य ने हरिजनों की गणना `मन्द व जाति` के अन्तर्गत किया है । मुगल साम्राज्य के पतन के बाद फ्रांस,पुर्तगाल और अंग्रेज वाले आये ।अंग्रेजों ने चालाकी से समूचे देश पर कब्जा किया । चमड़े का काम, चमड़ा सिझाना, हल जोतना, घास छीलना आदि कार्यों को नीच कार्य कहा गया तथा इनके करने वाले को हरिजन समझकर उनके साथ छूत-छात का बर्ताव किया गया । इस प्रकार अंग्रेजी सल्तनत में हरिजनों की दशा निम्न ही थी ।

उनके सभी अधिकार छिने हुए थे । उन्हें मंदिरों पर जाने नहीं दिया जाता था । जमींदारों के यहां बेगार करनी पड़ती था । हरिजनों की दशा भारत के स्वतंत्र होने के बाद शुद्ध होती गई । कांग्रेस सरकार के द्वारा उनकी दशा सुधारी गई । आज भी कांग्रेस सरकार इनकी दशा सुधारने के लिए प्रयत्नशील है । नवयुग हरिजनों के लिए वरदान बन गया है । अबवे सब के समान राजनीति में भाग ले सकते हैं । ग्रामग्राम में भी अब कोई छूत-छात का बर्ताव नहीं होता । उन्हें अब दूसरों के यहां बेगार भी नहीं करनी पड़ती । वे मंदिरों में भी बेरोकटोक जा सकते हैं । वर्तमान युग हरिजनों के लिए बहुमुखी उन्नति का युग है ।

अनेक समाज-सुधारवादी आन्दोलन भी हुए हैं, जैसे-- ब्रह्म समाज, आर्य समाज और प्रार्थना समाज आदि इन सब के द्वारा भी हरिजनों की स्थिति सुधारने की चेष्टा की गई ।हरिजनों को सबसे अधिक आर्य समाज ने प्रभावित किया । आर्य समाज के संस्थापक प्रवर्तक महर्षि दयानन्द को सबसे बड़ा कष्ट इस बात का था कि मनुष्य ही मनुष्य का शत्रु है । मनुष्यों में परस्पर शोषणवृत्ति है ।ऊंच-नीच की भावना है । हरिजनों तथा सवर्णों के बीच भेद-भाव की खाई है । दयानन्द ने इस दुर्भावना पर कुठाराघात किया ।दयानन्द तथा आर्यसमाज के ने हरिजनों की उन्नति के लिए महान प्रयत्न किए । अन्धविश्वास,ऊंच नीच एवं अत्याचार के विरुद्ध अनेक आंदोलन चलाए । आज भी आर्य समाज अत्याचार के विरुद्ध जागरूक है । वैसे

ब्रह्म समाज ने भी हरिजनों के उत्थान में योग दिया । इसके अतिरिक्त प्रार्थना समाज, थियोसोफिकल सोसायटी, रामकृष्ण मिशन और विवेकानन्द, रामकृष्ण परमहंस ने भी हरिजनों के उत्थान में बहुत योगदान दिया ।

उन्नीसवीं शती के धार्मिक समाज सुधारवादी आंदोलन के कारण भारत के हरिजनों में नवचेतना का संचार हुआ । इसका प्रभाव यह हुआ कि हरिजनों की उदासीनता का अन्त हो गया, उनमें पुन: आत्मगौरव का संचार हुआ । इस आन्दोलनों से हरिजनों में सामाजिक चेतना का विकास हुआ । सामाजिक क्षेत्र में इस आन्दोलन के परिणाम-स्वरूप हरिजन वर्ग की अनेक कुरीतियां दूर हो गईं । अछूतोद्धार जैसे स्वस्थ आन्दोलनों को बल मिला । इन सभी परिस्थितियों का हिन्दी उपन्यास में चित्रण मिलता है । प्राय: सभी उपन्यासकारों पर इन समाज - सुधारवादी आन्दोलनों का प्रभाव स्पष्टत: देखने को मिलता है । बीसवीं शती के प्रारम्भिक उपन्यासकारों के सामाजिक दृष्टिकोण एवं तत्कालीन सामाजिक चेतना में व्यापक अन्तर दिखाई देता है । ऐसा प्रतीत होता है कि प्रारम्भिक उपन्यासकार कई कदम पीछे हैं । बीसवीं शती के प्रारम्भिक उपन्यासकारों के बाद की स्थिति में परिवर्तन हुआ है । उन्होंने हरिजनों के सुधार पर ही अधिक बल दिया है । ज्यादातर उपन्यासकारों ने हरिजनों के उत्थान को ही चित्रित किया है । कुछ उपन्यासकार ऐसे हैं, जो संकीर्णवादी हैं । वे पुरातन परम्परा को ही महत्व देते हैं । सुधारवादी उपन्यासकारों में प्रेमचन्द, वात्स्यायन,

वृन्दावनलाल वर्मा, भगवती चरणवर्मा, मन्मथनाथ गुप्त, रामचन्द्र तिवारी और वैजनाथ गुप्त आदि प्रमुख हैं । संकीर्णतावादी उपन्यासकारों में लज्जाराम शर्मा ,विश्वम्भरनाथ शर्मा कौशिक, रामगोविन्द मिश्र, शिवपूजन सहाय, कमल शुक्ल, रामप्रसाद मिश्र और डा० सुरेश सिनहा आदि प्रमुख हैं ।

हिन्दी उपन्यासों में हरिजनों की सामाजिक स्थिति पर विचार करते हैं तो पता चलता है कि बीसवीं शती के आरम्भिक उपन्यासकारों ने हरिजनों के प्रति कट्टर मान्यताओं का खण्डन किया है, लेकिन बाद के उपन्यासकारों ने कट्टर मान्यताओं का मोड़ तोड़ दिया है । हरिजनों की समस्या प्राचीनकाल से चली आ रही है । १६१७ई० में पहली बार कांग्रेस (कलकत्ता अधिवेशन) ने प्रस्ताव पास किया कि यह कांग्रेस भारतवासियों से आग्रह करती है कि दलित जातियों पर जो रुकावटें चली आ रही हैं, वे बहुत दुःखदायक हैं । उनको दूर किया जाना चाहिए । लेकिन अंग्रेजों की स्थिति भेदभाव तथा वैमनस्य उत्पन्न करने की थी । उन्होंने हरिजन-समस्याको राजनीतिक रूप दे दिया । परिणामस्वरूप हरिजनों ने पृथक् निर्वाचन की मांग रखी । अन्त में चलकर सितम्बर १६३२ में 'पूना-पैक्ट' समझौता हुआ । इस समझौते के द्वारा हरिजनों ने पृथक् निर्वाचन की मांग को त्याग किया । स्वतन्त्रता के बाद नौकरियों में उनको अलग स्थान सुरक्षित किए गए हैं ।

समाजशास्त्रियों के अनुसार खान-पान सम्बन्धी नियम पद्दिवाद! मान्यताओं में प्रमुख स्थान रखता है। उपन्यासकारों ने उस अवस्था का चित्रण किया है। सभी उपन्यासकारों ने खान-पान सम्बन्धी मान्यताओं पर प्रहार किया है। ऐसे उपन्यासकारों में प्रेमचन्द 'गबन' (१९३०ई०), 'कर्मभूमि' (१९३२ई०), पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' के 'मनुष्यानन्द' (१९३५ई०) आदि हैं। विवाह-सम्बन्ध पर भी विचार किया गया है। वर्णाश्रम धर्म के अनुसार परस्पर विभिन्न सवर्णों में भी विवाह-सम्बन्ध होना सामान्य बात नहीं है। लेकिन हरिजनों से विवाह-सम्बन्ध होना अकल्पनीय बात है। विभिन्न उपन्यासों में इस बात का चित्रण मिलता है।[1]

चूंकि हरिजनों को लोग निम्न कोटि का समझते हैं, इसीलिए उनके साथ अमानुषिक व्यवहार किया गया है। कहीं शासक वर्ग के व्यक्ति, तो कहीं राजवर्ग के व्यक्ति उनका शोषण करते हैं।[2] हरिजनों का शोषण जमींदार और पूंजीपति वर्ग के द्वारा भी किया गया है।[3]

----

१. क देखिए-- पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र', प्रेमचन्द, संतोषनारायण नौटियाल, फणीश्वर नाथ रेणु और मन्मथनाथ गुप्त के उपन्यास।

२. देखिए --(शासक वर्ग) लज्जाराम शर्मा 'मेहता', किशोरीलाल गोस्वामी और मन्नन द्विवेदी के उपन्यास।
राजवर्ग --पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र', चतुरसेन शास्त्री और वृन्दावनलाल वर्मा के उपन्यास।

३. देखिए --(पूंजीपति वर्ग)--वृन्दावनलाल वर्मा के उपन्यास।
(जमींदार वर्ग) --विश्वम्भरनाथ शर्मा 'कौशिक', शिवपूजनसहाय, नागार्जुन, भैरवनाथ गुप्त और रामचन्द्र तिवारी के उपन्यास।

कहीं-कहीं समाज के द्वारा भी अमानुषिक व्यवहार किया जाता है। हरिजनों को कुएं से[2] पानी नहीं भरने दिया जाता है, कुर्ता नहीं पहनने दिया जाता है।

सामाजिक कारणों में वेश्या-समस्या प्रमुख है। वेश्यावृत्ति का मूलकारण आर्थिक है। यदि हरिजन स्त्रियों में[2] आर्थिक अभाव न हों तो वे वेश्यावृत्ति की ओर आकृष्ट नहीं होंगी। शिक्षा के क्षेत्र में हरिजनों के साथ भेदभाव का बर्ताव मिलता है। वास्तव में हरिजनों के लिए शिक्षा की समस्या प्रमुख रही है। इस बात से हम इन्कार नहीं कर सकते कि[3] शिक्षा क्षेत्र में उनके प्रति उदासीनता का व्यवहार किया गया है।

प्राचीनकाल से ही भारत के इतिहास में हरिजनों के साथ भेद-भाव की भावना चली आ रही है। हरिजन लोग सवर्णों की तरह मनुष्य हैं, फिर भी उनके साथ छूत-छात का व्यवहार हमारे समाज

---

१. देखिए --(समाज का अमानुषिक व्यवहार)-- प्रेमचन्द, फणीश्वर-नाथ रेणु, रामप्रसाद मिश्र, भगवतीचरण वर्मा, कृश्नचन्दर, रामदरश मिश्र और भगवतीप्रसाद प्रसाद वाजपेयी के उपन्यास।

१.(कुएं से पानी न भरने देना)-- रामदरश मिश्र और राजेन्द्र अवस्थी के उपन्यास।

२. देखिए -- शैलेश मटियानी और दयाशंकर मिश्र के उपन्यास।

३. देखिए -- प्रेमचन्द, बैजनाथ केडिया, अज्ञेय, फणीश्वरनाथ रेणु यज्ञदत्त शर्मा और डा० सुरेश सिन्हा के उपन्यास।

में किया जाता है। हरिजनों की समस्या तो एक मानवीय समस्या है। यहीं छुआछूत की समस्या उपन्यासों में भी प्रतिबिम्बित हुई है[1]। मनुष्यत्व की भावना को भी स्थान दिया गया है। प्रेमचन्द के `गबन` (१९३०ई०) उपन्यास में यह भावना देखने को मिलता है कि हरिजन पात्रों में भी मनुष्यत्व छिपा रहता है,जैसे `गबन` (१९३०ई०) का देवीदीन खटिक नामक पात्र।

इस प्रकार हम देखते हैं कि विभिन्न उपन्यासकारों के द्वारा विभिन्न सामाजिक समस्याओं को चित्रित किया गया है। अनेक पुरानी मान्यताओं का जहां खण्डन मिलता है, वहां अनेक नई मान्यताओं की स्थापना भी की गई है। उपन्यासकार लोग हरिजनों की सामाजिक उन्नति के लिए प्रयत्नशील दिखाई पड़ते हैं।

राजनीतिक गतिविधियों के विकास की अनेक स्थितियां दिखाई पड़ती हैं। प्रारम्भ में अंग्रेज सरकार ने कूटनीति से कार्य करना चाहा था, परन्तु वह अपने उद्देश्य में सफल न हो पाई और सवर्णों तथा हरिजनों के बीच मतभेद न उत्पन्न हो सका।

प्राचीनकाल से ही शासक वर्ग शोषितों के ऊपर अत्याचार करता आया है। ब्रिटिश काल में भी हरिजनों पर अनेक अत्याचार किये गये। शासक वर्ग के लोग अपने को उच्च समझकर, शोषित लोगों को हीन समझकर उनके साथ निम्नकोटि का व्यवहार करते हैं[2]। जमींदार वर्ग अंग्रेजी राज के प्रारम्भिक दिनों की उपज है।

---

१. देखिए-- डा० सुरेश सिनहा, गोविन्द वल्लभ पंत, भगवतीचरण वर्मा और चतुरसेन शास्त्री के उपन्यास।

२. देखिए -- लज्जाराम शर्मा, चतुरसेन शास्त्री, विश्वम्भरनाथ शर्मा और वृन्दावनलाल वर्मा के उपन्यास।

इस विशाल देश पर शासन करने के लिए अंग्रेजों ने ज़मींदारों को प्रजा पर अत्याचार करने के लिए प्रोत्साहन देना शुरू किया। जमींदारों ने अंग्रेजों की शह पाकर अनेक दुष्कृत्य हरिजनों के साथ किए। जमींदारों की इसी नीति का निरूपण विभिन्न उपन्यासकारों ने किया है[1]।

लार्ड रिपन ही एकमात्र वायसराय थे, जिन्होंने भारत के हित के लिए कार्य किया। उन्हीं की कृपा से भारत में म्युनिसिपैलिटी का संगठन हुआ। म्युनिसिपैलिटी में कैसे धांधली होती है? कैसे वहां पर ऊंचे घराने के सदस्यों का कब्जा रहता है? कैसे हरिजनों का शोषण होता है? इन सभी बातों का चित्रण हमें उपन्यासों में देखने को मिलते हैं। उपन्यासकार लोग म्युनिसिपैलिटी के अत्याचारों के विरुद्ध आन्दोलन भी करवाते हैं[2]।

पुलिस ही एकमात्र संस्था है, जिससे अपराध पर नियन्त्रण पाया जा सकता है। वर्तमान युग में पुलिस अत्याचार का प्रतीक बन गई है। ब्रिटिश समय पुलिस अत्याचार का प्रतीक समझी जाती थी। वही प्रभाव आज के पुलिस वर्ग के ऊपर पड़ा है। पुलिस मौका मिलते ही हरिजनों का शोषण करती है। कुछ भी घटना घटे, पर पुलिस हरिजनों के ऊपर ही अपना क्रोध प्रकट करती है। हिन्दी उपन्यासकारों ने पुलिस विभाग की निष्क्रियता का चित्रण किया है[3]। आपात स्थिति

---

१. देखिए -- विश्वम्भरनाथ शर्मा और प्रेमचन्द के उपन्यास।

२. देखिए -- प्रेमचन्द, पाण्डेय बेचन शर्मा और उदयशंकर भट्ट के उपन्यास।

३. देखिए -- प्रेमचन्द, पाण्डेय बेचन शर्मा, संतोष नारायण नौटियाल, उदयशंकर भट्ट, चन्द्र विद्यावाचस्पति, दयाशंकर मिश्र, कमल शुक्ल, वैद्यनाथ गुप्त और रामदरश मिश्र के उपन्यास।

की घोषणा के बाद प्रधानमंत्री ने २० सूत्रीय आर्थिक कार्यक्रमों की घोषणा की है। जिसमें हरिजनों के उत्थान के लिए भी कार्यक्रम रखा गया। पुलिस को चाहिए कि वह समाज के दुर्बल लोगों (हरिजनों) की सहायता करे। पुलिस का कर्तव्य है कि वह यह देखे कि कहीं समाज में पुलिस के द्वारा तो हरिजनों का शोषण नहीं किया जा रहा है।

बौद्धिक और जागरूक उपन्यासकारों ने राष्ट्रीय आन्दोलनों का चित्रण किया है। पर कोई भी उपन्यासकार राष्ट्रीय आन्दोलन का विशद चित्रण नहीं कर पाया है। आन्दोलनों के उभार को चित्रित किया गया है। कहीं-कहीं राजनीतिक विचारधारा का यदा-कदा विवेचन भी मिलता है। भारतीय स्वाधीनता आन्दोलन के विविध पक्षों का चित्रण उपन्यासकारों ने किया है।[1]

शासन-प्रबन्ध में भ्रष्टाचार का बोलबाला हमेशा रहा है। लेखक ने शासन सम्बन्धी भ्रष्टाचार को चित्रित करने के लिए कहीं प्रत्यक्ष प्रणाली और कहीं अप्रत्यक्ष प्रणाली अपनाई है। जैसे ऊंचे वर्ग के व्यक्ति निम्न वर्ग के लोगों का शोषण करते हैं। इसका चित्रण हमें उपन्यासों में प्राप्त होता है।[2]

भाषा की समस्या भी उठाई गई है। भाषा का प्रश्न राष्ट्रीयता से सम्बन्धित है। अंग्रेजी राज्य के समय तो अंग्रेज अंग्रेजी भाषा पर इसलिए जोर देते थे ताकि सरकारी काम-काज करने के

----

१. देखिए -- प्रेमचन्द, भगवतीचरणवर्मा और मन्मथनाथ गुप्त के उपन्यास।
२. देखिए-- रामप्रकाश कपूर के उपन्यास।

लिए योग्य लड़के पैदा हों । पर वर्तमान युग में हिन्दी पर बल दिया जा रहा है । रामदेव ने भाषा के प्रश्न पर हिन्दी को महत्ता प्रदान कर राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य के निर्माण में सहायता दी है ।

पूंजीपतियों ने भी हरिजनों का शोषण किया है। प्रथम विश्वयुद्ध के कारण ब्रिटिश सरकार ने अपनी मूल नीति में परिवर्तन किया । भारत में भी कारखाने बनने लगे और पूंजीपति वर्ग का उदय हुआ । जिस प्रकार अंग्रेजों ने जमींदार वर्ग को हरिजनों का शोषण करने के लिए प्रोत्साहित किया, वैसे ही पूंजीपति वर्ग को भी अत्याचार करने के लिए अपना समर्थन दिया । उपन्यासकारों[1] ने पूंजीपतियों के अत्याचारों का भी खुलकर चित्रण किया है ।

हिन्दी उपन्यासकारों के क्षेत्र में पुनरुत्थानवादी दृष्टिकोण का भी परिचय मिलता है । अंग्रेजों से मुक्ति पाने के लिए ही १८५७ई० की जनक्रान्ति हुई, पर वह असफल हो गई । राष्ट्रीय आन्दोलन के तीव्र होने पर अंग्रेजी सरकार ने राजाओं को अपनी ओर मिलालिया । ऐसी स्थिति में राजनीतिक[2] क्षेत्र में पुनरुत्थान वादी दृष्टिकोण का अस्तित्व रहा ।

देशी रियासतों की समस्या का भी चित्रण मिलता है । अंग्रेजी सरकार इनके द्वारा जनता पर अपना आतंक जमाए रखना चाहती थी । विश्वम्भरनाथ शर्मा के 'संघर्ष' (१९४५ई०) उपन्यास में देशी रियासतों के अत्याचार पूर्ण रूप का ही चित्रण मिलता है ।

----

१. देखिए -- प्रेमचन्द का उपन्यास ।
२. देखिए -- प्रेमचन्द का उपन्यास ।

महाजनों का शोषण भी राजनीतिक क्षेत्र में महत्वपूर्ण स्थान रखता है। पंडित नेहरू ने यहां तक लिखा है कि सरकारी आर्थिक नीति बिल्कुल साहूकारों के हक में रही है[1]। प्रेमचन्द ने अपने उपन्यास 'गोदान' (१९३६ई०) में महाजनी शोषण के हथकण्डों का स्पष्टत: चित्रण किया है[2]। देशभक्ति का भी चित्रण किया गया है। ब्रिटिश सरकारी न्याय व्यवस्था और ब्रिटिश शासन-नीति का चित्रण भी मिलता है[3]।

अत: हम कह सकते हैं कि विभिन्न उपन्यासकारों ने विभिन्न राजनीतिक पक्षों का चित्रण करते हुए हरिजनों के ऊपर पड़े उसके प्रभाव का चित्रण किया है। हरिजनों में अब राष्ट्रीय चेतना का विकास हो रहा है। उपन्यासकारों ने हरिजनों के राजनीतिक पक्ष का पूर्णरूप से समर्थन किया है।

हरिजनों के ऊपर शासन द्वारा आर्थिक अत्याचार किए जाते हैं। उपन्यासकारों की दृष्टि इस ओर भी गई है[4]। सरकार की ओर से अनेक पंचवर्षीय योजनाएं बन चुकी हैं, परन्तु अभी तक

---

१. जवाहरलाल नेहरू : 'मेरी कहानी', पृ०सं० ४२४।

२. देखिए-- प्रेमचन्द के उपन्यास।

३. देखिए-- प्रेमचन्द के उपन्यास।

४. देखिए-- रामप्रकाश कपूर के उपन्यास।

उनकी आर्थिक स्थिति में कोई महत्वपूर्ण परिवर्तन नहीं हो सका । तत्कालीन समय में सरकार हरिजनों की आर्थिक उन्नति के लिए बैंकों से ऋण दे रही है, जो कि उत्साहवर्द्धक है । समाज के द्वारा भी आर्थिक शोषण किया जा रहा है । समाज ने अपने शोषण के द्वारा उनकी आर्थिक स्थिति को और भी दयनीय बना दिया है ।[1] जमींदार वर्ग ने भी हरिजनों का आर्थिक शोषण किया है ।[2] जमींदार वर्ग के समान पूंजीपतियों ने भी हरिजनों के ऊपर मनमाना अत्याचार किया है । यह वर्ग राष्ट्रीय कल्याण की चिन्ता नहीं करता, बल्कि अपने व्यक्तिगत स्वार्थों की चिन्ता करता है । उपन्यासकारों की दृष्टि इस ओर भी गई है ।[3] राजवर्ग भी अत्याचार करने में पीछे नहीं रहा है । जब ब्रिटिश सरकार उनका शोषण करती थी, तब ये लोग अपना क्रोध शान्त करने के लिए हरिजनों का शोषण करते थे ।[4] इसीलिए हरिजनों की समाज में अन्य वर्गों के मुकाबले आर्थिक स्थिति दयनीय बनी रही । आजकल प्रधानमंत्री के २० सूत्रीय कार्यक्रम के अन्तर्गत उनकी आर्थिक अवस्था को उठाने के लिए सरकार कार्यरत है ।

---

१. देखिए -- प्रेमचन्द, फणीश्वरनाथ रेणु, रामगोविन्द मिश्र, इन्द्र विद्यावाचस्पति, राधिकारमण प्रसाद सिंह, वैद्यनाथ गुप्त और यज्ञदत्त शर्मा के उपन्यास ।

२. देखिए -- अमृतलाल नागर और फणीश्वरनाथ रेणु के उपन्यास ।

३. देखिए -- प्रेमचन्द और भगवतीचरण वर्मा के उपन्यास ।

४. देखिए -- विश्वम्भरनाथ शर्मा 'कौशिक', और चतुरसेन शास्त्री के उपन्यास ।

सदियों से हरिजनों के ऊपर धार्मिक अत्याचार किया जाता रहा है। मंदिर-प्रवेश भी रूढ़िवादी मान्यताओं में प्रमुख स्थान रखता है। हरिजनों के धार्मिक अधिकार प्राचीनकाल से ही मान्य रहे। विभिन्न धार्मिक ग्रन्थों से इसकी पुष्टि होती है[1]। धर्म के नाम पर आर्थिक शोषण को भी चित्रित किया गया। प्रेमचन्द ने 'गोदान' (१९३६ई०) उपन्यास में दातादीन ब्राह्मण के द्वारा होरी का धर्म के नाम पर आर्थिक शोषण को चित्रित किया गया है। यद्यपि कानून के द्वारा अस्पृश्यता का अन्त कर दिया है। पर आज भी समाज में अस्पृश्यता का बोलबाला है। आज भी हरिजनों को मंदिर में प्रवेश नहीं करने दिया जाता है। यदि वह मंदिर में प्रवेश करने का प्रयत्न करते हैं तो वे पुजारियों के द्वारा मौत के घाट उतार दिए जाते हैं। आवश्यकता है कि समाज के दृष्टिकोण में परिवर्तन लाया जाये। जिन लोगों को हम हजारों वर्षों से पददलित करते आये हैं, उनके प्रति नवयुवकों में सच्ची हमदर्दी की भावना पैदा करनी होगी।

हिन्दी उपन्यासकारों के ने इस स्थिति का विशद चित्रण किया है[2]। ब्राह्मण वर्ग के पाखण्डों के ऊपर प्रेमचन्द ने बेचीदीन शटिक के माध्यम से तीखा व्यंग्य किया है। मध्यकाल में हरिजन वर्ग के सन्तों ने इसका कड़ा विरोध किया। कबीर ने ब्राह्मणों के पाखण्ड पर कटु प्रहार किया है। वैसे ब्राह्मणों के पाखण्ड पर तो कबीर के पहले सरहपा आदि सिद्ध योगियों ने भी प्रहार किया था।

---

१. देखिए -- वेद, गीता और पारस्कर गृह्य सूत्र टीका आदि।
२. देखिए -- प्रेमचन्द, पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र', यज्ञदत्त शर्मा, मन्मथनाथ गुप्त और चतुरसेन शास्त्री के उपन्यास।

इस प्रकार हम देखते हैं कि हरिजनों की धार्मिक स्थिति अब भी निम्न है । जब तक सामाजिक मान्यताएं नहीं बदलेंगी, तब तक हरिजनों की धार्मिक समस्या भी हल नहीं हो सकती है ।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि हरिजनों के ऊपर सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक और धार्मिक सभी तरह के अत्याचार किये जाते हैं । हमारे उपन्यासकार इतने जागरूक हैं कि उन्होंने हरिजनों से सम्बन्धित प्रत्येक समस्या का विवेचन किया है ।

-0-

(ख) स्वतन्त्र भारत का संविधान

जब भारत स्वतंत्र हुआ तो देश में नया संविधान तैयार किया गया, जिसमें वर्ण या जाति के आधार पर कोई भेद-भाव नहीं माना गया । भारतीय स्वतन्त्रता के आन्दोलनों के कारण अंग्रेजी शासन ने मजबूर होकर भारत को स्वतन्त्रता देने की बात का विचार किया । कई एक प्रयास किये, पर सब असफल होते गये । शुभ दिन आया । १९४७ई० में भारत स्वतंत्र हो गया और हमारा राज हो गया ।

देश के विभाजन के फलस्वरूप नई-नई जिम्मेदारियां सिर पर आ खड़ी हुई । आजादी के पहले समय-समय पर जो संकल्प किए गए थे, जो वचन दिए गए थे, उनको पूरा करना था । उनमें 'पूना-समझौता' भी था, जिस पर भारत के प्रमुख नेताओं ने १५ वर्ष पहले, २४ सितम्बर, १९३२ई० को अपनी मोहर लगाई थी । समझौता १० साल के लिए हुआ था, इस विचार से कि तब तक कदाचित् अस्पृश्यता का अन्त हो जायेगा । २५ सितम्बर १९३२ई० को पं०मालवीय जी की अध्यक्षता में बम्बई की विशाल सभा में जो प्रस्ताव पास हुआ था, उसमें कहा गया था कि पार्लियामेण्ट के सबसे पहले कामों में संविधान

के द्वारा अस्पृश्यता का अन्त कर देना भी एक प्रमुख काम है। भारतीय विधान परिषद् देश के लिए उपयुक्त विधान रचना के कार्य में जुट पड़ी। संविधान बनाने वाली सभा ने संकल्प को सामने रखकर भारतीय संविधान के नीचे लिखे १७ वें अनुच्छेद द्वारा अस्पृश्यता का अन्त कर दिया --

'अस्पृश्यता का अन्त किया जाता है और उसका किसी भी रूप में आचरण निषिद्ध किया जाता है। अस्पृश्यता से उपजी किसी निर्योग्यता को लागू करना अपराध होगा, जो विधि के अनुसार दण्डनीय होगा।' संविधान में हरिजन वर्ग के उत्थान और संरक्षण की व्यवस्था की गई।

संविधान की धारा १५ के अनुसार 'यह भी निश्चित किया गया कि राज्य किसी नागरिक के विरुद्ध धर्म, मूलवंश, जाति, वर्ण, लिंग तथा जन्मस्थान अथवा इनमें से किसी एक के आधार पर कोई विभेद नहीं करेगा।' इस धारा से हरिजन वर्ग का तथा उन सभी पिछड़े वर्गों का बड़ा हित हुआ है। जाति-पांति के विभेद के कारण अब कोई किसी को पिछड़ा नहीं बनासकता। सभी को समान रूप से उन्नति करने के अवसर प्राप्त हैं। इस धारा के आधार पर अब कोई भी नागरिक होटलों, सार्वजनिक कुओं, तालाबों, घाटों, सड़कों आदि पर आ जा सकते हैं। अब किसी भी प्रकार के भेद-भाव के कारण कोई इन स्थानों में प्रविष्ट होने से रोका नहीं जा सकता।

आश्चर्य की बात थी कि जिस सामाजिक बुराई के निवारण के प्रयत्नों को देश में भारी विरोध का सामना करना पड़ा था, उसका अन्त करने वाला अनुच्छेद बिना किसी विरोध के एक मत से स्वीकार कर लिया गया।

अनुसूचित जातियों के हित में संविधान का १६ वां अनुच्छेद भी महत्वपूर्ण है । उसका सम्बन्ध राज्याधीन नौकरी के विषय में अवसर-समता से है, अर्थात् 'केवल धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग, उद्भव, जन्मस्थान, निवास अथवा इनमें से किसी नागरिक के लिए नौकरी या पद के विषय में न अपात्रता होगी और न विभेद किया जायगा ।'

संविधान की धारा २५ के अनुसार सभी राज्यों को ऐसे कानून बनाने का अधिकार दिया गया है, जिनके आधार पर समाज कल्याण के कार्यों को करने में सहायता मिले । इस धारा के अनुकूल राज्य ऐसे कानून बना सकते हैं, जिनसे अस्पृश्यता के विचारों का नाश किया जा सके ।'

संविधान की धारा २९(२) के अनुसार किसी भी नागरिक को धर्म, मूलवंश, जाति, भाषा और इनमें से किसी एक आधार पर किसी ऐसी संस्था में प्रविष्ट करने से मना नहीं किया जा सकता जो संस्था राज्य द्वारा सहायता पाती हो या चलाई जाती हो ।

इस धारा के अनुकूल अब हरिजन वर्ग के लिए सभी संस्थाओं का द्वार खुल गया ।

संविधान की धारा ३८ के अनुसार सरकार जनता के कल्याण के लिए योजना बनाकर उसके अनुसार कार्य कर सकती है तथा ऐसे समाज की रचना के लिए प्रयत्न कर सकती है, जिसमें सभी को न्याय मिले, सब की आर्थिक दशा अच्छी रहे, सभी को राजनैतिक अधिकार मिलें । सभी नागरिकों को समान उन्नति करने का अवसर प्राप्त है ।

संविधान के ४६ वें अनुच्छेद में घोषित किया गया है कि "राज्य जनता के दुर्बलतर विभागों के, विशेष तथा अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित आदिम जातियों के शिक्षा तथा अर्थ सम्बन्धी हितों का विशेष सावधानी से उन्नति करेगा और सामाजिक न्याय तथा सब प्रकार के शोषण से संरक्षण करेगा।"

इस धारा के अनुसार राज्य अपने-अपने दायरे में कमजोर परिगणित जाति, परिगणित अनुसूचित जाति तथा अन्य पिछड़े वर्गों को शोषण करने से बचाने के लिए उपयुक्त साधन काम में ला सकेगा।

इस धारा के अनुसार राज्यों को यह अधिकार दिया गया है कि वे अपने प्रदेश में वहां के पिछड़े तथा हरिजन और अनुसूचित जातियों के कल्याण के लिए कार्य कर सकते हैं।

संविधान के ३३० वें अनुच्छेद के द्वारा अनुसूचित जातियों व तथा अनसूचित जनजातियों के लिए लोकसभा में स्थान रक्षित कर दिए गए हैं, एवं ३३२ वें अनुच्छेद द्वारा राज्यों की विधान सभाओं में अनुसूचित जातियों के लिए स्थानों का रक्षण कर दिया गया है।

संवैधानिक रूप से अस्पृश्यता की समाप्ति हो जाने पर भी अस्पृश्यता(अपराध) अधिनियम का पास होना आवश्यक था। उसमें काफी समय लग गया। १९५५ में यह आवश्यक अधिनियम पास हुआ। धार्मिक व सामाजिक निर्योग्यताएं व प्रवर्तित करने के लिए चिकित्सालयों आदि में व्यक्तियों का दाखिला कराने से इन्कार करने के लिए तथा वस्तुओं को बेचने या सेवाएं करने से इन्कार करने

के लिए और अस्पृश्यता से पैदा हुए अन्य अपराधों के लिए दण्ड की व्यवस्था अस्पृश्यता(अपराध) अधिनियम में की गई ।

संविधान की इन धाराओं के अनुकूल कार्य होने पर हरिजन वर्ग तथा पिछड़े वर्गों का कल्याण किया जा सकेगा। युग-युग के पिछड़े तथा दलित वर्गों को अब कानूनन समाज में सम्मान तथा सुखपूर्वक रहने का अवसर मिला ।

राष्ट्रीय सरकार संविधान के अनुकूल कार्य करने को कटिबद्ध है । यह पूरी आशा की जा सकती है कि अब ऐसे समाज की रचना की जा सकेगी, जिसमें किसी भी व्यक्ति को जाति,वर्ग,धर्म,मूलवंश तथा लिंग भेद आदि के आधार पर उन्नति करने से रोका नहीं जा सकेगा ।

(ग) वर्तमान सरकार के द्वारा प्रोत्साहन

हरिजनों के सर्वांगीण विकास कार्यक्रम के अतिरिक्त सामान्य क्षेत्रों से भी उन्हें लाभान्वित करने के लिए सरकार जो नई सक्त नीति अपना रही है, उसके अन्तर्गत हरिजनों (अनुसूचित जाति) के भी लाभ के लिए तैयार की गई बीसों योजनाओं में प्राथमिकता दी जायेगी । पांचवीं योजना में हरिजनों के विकास के लिए १५०० करोड़ रुपये का प्राविधान है । हरिजनों जातियों के उत्थान कार्यक्रमों को नई गति प्रदान की जायेगी । शोषण, प्रथमाकरण, ऋण तथा बंधक मजदूरी के अभिशापों से ग्रस्त लोगों को यथाशीघ्र उन्मुक्त कराया जा रहा है और वे बिना किसी भय और आशंका के अपना घरबार बसा सकें, उसकी सुविधायें प्रदान की जा

रखा है । अबतक तक उन्हें पचास लाख घरों के लिए स्थान प्रदान किए जा चुके हैं ।

अनुसूचित जातियों के ४० लाख बच्चों को अभी तक दसवीं कक्षा पूर्व के वजीफे प्रदान किये जा चुके हैं । हाईस्कूल उपरान्त कक्षाओं के चार लाख से अधिक छात्रों को १९७४-७५ में चार लाख से अधिक वजीफे दिए गए हैं । उनके शिक्षा प्रसार के लिए व्यापक पैमाने पर कदम उठाये गये हैं । कमजोर वर्ग के लोगों को सूदखोर महाजनों के चंगुल से मुक्ति दिलाने की दिशा में अनेक राज्यों में वैधानिक तथा प्रशासकीय कदमों को और कड़ाई के साथ क्रियान्वित किया जा रहा है । ऐसा केन्द्रीय सरकार की एक रिपोर्ट में कहा गया है ।

उत्तरप्रदेश जनसंख्या की दृष्टि से भारत का सबसे बड़ा प्रदेश है । उसी अनुपात में इस प्रदेश में अनुसूचित जातियों की संख्या भी और प्रदेशों से अधिक है । सन् १९७१ई० की जनगणना के अनुसार इस प्रदेश की कुल जनसंख्या ८,८३,४१,१४४ है, जिसमें अनुसूचित जातियों की संख्या १,८५,४८,९१६ है । अकेले अनुसूचित जातियों की संख्या प्रदेश की कुल जनसंख्या का २० प्रतिशत से अधिक है । विमुक्त जातियों की संख्या लगभग ४० लाख तथा अनुसूचित जनजातियों की संख्या १,९८,५६५ है । अन्य पिछड़ी हुई जातियां भी इन्हीं कमजोर वर्ग की श्रेणी में आती हैं । इन सभी कमजोर वर्गों की सम्मिलित जनसंख्या प्रदेश की कुल जनसंख्या का ५० प्रतिशत से अधिक है । अतः देश में समाजवादी व्यवस्था स्थापित करने के लक्ष्य की पूर्ति हेतु इन कमजोर वर्गों का सर्वांगीण विकास कर उन्हें अन्य वर्गों के समान स्तर पर लाना नितान्त आवश्यक है ।

इसी उद्देश्य की पूर्ति हेतु स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् प्रदेश की जनप्रिय सरकार ने अलग से हरिजन कल्याण विभाग की स्थापना सन् १९४८ई० में की । धीरे-धीरे इस विभाग के कार्य-कलाप बढ़ते गये और कार्य कलापों में वृद्धि के साथ-साथ इस विभाग को विभिन्न कल्याणकारी योजनाओं को चलाने के लिए अधिकाधिक धनराशि की व्यवस्था की गई । वर्ष १९५१-५२ ई० में इस विभाग का बजट केवल ३९.२० लाख रुपये का था जो बढ़कर वर्ष १९७४-७५ई० में १४.२५ करोड़ रुपये का हो गया । इससे स्पष्ट है कि हमारी सरकार इन वर्गों को अन्य वर्गों के समान स्तर पर लाने के लिए निरन्तर प्रयास कर रही है ।

वर्तमान समय में विभाग द्वारा इन जातियों व के कल्याणार्थ संचालित विभिन्न योजनाओं को मुख्यत: निम्नलिखित तीन श्रेणी में विभाजित किया गया है--

(१) शैक्षिक योजनायें ।

(२) आर्थिक ।

(३) स्वास्थ्य एवं आवास आदि ।

शैक्षिक

इसके अन्तर्गत पूर्व दशम तथा दशमोत्तर कक्षाओं की छात्रवृत्तियां, पूर्वदशम, कक्षाओं में नि:शुल्क शिक्षा, आश्रम पद्धति विद्यालय, छात्रावासों का निर्माण, पालिटेक्निक और प्राविधिक औद्योगिक प्रशिक्षण केन्द्रों का संचालन की योजनायें प्रमुख हैं ।

आर्थिक

इसके अन्तर्गत कृषि एवं बागवानी हेतु अनुदान कुटीर उद्योगों के विकास हेतु अनुदान तथा विमुक्त जातियों एवं अनुसूचित

जन जातियों के पुनर्वासन सम्बन्धी योजनायें चलाई जा रही हैं।

स्वास्थ्य एवं आवास आदि

इसके अन्तर्गत गृह-निर्माण हेतु अनुदान व ऋण देना, नौकरी हेतु साक्षात्कार में उपस्थित होने के लिए यात्रा भत्ता की योजनायें प्रमुख हैं।

प्रदेश की अनुसूचित जातियों के लोगों के सर्वांगीण विकास एवं उत्थान हेतु पांचवीं पंचवर्षीय योजना काल में राज्य आयोजनागत योजनाओं के लिए १४ करोड़ रुपये के स्थान पर २५ करोड़ रुपये का परिव्यय तथा केन्द्र द्वारा पुरोनिधानित कार्यक्रमों के लिए १८६६.८३ लाख रु० का परिव्यय प्रस्तावित किया गया है।

वर्ष १९७४-७५ के लिए राज्य संचालित योजनाओं के हेतु कुल ४४३.००० लाख रु० जिसमें पर्वतीय क्षेत्र का १६.००० लाख रुपया भी सम्मिलित है, निर्धारित किया गया है। केन्द्रीय पुरोनिधानित योजनाओं के अन्तर्गत १८०.८०० लाख रु० का परिव्यय प्रस्तावित है।

वर्ष १९७५-७६ के लिए राज्य संचालित योजनाओं हेतु ४००.००० लाख रु० का परिव्यय निर्धारित किया गया है, जिसमें पर्वतीय क्षेत्र का ३०.००० लाख रु० भी सम्मिलित है तथा केन्द्रीय पुरोनिधानित योजनाओं के अन्तर्गत ३३२.८३२ लाख रु० का परिव्यय प्रस्तावित किया गया है।

हरिजन जातियों का उत्थान की योजनाओं को ४ वर्गों में विभक्त कियागया है,जैसे --

(१) शिक्षा, (२) आर्थिक उत्थान के कार्यक्रम, (३) स्वास्थ्य, आवास एवं अन्य योजनायें एवं (४) निदेशन एवं प्रशासन ।

उपर्युक्त वर्गीकृत योजनाओं में प्रस्तावित धनराशि[१] का विवरण इस प्रकार है --

पांचवां पंचवर्षीय योजना

(राज्य संचालित योजनाएं)

	शिक्षा	आर्थिक उत्थान	स्वास्थ्य,आवास एवं अन्य योजनाएं	निदेशन एवं प्रशासन	योग
	२	३	४	५	६
त जाति	१४५९.०००	२६५.०००	२३९.५००	१२७.५००	२०९१.००

इसप्रकार केन्द्रीय तथा राज्य सरकारें अपने सम्मिलित प्रयत्नों से हरिजनों की स्थिति सुदृढ़ करने में अपना-अपना योगदान दे रहे हैं ।

स्वतंत्रता के अंतिम आन्दोलन में गांधी जी ने जो वचन कहे थे, उनमें से एक बहुत महत्त्वपूर्ण है । स्वतन्त्रता का रहस्य उसमें पूरी तरह प्रकट हुआ है । उन्होंने कहा था," अंग्रेजों की गुलामी

---

१. उत्तरप्रदेश में हरिजन तथा समाज कल्याण कार्यक्रम--१९७४-७९८०, निदेशालय, हरिजन तथा समाज कल्याण,उत्तरप्रदेश के द्वारा प्रकाशित

में शायद हो हमने दो शताब्दियां गुजारी हैं, लेकिन फिर भी उससे छुटकारा पाने के लिए हम कैसे छटपटा रहे हैं । अभी और यहां तक स्वतन्त्रता, यह हमारा नारा है । लेकिन ये ही लोग जब दलित बांधवों को कल का हवाला देते दिखायी देते हैं तो बड़ा आश्चर्य होता है । उस प्रकट के उधार स्वर्ग का आकर्षण भला प्रकिसको होगा । दलितों की स्वतन्त्रता को हम भविष्य पर नहीं छोड़ सकते ।अभी और यहां वह उनको प्राप्त हो जाना चाहिए ।"

समाज की अन्त्य इकाई में जब तक स्वतन्त्रता नहीं पहुंचेगा, तब तक स्वतन्त्रता के २६ वें वर्ष प्रवेश पर इस संदेश को हमें स्मरण करना चाहिए ।

अन्त में हमारा एक निवेदन है कि प्रस्तुत प्रबन्ध में मैंने ऐसे अनेक उपन्यासकारों का विवेचन किया है,जो आज भी लिख रहे हैं और भविष्य में भी लिखते रहेंगे । हमें विषय की सीमा का मर्यादा-पालन करना आवश्यक था, अत: १९७४ई० के बाद की कृतियों को हमने छोड़ दिया है । प्रस्तुत प्रबन्ध में हमारे जो निष्कर्ष है,उनकी अपनी सीमायें हैं । प्रत्येक साहित्यकार के जीवन-दर्शन तथा कलात्मक अभिरुचि में विकास की अपेक्षा होती है, अत: यह निवेदन है कि मेरे निष्कर्ष अंतिम न मान लिये जाये । युग की सीमा में प्रतिनिधि उपन्यासकारों की जो भी रचनायें लिखी गई हैं, मैंने उन्हीं० के आधार पर सामाजिक , राजनीतिक, आर्थिक और धार्मिक चेतना के विकास का अध्ययन हरिजनों के सन्दर्भ में प्रस्तुत किया है । अत: हमारी दृष्टि में लेखक की अपेक्षा उसकी रचना का हमें अधिक महत्त्व रहा है ।

--0--

परिशिष्ट

-0-

परिशिष्ट--(४) आलोच्य उपन्यास

लेखक		उपन्यास
अज्ञेय	--	शेखर : एक जीवनी , प्रथम भाग,(१९४०ई०)।
अमृतलाल नागर	--	`महाकाल` (१९४७ई०)।
चन्द्रविद्या वाचस्पति	--	`अपराधी कौन`(१९५५ई०)।
उदयशंकर भट्ट	--	`सागर लहरें और मनुष्य`(१९५५ई०)।
कृष्ण चन्दर	--	`आंगन की चोरी`(१९७१ई०)।
कमल शुक्ल	--	`पराजित`(१९५८ई०)।
किशोरी लाल गोस्वामी	--	माधवी माधव व वा मदन मोहिनी`(१९०९ई०)।
गोविन्द बल्लभ पंत	--	`अंगूठी का नगीना`(१९१८ई०)।
		`जल समाधि`(१९५५ई०)।
चतुरसेन शास्त्री	--	`गोली`(१९५८ई०)।
		`उदयास्त`(१९५८ई०)।
		`बगुला के पंख (१९५९ई०)।
		`सुनयना` (१९६२ई०)।
दयाशंकर मिश्र	--	`छोटी बहू` (१९५८ई०)।
नागार्जुन	--	`वरुण के बेटे`(१९५७ई०)।

लेखक	उपन्यास
नागार्जुन	-- 'रंगभूमि' (१९२५ई०) ।
प्रेमचन्द	-- 'कायाकल्प' (१९२८ई०) ।
	'गबन' (१९३१ई०) ।
	'कर्मभूमि' (१९३२ई०) ।
पांडेय बेचन शर्मा उग्र	-- 'बुधुआ की बेटी' (१९२८ई०) ।
	'मनुष्यानन्द' (१९३५ई०) ।
	'सरकार तुम्हारी आँखों में' (१९३७ई०) ।
फणीश्वरनाथ रेणु	-- 'मैला आंचल' (१९५४ई०) ।
	'परती परिकथा' (१९५७ई०) ।
	'जुलूस' (१९६५ई०) ।
बैजनाथ गुप्त	-- 'जीवन : आग और आंसू' (१९५८ई०) ।
बैजनाथ केडिया	-- 'कुल-अकुल' (१९३८ई०) ।
भगवतीचरण वर्मा	-- 'अपने खिलौने' (१९५७ई०) ।
	'भूले बिसरे चित्र' (१९५९ई०) ।
भगवती प्रसाद वाजपेयी	-- 'कर्मपथ' (१९६७ई०) ।
मन्मथनाथ गुप्त	-- 'प्रतिक्रिया' (१९६१ई०) ।
	'सागर संगम' (१९६३ई०) ।
	'शरीफों का कटरा' (१९६६ई०) ।
मेहता लज्जाराम शर्मा	-- 'आदर्श हिन्दू' (प्रथम भाग, १९१७ई०) ।
	,, (द्वितीय भाग, १९१७ई०) ।
	,, (तृतीय भाग, १९१७ई०) ।
मन्नन द्विवेदी	-- 'रामलाल' (१९१७ई०) ।
	'कल्याणी' (१९२०ई०) ।

लेखक	उपन्यास
यज्ञदत्त शर्मा	-- 'चौथा रास्ता' (१९५५ई०) ।
यादवेन्द्र शर्मा चन्द्र	-- 'अनावृत' (१९५९ई०) ।
रामदरश मिश्र	-- 'पानी के प्राचीर' (१९६१ई०) ।
	'जल टूटता हुआ' (१९६९ई०) ।
	'सूखता हुआ तालाब' (१९७२ई०) ।
रामचन्द्र तिवारी	-- 'नवजीवन' (१९६३ई०) ।
रामदेव	-- 'लहरें' (१९५४ई०) ।
रामप्रकाश कपूर	-- 'टूटा हुआ आदमी' (१९६२ई०) ।
रामप्रसाद मिश्र	-- 'कहाँ या क्यों' (१९६०ई०) ।
रांगेय राघव	-- 'विषाद मठ' (१९४६ई०) ।
	'कब तक पुकारूँ' (१९५७ई०) ।
रामगोविन्द मिश्र	-- 'मर्यादा' (१९५५ई०) ।
राजा राधिकारमणसिंह	-- 'चुंबन और चांटा' (१९५७ई०) ।
वृन्दावनलाल वर्मा	-- 'झाँसी की रानी लक्ष्मी बाई' (१९४६ई०) ।
	'मृगनयनी' (१९५०ई०) ।
	'सोना' (१९५२ई०) ।
	'भुवन विक्रम' (१९५७ई०) ।
विश्वम्भरनाथ शर्मा 'कौशिक'	-- 'भिखारिणी' (१९२९ई०) ।
	'संघर्ष' (१९४५ई०) ।
सुरेश सिनहा	-- 'सुबह अंधेरे पथ पर' (१९६७ई०) ।
	'पत्थरों का शहर' (१९७१ई०) ।
संतोषनारायण नौटियाल	-- 'हरिजन' (१९४९ई०) ।
शिवपूजन सहाय	-- 'देहाती दुनिया' (१९२६ई०) ।
शैलेश मटियानी	-- 'दो बूंद जल' (१९६६ई०) ।

परिशिष्ट--(२) सहायक पुस्तकें

लेखक		पुस्तकें
अज्ञेय	--	`आत्मनेपद` (१९६०ई०) ।
डा० सुरेश सिनहा	--	`हिन्दी उपन्यास` (१९६५ई०) ।
		`हिन्दी कहानी : उद्भव और विकास` (१९६६ई०) ।
अशोक चन्दा	--	`इण्डियन एडमिनिस्ट्रेशन` (१९५८ई०) ।
इन्द्रनाथ मदान	--	`प्रेमचन्द एक विवेचन` । दूसरा सं० ।
अयोध्या सिंह उपाध्याय `हरिऔध`	--	`अधखिला फूल` (संवत् २०११) ।
हेनरी जेम्स	--	`द आर्ट आफ फिक्शन` (१९४८ई०) ।
इलाचन्द्र जोशी	--	`विश्लेषण` (१९५४ई०) ।
किशोरीलाल गोस्वामी	--	`लीलावती` (१९०२ई०) ।
जवाहरलाल नेहरू	--	`हिन्दुस्तान की कहानी` (१९४७ई०) ।
		`एन आटोबायग्राफी` (१९३६ई०) ।
इलाचन्द्र जोशी	--	`साहित्य चिन्तन` (१९५४ई०) ।
		`विवेचना` (संवत् २००७) ।
जैनेन्द्र कुमार	--	`साहित्य का श्रेय और प्रेय` (१९५३ई०) ।
केसरीनारायण शुक्ल	--	`आधुनिक हिन्दी काव्य धारा का सांस्कृतिक स्रोत` (संवत् २००४) ।
ताराशंकर पाठक	--	`हिन्दी के सामाजिक उपन्यास` (संवत्१९९९) ।
डा० देवराज उपाध्याय	--	`आधुनिक कथा साहित्य और मनोविज्ञान` (१९५६ई०)
शिवरानी देवी	--	`प्रेमचन्द घर में` (१९५६ई०) ।
श्रीकृष्णलाल	--	`आधुनिक हिन्दी साहित्य` (तृ०सं०१९५४ई०) ।
		`विचार और विश्लेषण` (१९५५ई०) ।

लेखक — पुस्तकें

डा० नगेन्द्र -- 'आलोचक की आस्था' (१९६६ई०) ।
'आस्था के चरण' (१९६७ई०) ।

प्रेमचन्द -- 'कुछ विचार' (१९५९ई०) ।
'साहित्य का उद्देश्य' (१९५४ई०) ।
'विविध प्रसंग' (१९६२ई०) ।

ब्रजनन्दनसहाय -- 'राधाकान्त' (१९००ई०) ।

सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन -- 'हिन्दी साहित्य : एक आधुनिक परिदृश्य' (१९६८ई०) ।

डा० सावित्री सिनहा -- 'युग और तारे' (१९६६ई०) ।

नन्ददुलारे वाजपेयी -- 'आधुनिक साहित्य' (संवत् २००७) ।
'हिन्दी साहित्य : बीसवीं शताब्दी' (१९४५ई०) ।
'प्रेमचन्द : एक विवेचन' (१९५६ई०) ।
'जयशंकर प्रसाद' (संवत् २०१५) ।

डा० राजेन्द्र प्रसाद -- 'आत्मकथा' (१९५२ई०) ।

यशपाल -- 'बात-बात में बात' (१९५४ई०) ।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल -- 'हिन्दी साहित्य का इतिहास (संवत् २००८)

पद्म सिंह शर्मा 'कमलेश' -- 'मैं इनसे मिला' (१९५२ई०) ।

डा० भोलानाथ -- 'हिन्दी साहित्य' (१९५४ई०) ।

डा० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय -- 'हिन्दी गद्य की प्रवृत्तियाँ' (बम्बई) ।
'आधुनिक हिन्दी साहित्य' (१९५४ई०) ।
'उन्नीसवीं शताब्दी' (१९६३ई०) ।
'हिन्दी साहित्य का इतिहास' (छठा सं०) ।
'बीसवीं शताब्दी हिन्दी साहित्य : न० संद' (१९६७ई०) ।
'हिन्दी उपन्यास : उपलब्धियाँ' (१९७०ई०) ।

लेखक	पुस्तकें
विश्वनाथ	-- 'साहित्य दर्पण',कलकत्ता ।
डा० रामविलास शर्मा	-- 'प्रगति और परम्परा' (१९३०ई०) ।
	'संस्कृति और साहित्य' (१९४९ई०) ।
	'प्रगतिशील साहित्य की समस्याएं' (१९५४ई०) ।
	'भाषा,साहित्य,संस्कृति' (१९५४ई०) ।
	'लोक जीवन और साहित्य' (१९५५ई०) ।
	'भारतेन्दु युग' (१९५६ई०) ।
शिवदान सिंह चौहान	-- 'साहित्यानुशीलन' (१९५५ई०) ।
शिवकुमार मिश्र	--'वृन्दावनलाल वर्मा : उपन्यास और कला' (१९५६ई०) ।
हंसराज रहबर	--'प्रेमचन्द' (१९५२ई०) ।
अभिनन्दन ग्रन्थ	--'साहित्यकार भगवतीप्रसाद वाजपेयी' ।
डा० वेदज्ञ आर्य	--'कामायनी की पारिभाषिक शब्दावली' (१९६५ई०)
शाह और खंबाटा	--'भारत की सम्पत्ति और उसकी करोपयोगी क्षमता' (१९५४ई०) ।
डा० शशिभूषण सिंहल	--'उपन्यासकार वृन्दावनलाल वर्मा' (१९६०ई०) ।
	'हिन्दी उपन्यास की प्रवृत्तियां' (१९७०ई०) ।
डा० भीमराव अम्बेडकर	--'अछूत कौन और कैसे' (१९५२ई०) ।
रवीन्द्रनाथ मुकर्जी	--'भारतीय सामाजिक संस्था' (१९६६ई०) ।
वियोगी हरि	--'अस्पृश्यता' (१९६६ई०) ।
डा० रामजीलाल सहायक	--'हरिजन वर्ग का उत्थान' (१९५५ई०) ।
महात्मा गांधी	--'सम्पूर्ण गांधी वांगमय' खण्ड २८(१९७२ई०) ।
	'सम्पूर्ण गांधीवांगमय (खण्ड २९ ,१९७२ई०) ।
	" खंड३०(१९७२ई०) ।
	" खंड ३१(१९७२ई०) ।
	" खंड ३२(१९७२ई०) ।
	" खंड ३३(१९७२ई०) ।

लेखक	पुस्तकें
सम्पूर्ण वाङ्. महात्मा गांधी	--'सम्पूर्ण गांधी वांग्मय' खंड ४६ (१९७१ई०)।
	,, खंड ४७ (१९७१ई०)।
	,, खंड ४८ (१९७१ई०)।
हेनरी थियोडोर	-- 'द न्यू डिक्शनरी आफ द थाट्स'।
हेनरी फिक्शन	--'द आर्ट आफ फिक्शन' (१९४८ई०)।
अल्टेकर	--'पोजीशन आफ वुमन इन हिन्दू सिविलिजेशन' (१९५९ई०)।
अल्बेयर कामू	--'द मिथ आफ सिसिफस'।
अल्टेयर लैम्ब	--'क्राइसिस इन काश्मीर' (१९६६ई०)।
अर्नेस्ट ए बेकर	--'द हिस्ट्री आफ इंगलिश नॉवेल' लन्दन।
इरा वोल्फर्ट	--'ह्वाट इज द नावेल एण्ड ह्वाट [इज़] इट गुड फार' (१९५७ई०)।
ए० कैम्पबेल जानसन	-- 'मिशन विद माउंटबैटेन' (१९५१ई०)।
ई०आर० सेलिगमैन	--'सम्पा० इनसाइक्लोपीडिया आफ द सोशल-साइंसेज', खण्ड १३।
ए०आर० देसाई	--'सोशल बैकग्राउण्ड आफ इण्डियन नेशनलिज्म' (१९५९ई०
एफ०जी० बैली	-- 'पालिटिक्स एण्ड सोशल चेन्ज' (१९६३ई०)।
ए०बी० शाह(सम्पा०)	-- ट्रेडिशन एण्ड माडर्निटी इन इण्डिया' (१९६७ई०)।
एडवर्ड शिल्स	-- 'इण्टलेक्चुअल बिटविन ट्रेडिशन एण्ड मॉडर्निटी' (१९६१ई०)।
एन०बी० गाडगिल	--'गवर्नमेण्ट फ्राम इन्साइड' (१९६८ई०)।
एन०सी० चौधरी	--'द आटोबायोग्राफी आफ एन अननोन इण्डियन' (१९६१ई०)।

लेखक	पुस्तकें
एल०एफ०रशब्रुक	--'द ग्रेट मैन आफ इण्डिया' (१९५७ई०)।
क्लारा रोब	--'प्रोग्रेस आफ रोमांस' (१७८५ई०)।
कार्ल मार्क्स	--'कैपिटल' प्रथम भाग।
क्रिस्टोफर काडवेल	--'फर्दर स्टडीज इन ए डाइंग कल्चर' (१९४९ई०)।
के०ए० नीलकान्त शास्त्री	--'इण्डिया ए हिस्टारिकल सर्वे' (१९६६ई०)।
के०एम० पनिकर	--'द फाउण्डेशन आफ न्यु इण्डिया' (१९६३ई०)।
	'हिन्दू सोसायटी एट क्रास रोड्स (१९५५ई०)।
ग्रेबाल मार्सेल	--'मैन अगेन्स्ट ह्युमैनिटी' (१९५७ई०)।
टालस्टाय	--'ह्वाट इज आर्ट' (१९५६ई०)।
ट्राट्स्की	--'सोशल टॉपिक्स'।
चार्ल्स एण्ड मेरी बियर्ड	--'द राइज आफ अमरीकन सिविलिजेशन' (१९२८ई०)
ज्यां पालसार्त्र	--'एग्जिस्टेन्शियलिज्म एण्ड ह्युमैनिज्म' (१९५४ई०)।
जयप्रकाश नारायण	--'सोशलिज्म सर्वोदय एण्ड डेमोक्रेसी' (१९५९ई०)।
ज्यां पाल सार्त्र	--'बीइंग एण्ड नथिंगनेस' (१९५६ई०)।
	'ह्वाट इज लिट्रेचर' (१९५८ई०)।
	'सिचुएशन्स' (१९६५ई०)।
जान कमिंग	--'सम्पा: माडर्न इण्डिया': एक कोआपरेटिव सर्वे (१९३१ई०)।
जान मेण्डर	--'राइटर एण्ड द कमिटमेण्ट' (१९६१ई०)।
जानरस्किन	--'माडर्न पेण्टर्स' (१९१६ई०)।
जार्ज ल्यूकाच	--'स्टडीज इन यूरोपियन रियलिज्म' (१९५०ई०)।
जे रैम्जे मैक्डानेल्ड	--'द अवेकनिंग आफ इण्डिया' लन्दन।
थामप्सन एण्ड गैरेट	--'राइज एण्ड फुलफिलमेण्ट आफ ब्रिटिश रूल इन इण्डिया' (१९३५ई०)।
दुर्गादास	--'इण्डिया फ्राम कर्जन टू नेहरू एण्ड आफ्टर' (१९६९ई०)।

लेखक	पुस्तकें
डा० नासिर अहमद खां	--`मिडिलक्लास इन इण्डिया` (१९५८ई०)।
परसिवल ग्रिफिथ	--`माडर्न इण्डिया` (१९६५ई०)।
पेण्डेरेल मुन	--`स्ट्रेन्जर्स इन इण्डिया` (१९४४ई०)।
	`डिवाइड एण्ड क्विट` (१९६१ई०)।
पी०टी०बायर	--`इण्डियन इकोनामिक पालिसी एण्ड डेवलेपमेण्ट` (१९६५ई०)।
फ्रांसिस टुकर	--`व्हाइल मेमोरी सर्व्ज` (१९५०ई०)।
फ्रेंक मौरेस	-- इण्डिया टुडे` (१९६०ई०)।
बर्ट्रेण्ड रसेल	--`द इम्पैक्ट आफ साइन्स आन सोसायटी` (१९५२ई०)।
बी०एन० कौल	--`अण्टोल्ड स्टोरी` (१९६७ई०)।
वेबर	--`एसेज़ इन सोशियोलोजी`।
मैथ्यु आर्नल्ड	-- लास्ट वर्ड्स लन्दन।
डा०राधाकमल मुखर्जी	--`द वे आफ ह्युमैनिज़्म` १९६८ई०)।
रैल्फ फाक्स	--` द द नावेल एण्ड द पीपुल` (१९४७ई०)।
रिचार्ड हेयर	--`रशियन लिट्रेचर` (१९४७ई०)।